दूसरी बार २०००
सन् उन्नीस-सौ-तैंतीस
परिवर्तित-परिवर्धित संस्करण

मुद्रक
जीतमल लूणिया
सस्ता-साहित्य-प्रेस, अजमेर ।

प्रस्तावना

कवि-कल्पना आकाश में विहार करती है। वह मनुष्य को अपने साथ लेकर गगन-मण्डल के ज्योतिर्मय प्रदेशों की सैर कराती है। एक से एक भव्य वस्तुएं दिखाई देती है। उन्हे देख कर मनुष्य का चित्त प्रसन्न होता है, हृदय फूल जाता है और आँखे उत्फुल्ल कमल की भाँति खिल जाती है। ऐसे रमणीय प्रांत को छोड़कर मुझे आज यह क्या सूझा है, जो मै पाठकों को शराब, अफीम, तम्बाकू आदि की दुर्गन्ध तथा व्यभिचार की गन्दगी के दृश्य दिखाने के लिए उद्यत हो रहा हूँ ?

स्वयं मुझे भी इस बात का पहले ख़याल तक नही था कि मै इस विषय पर कभी क़लम उठाऊँगा। परन्तु भरतपुर के हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन से लौटते समय पंजाब के एक संन्यासी बाबा का मेरा साथ हो गया। वे साहित्य के बड़े प्रेमी हैं। चुपचाप कुछ समाज-सेवा भी करते रहते हैं। ट्रेन में हम लोग भिन्न-भिन्न विषयों पर बात-चीत करते आ रहे थे कि इतने मे एक मुसाफिर ने बीड़ी सुलगाई और हमारी बात-चीत का रुख़ इन व्यसनो की बुराई की तरफ पलटा। उसका फल यह हुआ कि मैं लद गया। स्वामी केशवानन्दजी ने (यह उनका नाम था) मुझ से यह वचन ले लिया कि मै इस विषय पर एक पुस्तक लिखूँ।

वचन देकर उसे निबाहने के लिए एक प्रकार की दृढ़ता और उत्कटता की आवश्यकता होती है। मैं जानता था कि मेरे अन्दर ये गुण यथेष्ट मात्रा में नहीं है। इसलिए मैंने वचन बहुत हिचकिचाहट के साथ दिया। किन्तु उन संन्यासी मित्र के आग्रह ने मेरी शिथिलता के दोष की पूर्ति कर दी और बार-बार तकाजा करके उन्होंने आखिर मुझ से वादा पूरा करा ही लिया।

पुस्तक-लेखन का काम अपने हाथ मे लेने तक मुझे पता नहीं था कि ये बुराइयाँ, जिनकी ओर हम उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं, समाज मे किस हद तक फैली हुई हैं। पर ज्यों-ज्यों मै इस विषय का अध्ययन करता गया, त्यों त्यों उनकी भयंकरता और उनके भीषण प्रचार का असली रूप मेरी समझ मे आता गया। जो बात समाज के जीवन पर ही कुठाराघात कर रही है क्या जन-समाज को उसका ज्ञान होना परम आवश्यक नहीं है? वह गन्दी-सी बात भी हुई तो क्या? शरीर के आरोग्य की दृष्टि से उसके गन्दे से गन्दे भागो का भी वही महत्व है जो कि ऑख, दाँत या मुख का है। किसी शहर के आरोग्य के लिए यह परम आवश्यक है कि उसके निवासी स्वच्छता का महत्व समझ ले। उसी प्रकार प्रत्येक मनुष्य के लिए भी यह परम आवश्यक है कि वह अपने खान-पान की वस्तुओं के गुण-दोष

जान ले। कम से कम ऐसी चीजो के गुण-धर्म तो अवश्य ही जान ले, जिनसे उसके शरीर को हानि पहुँचने की आशंका है।

शराब और अफीम के विषय मे भारत-सरकार के शासन विवरणात्मक India in-. 26-27 नामक पुस्तक मे श्री कोटमन लिखते है—पश्चिमी देशो मे जिसे शराब-खोरी की बुराई कहते है वह भारत के कुछ हिस्सों को छोड़कर—जहां कल-कारखानो की अधिकता है—कही नही दिखाई देती।

शराब-खोरी जिस परिमाण मे भारत मे फैली हुई है, उसका कुछ वर्णन हमने शराबवाले अध्याय मे किया है। उसमें भी हमारा आधार तो सरकारी अंक ही हैं। पश्चिमी देशो की तुलना मे वह चाहे कितना ही कम हो परन्तु भारत की दरिद्रता, जल-वायु और नीतिशीलता को देखते हुए तो वह बहुत अधिक है। श्री भारतभक्त ऐण्ड्रयूज लिखते है–"जब से मै सन् १९०९ के मार्च से पहले-पहल बम्बई आया, मै बराबर देख रहा हूँ, लगभग सारे देश मे मादकता बढ़ती जा रही है। जब मै पहली बार बाहर निकला तो मैने अपनी एक किताब मे लिखा था कि 'मैने भारत मे कभी किसी हिन्दुस्तानी शराबी को सड़क पर पडा हुआ नही पाया।' मुझे खेद है कि यही बात मै आज नही लिख सकता। मैने देखा है कि पेरम्बर मे और मद्रास के मजदूरो मे मादकता खूब पैर फैला चुकी है। बम्बई में भी शराबियो के दर्शन

होना कोई असाधारण बात नहीं रही है। कलकत्ते मे भी मैंने शराबियो को देखा है। यही नहीं, इस दर्दनाक दृश्य को मैंने दूर देहात् मे भी देखा है। इससे भी अधिक दुःख मुझे भारतीय स्त्रियो को पी हुई हालत में देखकर हुआ है।"

अफीम के विषय में श्रीयुत कोटमन लिखते हैं "भारत के अधिकांश भागो मे अफीम के रोग का (Opium evil) पता भी नहीं है। केवल बर्मा और आसाम मे अफीम पीने की बुराई कुछ अधिक हद तक बढ़ी हुई है"। क्या हम श्रीयुत कोटमन से पूछें कि वे इस प्रश्न की तुलना पश्चिमी देशो के साथ क्यो नहीं करते ! अफीम के प्रचार के विषय मे भी हम अफीम के अध्याय में लिख चुके हैं।

श्रीयुत कोटमन लिखते है कि पिछले दस वर्षों मे (अर्थात् १९१६–१७ से लेकर १९२६–२७ तक अफीम की खेती ७३ फी सैकड़ा घटा दी गई है। देशी राज्यो से १९२४–२५ मे ११४०० मन अफीम खरीदी गई थी। पर १९२५-२६ में६५०० मन ही ली गई। और भी अफीम की खेती कम करने की कोशिशें हो रही हैं। सन् १९२६ की जनवरी से अजमेर-मेरवाड़ा मे अफीम की खेती रोक दी गई है।

सरकार के कथनानुसार वह Minimum Consumption, maximum Revenue के सिद्धान्त से काम ले रही है। परन्तु

उसकी असली नीति का पता तो मादक द्रव्यो की दूकानो पर पहरा देनेवाले स्वयं-सेवकों की गिरफ्तारियो से ही जनता को लग गया।

भांग-गांजा वगैरा के विषय मे सरकार की यही नीति है।

एक विदेशी सरकार अपनी प्रतिष्ठा का खयाल रखते हुए जितनी लापरवाह रह सकती है, हमारे शासक इन मामलो मे उतनी लापरवाही बराबर दिखा रहे है।

शराब, अफीम और गांजा ऐसी चीजे हैं, जिन्हे सरकार भी बुरा समझती है। परन्तु चाय-तम्बाकू के विषय मे तो बिलकुल जुदी बात है। इन्हे यद्यपि हम चाहे कितना ही बुरा समझे, चूंकि सरकार उनकी खेती वगैरा मे कोई बुराई नही देखती, उनकी बंदी अभी कल्पना के बाहर की बात है। व्यभिचार की बुराई की तरफ तो शायद सरकार का ध्यान भी नही गया है।

इस तरह जब हम इन बुराइयों के प्रचार को और सरकार की नीति को देखते हैं तो हमे मजबूरन सरकार से निराश होना पड़ता है।

पर हमारा आधार हमारे प्रयत्न हैं। शीघ्र ही शासन की बागडोर इस सरकार के हाथो से हमारे हाथो मे निश्चय रूप से आनेवाली है। इसलिए हमे समाज-सुधार के काम को स्वावलम्बन के सिद्धान्त के अनुसार अभी से शुरू कर देना चाहिए।

आज शराब, अफीम आदि नशीली चीजों पर देश का डेढ अरब से अधिक रुपया बरबाद हो रहा है। व्यसनो का शिकार बन जाने पर अन्य तरह से द्रव्य और स्वास्थ्य का जो नाश होता है सो तो अलग। इस सारे विनाश का हिसाब लगाना असम्भव है। अपने देश से इन बुराइयो को हम दूर कर सके तो कम से कम १,५०,००,००,००० रुपये के घर बैठे लाभ के अतिरिक्त हमारे देश का असीम उत्साह, शक्ति और बुद्धि का बचाव हो कर दूसरे क्षेत्रो में उनका उपयोग हो सकेगा। लाखों एकड़ जमीन जो इन चीजो की पैदावार मे लगी हुई है, वह अनाज वगैरा उत्पन्न करने के काम मे आ सकेगी। और देश समृद्ध हो सकेगा।

पर यह सब युवको के किये हो सकता है। क्या हमारे युवक भाई देश की इस आशा की पूर्ति करेगे ?

वैजनाथ महोदय

दूसरे संस्करण की प्रस्तावना

इस पुस्तक का दूसरा संस्करण निकालने मे जो देरी हुई है उसके बारे मे पाठको से क्षमा चाहता हूँ। मण्डल के बार-बार तक़ाज़ा करने पर भी मै संशोधन करके पुस्तक शीघ्र न दे सका। इसका कारण था सत्याग्रह युद्ध। अब की बार जेल से छूटने पर कुछ समय निकालकर मै यह दूसरा संस्करण प्रेस मे भेज रहा हूँ।

मैने कई स्थानो पर परिवर्त्तन परिवर्धन किया है। पुस्तक का अधिकाश भाग, रचना, प्रतिपादन वग़ैरा ज्यो का त्यो है। १९३२ तक के अंक दराज़र आगये है। 'बुराई का अन्त कैसे हो' वाला अध्याय निकालकर उसके स्थान पर 'भारत मे विदेशी शराबो' वाला अध्याय रख दिया है।

व्यभिचार वाले भाग को दूसरी बार नये ढंग से लिखने का मोह कई बार हुआ। पर मैंने उसे ज्यो का त्यो रहने दिया है। उसको दूसरी बार लिखने मे पुस्तक के बहुत बढ़ जाने का भय था। इस विषय पर इन दिनो बहुत-सी पुस्तके प्रकाशित हुई है। अंग्रेजी साहित्य मे तो काम-शास्त्र सम्बन्धी साहित्य की मानो बाढ़-सी आई है। परन्तु मुझे दु:ख है उनका वाचन मनुष्य को निर्विकार और सयमी बनाने मे सहायक नही होगा। प्राचीन ग्रन्थो मे वात्स्यान के कामसूत्र का स्थान बहुत ऊँचा समझा जाता है। मैने उसका एक अनुवाद पढा। पर मुझे उससे भी इस विषय मे बड़ी निराशा हुई। और मुझे निश्चय है कि संयम मार्ग के प्रत्येक पथिक को होगी। उसने तो मानो विलास और व्यभिचार का रास्ता खुला कर दिया है।

सन्तित नियमन-सम्बन्धी कृत्रिम साधनो का प्रचार पहले की बजाय अब कही अधिक हो गया है। पर मेरा अब भी यही ख़याल है कि हमारे राष्ट्र को इस वस्तु से लाभ के बजाय हानि ही अधिक होगी।

वे० म०

कुछ आधार-भूत ग्रन्थ

(1) Alcohol And The Human Race. (2) Alcohol A Menace to India. (3) Drink and Drug Evil in India—Badrul Hussain. (4) Opium in India. (5) आरोग्यता के शत्रु (6) मनुस्मृति. (7) Ten years of Prohibition in Oklahama--Pussey Foot Johnson. (8) Some facts about Alcohol. (9) Indian Opium trade----Rush Brook Williams (10) Ethics of Opium (11) Financial developments in Modern India----C. N. Vakil (१२) जीवन रहस्य (१३) शब्द-कल्पद्रुम (14) Sixty Years of Indian Finance—K Shah (15) Drink and Opium evil in India----Andrews (१६) महाराष्ट्रीय ज्ञानकोष, (१७) हिन्दी विश्वकोष. (17) Encyclopaedia Brittanica. (19) Married Love----M. Stopes (20) Wise Parent-hood. M Stopes. (21) Radient Mother hood--M Stopes (22) Control of Parent-hood. (23) The Pivot of Civilization (24) Self Restraint Vs Self Control, by Mahatmaji. (25) Relation of the Sexes--Tolstoy. (26) What a Youngman ought to Know, Dr. Sylvanues (27) What a Young Woman ought to Know----Wood Allen (28) The Science of New Life---Dr Cowen. (29) The Home book of modern Medicine, Dr Kellogg (30) Home Cyclopedia, Dr Foote (३१) कामसूत्र-वात्सायन (32) Times Indian Year book. (33) India in 1926, 27, by J. Coatman. (34) Dictionary of the Economic products of India---Watt

निर्देशिका

व्यसन

व्यभिचार

परिशिष्ट

भारत में

व्यसन और व्यभिचार

व्यसन

१. शराब	२. अफीम
३. तम्बाकू	४. चाय-काफी
५. भाँग-गाँजा इत्यादि	६. कोकेन

शराब

१. शराब अथवा मद्य

२. सीधे सर्वनाश की ओर

३. भारत शैतान के पंजे में

४. भारत में विदेशी शराब

"माइ लार्डस्, ऐशोआराम की चीजों पर कर लगाया जा सकता है पर दुर्गुणों की तो पूरी रोक होनी चाहिए—चाहे कानून की पाबन्दी में कितनी ही कठिनाइयाँ आवें। क्या आप प्रभु ईसा की आज्ञाओं के भंग पर कोई कर लगा सकते हैं? क्या ऐसा करना दुष्टतापूर्ण और निन्दनीय नहीं होगा? क्योंकि इसके तो मानी होंगे जो कर अदा करे शौक़ से प्रभु की आज्ञाओं का मनमाना भंग करे। (आमदनी के लिए शराब की दूकानों पर कर लगाने की सिफारिश करनेवाला) यह प्रस्ताव उन शर्तों को उपस्थित करता है जिनका पालन करने पर लोग आइन्दा मनमाना व्यभिचार और फ़साद कर सकते हैं जिनके लिए कानून का आम परवाना होगा और न्यायाधीश लोग जिन्हें चुपचाप देखते रहेंगे। क्योंकि इसमें कोई शक नहीं कि शासक, जिन्हें कि शराब से इतनी भारी आय होगी, अपने अधिकारियों को शराब की बिक्री बढ़ाने में उनकी मदद करने की प्रेरणा बराबर करते रहेंगे।

"जब मैं इस प्रस्ताव के असली उद्देश्य पर विचार करता हूँ तो मुझे साफ-साफ नजर आता है कि इसका सिवा बीमारियों के बढ़ने, उद्यम के दबने और मनुष्य-जाति के सर्वनाश के और कोई नतीजा न होगा। मैं इसे एक महाभयंकर यन्त्र समझता हूँ जिसके द्वारा जो लोग मरते-मरते बचेंगे हरतरह से निकम्मे हो जायँगे और जिनके दिमाग़ तन्दुरुस्त हालत में बचेंगे उनकी और इन्द्रियाँ निकम्मी हो जायँगी।"

—लार्ड चेस्टरफील्ड

[१]

शराब अथवा मद्य

शराब आजकल की वस्तु नहीं है, युगो से प्रत्येक देश के लोग किसी न किसी प्रकार का मद्य पान करते ही आये है। उसकी मादकता आरम्भ मे गुण समझी जाती थी। पर ज्यो-ज्यो मानव-जाति का विकास होने लगा, उसके बुरे-विषैले परिणाम से मनुष्य-जाति परिचित हो गई। प्रत्येक धर्म के आदि-ग्रन्थो मे हमे इसके विषय मे निषेधात्मक वाक्य मिलते है। वेद, कुरान, मनुस्मृति,धम्मपद आदि सब इसका तीव्र स्वर से निषेध करते आये हैं। फिर भी मानव-जाति इससे अभी तक अपना पिंड नहीं छुड़ा पाई। समाजशास्त्र के विशेषज्ञ कहते है कि कई जातियाँ शराब के व्यसन की शिकार होकर इस पृथ्वी-तल से सदा के लिए मिट गई। न जाने कितने साम्राज्य इस विष के शिकार हुए हैं ? शराब पीते ही कर्तव्या-कर्तव्य का ज्ञान चला जाता है। भारतीय इतिहास में यादव-साम्राज्य के विनाश का इतिहास, जो खून के अक्षरो में अंकित है, इसी का कुपरिणाम है। रावण जैसे महान शक्ति-शाली और बुद्धिमान राजा की बुद्धि को नष्ट करने तथा उसे पतन की ओर ले जाने का दोष शूर्पनखा को नहीं, यदि शराब ही को दिया जाय तो शायद अनुचित न होगा। कम से कम हमें तो उस प्रबल राक्षस-जाति के पराजय का मूल कारण यही प्रतीत होता है। हम राम-रावण युद्ध का हाल

पढ़ते है। राक्षस हमे मदान्ध शराबियो के से लड़खड़ाते हुए, बुद्धिशून्य होकर लड़ते दिखाई देते हैं। रामायण मे आद्य-कवि उस राक्षसी सभ्यता का चित्र हूबहू हमारे सामने खड़ा कर देते है। आर्य हनूमान के साथ-साथ जब वे हमे लंका और रावण के अन्तःपुर की सैर कराते है, तभी भीतर से अंतरात्मा कह देती है कि इस मदान्ध जाति की अमानुप शक्ति भी मनुष्य किन्तु सतत जागृत रहनेवाले श्रीराम के सामने नहीं टिक पायेगी। हम हिन्दू-साम्राज्य के वैभव-काल का अथवा मुसलमान-साम्राज्य का विहगावलोकन करते है तो दोनो की सुरा-वृत्ति मे हमे इनके पतन के बीज दिखाई देते है। राजपूतो के समान शौर्यशाली जाति पृथ्वी-तल पर और कहाँ होगी ? पर वह भी मदिरा की गुलाम ही थी। मध्यकालीन काव्य-ग्रन्थो मे हमे मदिरा के असीम प्रचार के सबूत दिखाई देते है। राज-पुरुपो के लिए मदिरा एक अनिवार्य वस्तु-सी थी। बिना मदिरा के जीवन अधूरा समझा जाता और विपय-विलास का मजा किरकिरा हो जाता था। भारतीय हिन्दुओ और मुसलमानों ने देवी मदिरा के प्याले पर भारतीय स्वाधीनता को यो न्यौछावर करके विदेशियो के हाथों में सौप दिया, जैसे युवतियां नव-वधूवरो पर से तीन पाई न्यौछावर करके नाई या ढोल बजानेवाले को दे देती है और कहती है "भला हुआ मेरे भैया के सिर की बला टली।" हमारा दुर्भाग्य !

परन्तु लक्षणो से तो अब ऐसा जान पड़ता है कि विज्ञान के प्रखर प्रकाश मे यहाँ शराब की अधिक दिनो तक दाल न गलेगी। वैज्ञानिक खोजो से पाया गया है कि शराब में 'अल-कोहल' नामक एक महाभयंकर विप होता है।

शराब का विष ×

शुद्ध अलकोहल एक जलने योग्य रासायनिक द्रव है, जो शक्करदार पदार्थों के सड़ने पर उनसे उत्पन्न हो जाता है। ज्ञात होता है कि सामाजिक कार्यों के अवसर पर अभ्यागतों का किसी खाद्य-पेय द्वारा स्वागत करने की प्रथा मानव-जाति में अनादि काल से चली आई है। ये पेय भिन्न-भिन्न फल, नाज और फूलों से बनाये जाते—मसलन् अंगूर, जौ, गेहूँ, गन्ना, महुए के फूल इत्यादि से। मनुष्य स्वभावत. आरामतलब है। उसने सोचा हरबार इन पेयों को कौन तैयार करे ? त्यौहार पर अभ्यागतों के लिए तरह-तरह के पेय एकदम बनाकर ही क्यों न रख ले ? और यही होने भी लगा। पर इस प्रथा के कारण पेय की ताजगी मारी गई। वह सड़ने लगा और उसमें वही अलकोहल नामक विष उत्पन्न होने लगा। परन्तु अलकोहल तो मादक होता है। ज्यों-ज्यों मनुष्य इस पेय को पीता, कुछ दुर्गन्ध भी आती, पर साथ ही एक अजीब प्रकार का आनन्द भी उसे मिलने लगा। फिर क्या था ? धड़ाधड़ इसका प्रचार होने लगा। सभी यों पेय बना-बनाकर रखने लग गये। यही शराब का प्राथमिक स्वरूप था। इसके बाद तो इसी प्रथा के अनुसार लोग कई

×संसार मे जितने भी मादक द्रव्य है शरीर पर उनकी क्रिया प्राय. एक-सी है। अत हम पाठकों से अनुरोध करते है कि वे इस अध्याय को ध्यान-पूर्वक समझ ले। पुनरुक्ति-दोष से बचने के लिए हम इस बात को यहां जरा विस्तारपूर्वक लिख देते है कि शरीर पर शराब के विष का परिणाम कैसे होता है? वही क्रिया न्यूनाधिक परिमाण मे अन्य विषों की भी होती है।

प्रकार के सुगंधित और स्वादिष्ट द्रव्य उसमें डालकर बाकायदा शराब बनाने लग गये। शराब की मादकता ने इसके भक्तों की संख्या एकदम बढ़ा दी, और शराब के बनाने तथा उसका व्यापार करने वालो का समाज मे एक भिन्न वर्ग ही खड़ा हो गया, जो शराब को बड़े पैमाने पर तैयार करने लग गया। मनुष्य की सुख-लालसा ने एक महान् राक्षस को जन्म दे दिया जिसने शीघ्र ही त्रैलोक्य पर अपना प्रभुत्व जमा लिया। इस पेय को और भी आनन्ददायक बनाने के लिए मनुष्य ने उसका अर्क निकाल (डिस्टिल) करके उसके अन्दर अलकोहल का प्रमाण बढ़ाने की तरकीब ढूँढ निकाली। × आज-कल भिन्न-भिन्न प्रकार की स्पिरिट शरावे इसी तरकीब से बनाई जाती है।

वैज्ञानिक जाँच और उसका परिणाम

इधर कई वर्षों से पश्चिमी संसार मे शराब-सम्बन्धी खोजो ने वड़ी खलवली मचा दी है। सैकड़ो डाक्टरो ने इस

× जैसा कि ऊपर बताया गया है, अल्कोहल पानी का-सा पतला पदार्थ होता है। ७८ डिग्री (सेन्टिग्रेड) गरम करनेपर वह भाफ बन जाता है। पानी में १०० डिग्री पर उवाल आता है। इसलिए अगर ऐसे मिश्रण को गरम किया जाय कि जिसमें पानी और अलकोहल दोनों मिले हुए हैं, तो उसका पानी उबलने के पहले ही अलकोहल भाफ बनकर उड़ जायगा। इस तरह अगर सावधानी के साथ एक नली मे से इस भाफ को लेजाकर अलग ठंडा कर दे तो शुद्ध अलकोहल हमें मिल सकता है। शुद्ध अलकोहल को अलग करने की इस क्रिया का नाम डिस्टिलेशन है।

सड़ाकर बनी हुई शराब से अलकोहल इसी तरह अलग निकाल लिया जाता है। और शुद्ध अलकोहल मे ज़रूरत के मुआफिक़ थोड़ा या ज़्यादा पानी डालकर तेज़ या हलकी शराब बना ली जाती है।

बात को स्वीकार किया है कि अलकोहल मनुष्य के लिए ही नहीं बल्कि जीव-मात्र के लिए घातक विष है। फिलाडेल्फिया के डॉ० बेंजामिन रश ने अपने एक पत्रक द्वारा इस विषय पर पहले-पहल वैज्ञानिक ढंग से प्रकाश डाला। (१७८३) डॉ० रश रसायन-शास्त्र के प्रोफेसर, अमेरिका की कमिटी ऑव इण्डिपेण्डेंस के चेयरमैन, तथा रेवोल्यूशनरी वॉर के मिलिटरी डिपार्टमेण्ट में सर्जन-जनरल थे। वे अपने 'मानव-शरीर पर शराब के दुष्परिणाम' नामक ग्रन्थ मे लिखते है "खींचकर निकाली हुई शराबें मनुष्य के लिए बड़ी घातक हैं।" दुर्भाग्य-वश उन्होंने मामूली (फरमेण्टेड) शरावों के विषय मे कुछ नहीं लिखा, जिनमें भी अलकोहल काफ़ी परिमाण मे होता है। बल्कि उन्होंने तो शराब का "संयम-पूर्वक" सेवन करने तक की सलाह दे डाली है। इसके बाद स्वीडन के डॉ० मगनस हस ने इस विषय पर और भी प्रकाश डाला। उन्होंने अपने ग्रंथ मे 'आधुनिक शराब-खोरी' को बहुत हानिकर बताया है और प्रमाणों द्वारा अपने कथन की पुष्टि की है। पच्चीस वर्ष बाद लंदन के डॉ० बेंजामिन वार्ड रिचर्डसन ने अपने अनेक वर्षों के प्रयोग के बाद यह सिद्ध कर दिया कि अलकोहल उत्तेजक पेय नहीं, बल्कि जीवाणुओं को मारकर शरीर को सुन्न बना देने वाला विष है। उसे जिस किसी रूप और मात्रा मे लिया जायगा, शरीर पर उसका असर विष की तरह घातक ही होगा। इन प्रयोगों के पूर्ण होते ही डॉ० रिचर्डसन ने हमेशा के लिए शराब छोड़ दी। पश्चिम में शराब-बन्दी की हलचल के वे प्रवर्तक समझे जाते हैं।

डॉ० रिचर्डसन के आविष्कारो ने शराब के इतिहास मे सचमुच युगान्तर उपस्थित कर दिया। अमेरिका मे डॉक्टर नेविस ने इस आविष्कार का खूब प्रचार किया। फल यह हुआ कि सन १९१५ मे 'दि ग्रेट कमिटी ऑन दि अमेरिकन फार्माकोपिया' ने दवाओ की फेहरिस्त मे शराब का नाम ही उड़ा दिया। इसके तीन ही साल बाद सन् १९१८ के जून मास मे 'नेशनल कन्वेन्शन ऑव दि अमेरिकन मेडिकल ॲसोसिएशन' के अध्यक्ष ने समस्त डॉक्टरो से जोरो से अपील की कि वे शराब-बन्दी के आन्दोलन मे शरीक हो जायॅ, क्योकि जन-साधारण के स्वास्थ्य-सुधार का यही एक महत्त्वपूर्ण उपाय है।

इसके साथ ही संसार के डॉक्टरो मे एक महान् हलचल हो गई। संसार के तमाम बड़े-बड़े डॉक्टरो ने पृथक्-पृथक् प्रयोग करके शराब की बुराइयो की जांच शुरू कर दी। और सब के सब इसी नतीजे पर पहुँचे कि शराब का विष (अलकोहल) क्षय, न्यूमोनिया, विषम ज्वर, विषूचिका, लू तथा पेट, जिगर, गुर्दा, हृदय, रक्तवाहिनियॉ, स्नायु, तथा मस्तिष्क के कई प्रकार के रोगो का जनक और पोषक है। इन प्रयोगो के कर्त्ता तथा संशोधक डॉक्टरो की नामावली यहाँ देना व्यर्थ है। क्योकि अब यह बात संसार के सभी लोग मानने लग गये है। परन्तु उनमे से मुख्य-मुख्य डॉक्टरो के नाम इस प्रकार है:—अमेरिका के डॉक्टर क्रॉदर्स, डॉक्टर वेल्श, और डॉ० चिटेण्डन; ग्रेट-ब्रिटेन के डॉ० मूरहेड, डॉ० होर्सली डॉ० वूडहेड; फ्रान्स के डॉ० बर्टिलेन, डॉ० बोडेरान, ब्रॉरडेल, और डॉ० मॅगनन् के अतिरिक्त विएना के डॉ० विचसेलडम, स्टॉकहोम के डॉ० हेन्सचेन, प्रशिया के

डॉ० गॅटस्टेट और स्विट्जरलैंड के डॉ० फॉरेल ।

परन्तु अलकोहल की पूरी-पूरी बुराइयाँ तो पश्चिम में तब जाहिर हुईं जब श्रमजीवियों की योग्यता अर्थात् काम करने की शक्ति को जाँचने की जरूरत पैदा हुई । और इस क्षेत्र में वैज्ञानिक खोजों ने जो महत्वपूर्ण काम किया है, वह शायद ही और कहीं किया हो । हर जगह श्रमजीवी की अयोग्यता का मुख्य कारण शराबखोरी ही पाया गया । यह जाँच इतनी संपूर्ण और चौंका देनेवाली है कि अब तो पश्चिमी संसार की फौजें, नौ-सेनाएँ, रेलवे तथा अन्य समस्त संस्थाएँ इसी नतीजे पर जा पहुँची हैं कि अपने-अपने विभाग में शराब की पूरी बन्दी कर दी जाय । युरोप के तमाम राष्ट्र अब इसी कोशिश में हैं कि जितनी जल्दी हो सके देश को इस शराब-रूपी मोहक विष के पंजे से छुड़ा दिया जाय । विज्ञान डंके की चोट कह रहा है कि शराबखोर राष्ट्रों के सामने केवल दो मार्ग खुले हैं । यदि उन्हें भावी कल्याण की आशा और इच्छा है तो वे शराब को एक-बारगी छोड़ दें, और अपने आपको तथा राष्ट्र को इस अवश्यम्भावी विनाश से बचा लें । अन्यथा सर्वनाश उन्हें तथा उनके राष्ट्र को ग्रसने के लिए मुँह बाये खड़ा ही है । यदि वे शराब को नहीं छोड़ेंगे तो भूतकालीन साम्राज्यों तथा महान जातियों के समान वे भी इस पृथ्वीतल से मिट जावेंगे ।

शरीर एक सुन्दर राष्ट्र है

प्रकृति मनुष्य की माता और गुरु भी है । आजतक मनुष्य ने जितने आविष्कार किये हैं, सब उसके रहस्यों का

उद्घाटन-मात्र हैं। और अभी उसके गर्भ में ऐसे अनन्त रहस्य हैं जो मनुष्य से छिपे हुए है। दूर जाने की जरूरत नहीं। हमारा शरीर ही एक ऐसी आश्चर्यमय वस्तु है कि अभी तक इतने आविष्कारो और खोज-भाल के बाद भी मनुष्य अपने शारीरिक रहस्यो का एक हिस्सा-मात्र ही समझ पाया है। शरीर-शास्त्र के किसी अंगरेज लेखक ने इसे 'ईश्वर का जीवित मन्दिर' (The Living Temple of God) कहा है। यदि मनुष्य इसकी रचना, इसका कार्य और रहस्य समझ ले, तो उसे परमात्मा को अलग खोजने की जरूत ही न रहे। उसकी कृति का,अस्तित्व का यह एक सादा और सुन्दर नमूना है।

हमारा यह छोटा-सा शरीर एक सुसंगठित सुन्दर राष्ट्र है। ऐसा सभ्य, सुव्यवस्थित और सुशासित कि यहाँ की-सी व्यवस्था मनुष्य के बनाये किसी भी राष्ट्र में मिलना असंभव है। यों देखने से हमें शरीर एक संपूर्ण वस्तु-सा मालूम होता है, किन्तु यह असंख्य सूक्ष्म जीवाणुओ से बना हुआ है। वे उसके नागरिक हैं। एक राष्ट्र मे कई प्रकार के नागरिक होते हैं, और वे भिन्न-भिन्न प्रकार के काम करते हैं, उसी प्रकार इस शरीर के अन्दर भी कई प्रकार के जीवाणु अपने राष्ट्र के शासन-संचालन मे लगे हुए है। अपने काम को छोड़कर उन्हे न तो बाहरी बातो की ओर ध्यान देने को अवकाश है और न वे कभी इसकी इच्छा ही करते है। उनके लिए तो स्व-कर्तव्य ही जीवन है। जीवन कर्तव्य है, और कर्तव्य जीवन। जब राष्ट्र मे भी ये दोनों इसी तरह ओतप्रोत हो जाते हैं, तब वह एक व्यक्ति की तरह काम करने लग जाता है, तब वह स्वतंत्र होता है।

अंग्रेजी मे इन जीवाणुओ को 'सेल' कहते हैं । जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है इन जीवाणु-संघो ने हमारे शरीर के अंदर उत्कृष्ट श्रम-विभाग के सिद्धान्त के अनुसार, अत्यन्त पूर्णता के के साथ अपने-अपने काम बॉट लिये हैं। कुछ जीविकार्जन मे जुट पड़े है, जैसे—मुँह, पेट, अन्नाशय, फेफड़े इत्यादि। वे खाना, पानी और शुद्धवायु को हमारे शरीर के अन्दर पहुँचाते रहते है। कुछ इन द्रव्यो को शरीर के भिन्न-भिन्न भागो मे बॉटते रहते है। और बचे-खुचे अवशेष को बाहर फेक देते हैं। यह काम हृदय, खून, फेफड़े, जिगर, तथा त्वचादि जीवाणु-संघ करते है। इनके अतिरिक्त जो जीवाणु-संघ है, वे व्यवस्थापन, राज्य-संचालन, राष्ट्र-रक्षा, आरोग्य-पालन आदि काम करते रहते है जैसे मस्तिष्क, रीढ़, स्नायु इत्यादि ।

जीवाणु की रचना और जीवन-क्रिया

मानव-शरीर के जीवाणुओ की अपने-अपने गुण-कर्म के अनुसार कई जातियाँ है। सब के सब प्रोटोप्लाजम नामक एक सजीव द्रव्य के बने होते है। प्रत्येक जीवाणु (सेल) की रचना यो होती है : एक केन्द्र के आस-पास एक अ-पारदर्शक द्रव लगा रहता है। सेल का (जीवाणु का) जीवन इसी केन्द्र की शुद्धि और नीरोगता पर निर्भर है। केन्द्र शुद्ध और नीरोग होगा तो सेल भी नीरोग होगे और शरीर भी नीरोग एवं वलिष्ट।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, जीवाणु कई प्रकार के होते हैं। कई केवल एक केन्द्र के होते है, जैसे अमीबा; कई मे दो, तीन, चार इस तरह अनेक केन्द्र होते है। यही प्रारम्भिक जीवाणु समस्त प्राणियो के जीवन मे अत्यन्त महत्वशाली वस्तु है। इनकी

शुद्धि, इनके नीरोग और इनके रुग्ण होने पर ही प्राणियों के शरीर की शुद्धि, नीरोगता और रुग्णावस्था निर्भर करती है।

हमारे शरीर मे इन जीवाणुओं के निर्माण और पुनर्निर्माण की क्रियाएँ आजीवन अनवरत रूप से जारी रहती है। हम अणुवीक्षण यंत्र की सहायता से छोटे से छोटे जीवाणुओ के जीवन-क्रम को भी अपनी आँखो देख सकते है। हम ऊपर कह चुके है कि कितने ही जीवाणुओ मे केवल एक ही केन्द्र का सेल होता है। अमीबा एक इसी प्रकार का जीवाणु है, जो स्थिर जलाशयो मे पाया जाता है। यदि हम इस जलाशय से एक बून्द पानी लेकर उसकी जाँच करे, तो हमे वह साफ तौर से इधर-उधर दौड़ता, खाना और हवा को भीतर लेता और मल का त्याग करता हुआ दिखाई देता है। कुछ देर बाद हम देखते है कि उसका केन्द्र बीच मे से दो हिस्सो में बँट जाता है और आस-पास का द्रव इन दोनो केन्द्रो के बीच हो जाता है और शीघ्र ही वह सारा सेल दो भागो मे विभक्त हो जाता है। यह नवीन सेल भी पहले सेल की तरह अपनी पृथक् जीवन-यात्रा शुरू कर देता है। कई जीवाणुओ की नव-निर्माण-क्रिया कुछ भिन्न होती है, उदाहरण के लिए यीस्ट (Yeast) नामक सेल को ही लीजिए। इसमे माता सेल स्वयं द्विधा होने के बजाय एक ही बार मे कई नये जीवाणुओं को पैदा कर देती है। प्राणि-जीवन में इस क्रिया को 'बडिंग' अथवा उन्मीलन-क्रिया कहा जाता है।

जिस प्रकार व्यक्ति राष्ट्र के घटक है और उसके जीवन के लिए महत्वपूर्ण तथा आवश्यक वस्तु है, उसी प्रकार ये जीवाणु

प्राणियो के शरीर के आद्य सजीव घटक है, और प्रत्येक प्राणी का जीवन, मरण, आरोग्य तथा रुग्णावस्था इन्हीं आद्य जीवाणु-संघो की शुद्ध अवस्था पर निर्भर है। अतः यहाँ पर उन सेल अथवा जीवाणुओ के घटक द्रव्य के विषय मे भी कुछ कह देना जरूरी है।

जीवाणु प्रोटोप्लाज्म नामक एक सजीव द्रव के बने होते है। यह द्रव स्वयं प्रोटीन से बनता है। और प्रोटीन मे नीचे लिखे पदार्थ उनके सामने लिखी मात्रा मे होते है।

पदार्थ	मात्रा प्रतिशत
कार्बन	.५३
ऑक्सिजन (प्राणवायु)	.२२½
नायट्रोजन	.१६½
हाइड्रोजन	.७

शराब की जीवाणुओं पर क्रिया

अब हम यह देखे कि अलकोहल अर्थात् शराब के विष का हमारे शरीर पर क्या असर होता है।

हमारा सारा शरीर इन जीवाणुओं से भरा है। अन्तर केवल इतना ही है कि बाहरी त्वचा के जीवाणु एक रक्षक पदार्थ द्वारा अधिक सुरक्षित है। पर शरीर के भीतर तो वे खुले हैं। यदि हम थोड़ी-सी शराब मुँह मे ले और उसे थोड़ी देर तक मुँह में रक्खे रहे तो हमे उसका प्रभाव फौरन मालूम हो जायगा। इसे मुँह मे लेते ही जबान तथा मुँह चुरमुराने लगता है और मुँह का सारा भीतरी हिस्सा सफेद हो जाता है। इसके बाद यदि आप

किसी चीज को खावेगे तो आप देखेंगे कि मुँह का स्वाद जाता रहा है।

इसके मानी क्या है ? यही कि मुँह के कोमल जीवाणुओ को शराब ने मूर्च्छित कर दिया है। उनकी चेतना-शक्ति नष्ट हो जाने के कारण वे स्वाद-ज्ञान को अनुभव नहीं कर सकते—इसीलिए शराबी आदमी शराब पीने पर अपनी मूर्च्छित स्वादेन्द्रिय को उत्तेजित या जागृत करने के लिए चरपरे पदार्थ खाता है। बड़ी देर बाद मुँह का स्वाद पुन. लौटता जरूर है, पर उसकी पहली चेतना-शक्ति फिर कभी नहीं लौटती। शराब को मुँह मे केवल थोड़ी देर रखने से जब हमारे मुँह के जीवाणुओ की चेतना-शक्ति को वह इस तरह मूर्च्छित कर देती है, तब पेट में जाने पर, जहाँ वह इतनी देर तक रहती है; वह न मालूम कितना उपद्रव मचाती होगी, कितनी हानि पहुँचाती होगी ?

बात यह है कि अलकोहल उपर्युक्त प्रोटीन द्रव्यों को कड़ा बना देता है। एक अंडे पर यदि अलकोहल डाल दिया जाय तो वह मर जाता है। अलकोहल प्रोटोप्लाज्म नामक उपर्युक्त सजीव द्रव अथवा जीवन-रस से पानी को सोख लेता है। इससे वह उन जीवाणुओ के केवल शरीर को ही हानि नहीं पहुँचाता बल्कि उनकी जीवन-क्रिया में भारी रुकावट डाल देता है, जिसका प्रतीकार करना उन कोमल जीवाणुओ के लिए असंभव हो जाता है। और यही हानि सब से भयंकर है। क्योंकि इन जीवाणुओं का जीवन ही प्राणी का एकमात्र जीवन है।

एक और प्रत्यक्ष उदाहरण लीजिए। यीष्ट जन्तु का जिक्र ऊपर आ चुका है। यही जंतु शक्करदार पेय पदार्थों से शराब

बनाता है। एक निश्चित समय तक जब वह पेय पड़ा रहता है तब उसमे यह जन्तु पैदा हो जाता है और उसे फरमेंट (सड़ाने) करने लगता है। पाठक ऊपर पढ़ चुके है कि इसकी उत्पत्ति की गति बड़ी तेज है। पैदा होते ही शीघ्र ही यह सारे पेय को अपनी प्रजा से भर देता है, और ये सब मिलकर अपना कृमि-जीवन-व्यापार अर्थात् खाना-पीना और पाखाना-पेशाब आदि सब क्रियाएँ उस पेय मे ही शुरू कर देते है। उस पेय के अन्दर की शक्कर को खाकर अपने शरीर के अन्य द्वारों से वे उसे दो रूपो मे बाहर निकाल देते है। एक तो होता है गैस अथवा दूषित वायु जिसे डायोक्साइड कहा जाता है, और दूसरा होता है द्रव, जिसे हम अलकोहल कहते हैं। यही अलकोहल भयंकर विष है। अलकोहल उत्पन्न होते ही वह अपने जनक-जीवाणु अर्थात यीस्ट पर ही आक्रमण कर देता है। इस मलात्मक विष की तीव्रता के कारण वह जीव मरने लग जाता है। पेय 'मे' इसकी मात्रा प्रति सहस्त्र एक 'होते' ही यह घातक क्रिया दृष्टि-गोचर होने लगती है, अलकोहल बढ़ता जाता है तथा जीवाणु घटते जाते है। और अलकोहल की मात्रा पेय मे प्रतिसहस्त्र चौदह तक पहुँचने पर यीस्ट जीवाणुओं का जीवन असम्भव हो जाता है। वे मर जाते है और फलतः अलकोहल के भी बनने की क्रिया बन्द हो जाती है। जब इससे भी अधिक परिमाण मे अलकोहल की जरूरत होती है तो जैसा कि पहले बताया गया है उस द्रव्य का अर्क निकाल लिया जाता है।

सारी जीव-सृष्टि छोटे-छोटे जीवाणुओ से बनी हुई है। योस्ट भी उनमे से एक है। वह अलकोहल बनाता है। इसलिए यदि

सच पूछा जाय तो अल्कोहल का प्रतीकार करने की शक्ति यीस्ट में सबसे अधिक होनी चाहिए और होती भी है, पर अल्कोहल अपने ही पैदा करनेवाले अर्थात यीस्ट को भी मार डालता है। पाठक अनुमान कर सकते है कि फिर वह मानव-शरीर के कोमलतम और अधिक से अधिक उत्क्रान्त (Evolved) जीवाणुओ के लिए कितना घातक होगा ! प्राणी-शरीर जितना ही अधिक उत्क्रान्त × होता है, अल्कोहल उसके लिए उसी

× आजकल बहुत से विद्वान यह मानते हैं कि मनुष्य-शरीर शुरू से ही ऐसा उन्नत नहीं था, जैसा कि आज हम उसे देख रहे है। अन्य प्राणियों के लिए भी यही बात कही जाती है। उनका कहना है कि इस सृष्टि मे पहले पहल ऐसे जीव पैदा हुए जिनकी शरीर-रचना बहुत मामूली थी और धीरे-धीरे उनका विकास होता गया। उदाहरण के लिए डारविन साहिब का ख़याल है कि मनुष्य का आद्यरूप बन्दर था। धीरे-धीरे विकसित होता हुआ वह मनुष्य के इस रूप को प्राप्त हुआ। इस कथन की पुष्टि में ऐसा ख़याल रखनेवाले विद्वान बीच की कई लड़ियां भी बताते हैं। हम भी देखते है कि मनुष्य विकास तो अवश्य करता है। अगर उसकी शारीरिक और मानसिक उन्नति के लिए पूर्ण अवकाश और अनुकूलता हो तो वह खूब उन्नत हो सकता है। गुलामी के मानी है इस अवकाश और अनुकूलता का अभाव अथवा प्रत्यक्ष रुकावट। इसीलिए हम देखते है कि स्वाधीन राष्ट्र के नागरिक गुलाम राष्ट्रो की अपेक्षा हर बात मे बढ़े-चढ़े होते है। उत्क्रान्ति इसी सर्वाङ्गीण विकास और उन्नति का नाम है, फिर वह चाहे मनुष्य या किसी अन्य प्राणी की हो। इस विषय का जिन्हे विस्तार-पूर्वक ज्ञान प्राप्त करना हो वे सस्तामण्डल मे प्रकाशित "जीवन विकास" और "संघर्ष या सहयोग ?" नामक पुस्तकें ज़रूर पढ़े।

मात्रा में अधिक भयंकर और नाशक पाया गया है। मनुष्य ऊँची से ऊँची श्रेणी का प्राणी होने के कारण अल्कोहल का प्रभाव उस पर सबसे अधिक भयंकर होता है। उसके मस्तिष्क, स्नायुकेन्द्र तथा ज्ञानेन्द्रियो पर, जो उत्क्रान्ति की सब से ताजी और श्रेष्ठ उपज है, वह और भी तेजी से आक्रमण करता है। वह इन इन्द्रियो को मूर्छित कर देता है। इनके मूर्छित होते ही नीति-अनीति की भावनाओ पर मनुष्य का अधिकार वा नियंत्रण उठ जाता है। ढालू जमीन पर दौड़ने वाली गाड़ी के समान उसका शरीर बेरोक काम करने लगता है। शराबी को कम-से-कम परिश्रम का अनुभव होता है। और वह सोचता है कि मुझमें खूब शक्ति का संचार हो गया है। पर वास्तव में जब उसकी ज्ञानेन्द्रियाँ अपनी मूर्च्छा से जागती हैं तब उन्हे पता लगता है कि कोई राक्षस आकर उनके मन्दिर को अपवित्र कर गया और उनकी शक्ति को चुरा ले गया। मूर्च्छा के कारण स्वयं ज्ञानेन्द्रियाँ अथवा विवेक-भावनाएँ भी अपनी पुरानी शक्ति से हाथ धो बैठती हैं। उनकी शासक, वा नियन्त्रण करने की, शक्ति हरबार घटती ही रहती है, और दिन-ब-दिन मनुष्य अधिक अनियंत्रित, निरंकुश वा दूसरे शब्दो मे कहना चाहे तो अनीति-शाली, पतित और पशुवत् बनता जाता है।

शराब पीने पर—

ऊपर बताया जा चुका है कि मुँह में शराब लेते ही वह भीतर की मुलायम लाल-लाल चमड़ी को सख्त और सफेद बना देती है। इसके साथ ही स्नायुओ पर भी एकाएक आघात पहुँच-

कर रस-निर्माण-क्रिया एकदम अव्यवस्थित हो जाती है। इस आघात के कारण शरीर की और भी कितनी ही मामूली क्रियाओं में बड़ी गड़बड़ी मच जाती है। ठीक तो है। जब कोई बाहरी शत्रु किसी नगर पर आक्रमण करता है तब क्या सब नागरिक अपना मामूली काम छोड़-छोड़कर उसके प्रतीकार के लिए नहीं दौड़ पड़ते ?

इसके बाद शराब का असर उन रक्त-वाहिनियों पर होता है जो शरीर की इस कोमल त्वचा के नीचे या भीतर होती हैं। वे फूलती हैं और शरीर की चमड़ी फैल जाती है। पेट तथा अन्य अवयवों के आस-पास की रक्त-वाहिनियों पर भी यही असर पड़ता है। उनके भीतर का खून जमने लगता है। रक्त-वाहिनी की सजीव त्वचा सुन्न और मूर्च्छित हो जाती है। उनका लचीला-पन नष्ट होकर वे कड़ी और जल्दी टूट जानेवाली हो जाती है।

जो लोग भोजन के बाद या साथ ही, शराब पीते हैं उनके पेट के नाजुक और महत्वपूर्ण स्नायुओं की जीवन-शक्ति को निःसन्देह वह कमजोर बना देती है और जठराशय के काम में भारी रुकावट पैदा कर देती है। जठराशय का काम है अन्न का मंथन करके उससे नाना प्रकार के रस तैयार करना। पर जब *अन्न के साथ-साथ पेट में शराब भी पहुँचती है तब वह सुन्न हो जाता है और पाचन-क्रिया रुक जाती है।*

यदि शराब भोजन के बाद न ली जाय और जठरा-शय में अन्न का मंथन होकर वह द्रव रूप में कहीं परिणत हो गया तो भी बार-बार शराब पीने के कारण रक्त-वाहिनियों की

दीवारो की त्वचा तो फिर भी सुन्न और कड़ी हो जाती है। तव वे न तो उस द्रव से अपने पोषण के योग्य रसों को सोख सकती हैं और न अपने भीतर की अशुद्ध अवशिष्ट चीजो को वाहर फेंक सकती हैं। इन अवयवो के जीवाणु-संघ कमजोर और दुर्वल हो जाते है और वे अपने नव-निर्माण के अयोग्य हो जाते है। शनैः-शनैः अन्नाशय तथा आस-पास की रक्त-वाहिनियो के कोमल त्वचात्मक आवरण निर्जीव होकर गिर जाते हैं। और भीतर से नये आवरण उनका स्थान लेते रहते है। पुनः इस नई त्वचा पर शराव वही क्रिया आरम्भ करती है। फिर और निर्जीव जीवाणु पेट से इकट्ठे होकर पाचन-क्रिया में असीम रुकावट डालते है। इन मृत जीवाणुओ से एक विष पैदा होकर वह भी शनैः-शनैः शरीर मे फैलता रहता है । इसकी क्रिया भी प्राय. वैसी ही होती है जैसी गर्भिणी के पेट मे वच्चा मर जाने से होती है। फर्क सिर्फ इतना ही है कि वह मृतपिंड वड़ा होने के कारण माता के शरीर पर उसका विष वहुत जल्दी और दृश्य-रूप से असर करता हुआ दिखाई देता है। और शराव के कारण होने वाली जीवाणु-हत्या सूक्ष्म होने के करण उसके दृश्य-स्वरूप और फल को हम तत्काल नही देख सकते। लेकिन *इसी विष के कारण हम प्रति वर्ष हजारों शराबियों की. भरी जवानी में ही मृत्यु होती देखते हैं।*

रक्त-संचालन पर शराव का प्रभाव

पर अन्नाशय का विगड़ना या सड़ना और पाचन-क्रिया में गड़वड़ी होना तो शराव से होनेवाले शरीर का केवल श्रीगणेश है।

जठराशय के पाचक रसों में एक भी ऐसा शक्तिशाली रस या क्षार नहीं है जो शराब के विष को—अलकोहल को हजम कर सके। अत. पेट में जाते ही वह प्रतिशत बीस के प्रमाण में सीधा हमारे खून में प्रवेश कर जाता है और शेप अर्थात प्रतिशत ८० हमारी अँतड़ियाँ (Intestines) अर्थात् पाचक तथा शोषक नलिकाओ के जरिये बाद में खून मे जा मिलता है। शराब पीने के बाद कोई ३० से लेकर ९० मिनिट के अन्दर ही शराब खून मे जा पहुँचती है।

खून में मिलते ही अलकोहल एकदम अपना जहरीला प्रभाव शुरू कर देता है। खून मे से वह ऑक्सिजन (प्राणवायु) तथा पानी को सोखकर प्रोटीन तथा अल्ब्यूमेन को गाढ़ा बना देता है। इससे खून के मुख्य काम में—अर्थात् पोषक द्रव्यो को शरीर के भिन्न-भिन्न भागो में पहुँचाने मे बड़ी रुकावट हो जाती है। शरीर की पोषण-क्रिया रुक जाती है। शरीर मोटा-ताजा तो दिखाई देता है [क्योंकि नसे तथा रक्त-वाहिनियाँ सूज जाती हैं और निर्जीव कूड़ा-कचरा शरीर के प्रत्येक भाग में इकट्ठा हो जाता है] पर वास्तव मे मनुष्य बहुत कमजोर हो जाता है। दूसरे अल-कोहल उन शरीर-रक्षक फौजी जीवाणुओ पर भी धावा कर देता है, जो हमारे शरीर पर आक्रमण करनेवाले रोग-जन्तुओं से लड़ने के लिए हमेशा तैयार रहते हैं। नतीजा यह होता है कि शरीर रोग-जन्तुओं का प्रतीकार करने मे असमर्थ हो जाता है, और बात-बात मे वह रोगो का शिकार होने लगता है।

'अलकोहल' से बेहोशी जल्दी इसलिए नहीं आती कि उसका सम्बन्ध द्रव पदार्थों से होने के कारण क्लोरोफार्म या ईथर के समान वह चेतना-केन्द्रो तक तेजी से नहीं जा सकता। परन्तु

एक बात है। जब आदमी शराब से बेहोश हो जाता है तो वह जल्दी होश मे भी नही आता। बल्कि पाया तो यह गया है यदि बेहोशी दस-बारह घंटे तक नही हटी तो उस आदमी की मृत्यु निश्चित ही समझनी चाहिए।

पहले किसी समय लोगो का खयाल था कि *शराब से हृदय की गति और शक्ति बढ़ जाती है।* यदि ऐसा होता तो क्या ही अच्छा होता। पर इधर विज्ञान के प्रकाश मे जो आविष्कार और संशोधन हुए है वे इस बात को बिलकुल निराधार साबित कर रहे है। उन तमाम संशोधनो और आविष्कारो का ब्यौरा देने की हम यहाँ कोई आवश्यकता नही देखते। यहाँ तो केवल इतना ही कह देना काफी होगा कि मनुष्य के खून मे $\frac{1}{8}$ प्रतिशत अलकोहल पहुँचने पर भी यह देखने मे आया है कि एक मिनिट के अन्दर उसने हृदय की कार्य-शक्ति को घटा दिया। खून मे प्रतिशत $\frac{1}{2}$ अलकोहल के पहुँचने पर वही हृदय की कार्य-शक्ति को इतना घटा देती है कि उसमे इतनी भी शक्ति नही रहती कि वह अपनी रक्त-वाहिनियो को काफी पोषक खून दे सके। इसके कारण हृदय मे सूजन आ जाती है, जिससे वह और भी कम खून शुद्ध कर सकता है। फलतः शुद्ध खून के अभाव मे शरीर के भिन्न-भिन्न अंग कमजोर होने लगत हैं।

कभी-कभी कहा जाता है कि नियमित रूप से शराब पीनेवाले तो मजबूत और हृष्ट-पुष्ट दिखाई देते है! हा, सत्य ही वे बलवान् और हृष्ट-पुष्ट जरूर दिखाई देते है। पर केवल देखने-भर को ही, उनमे वास्तविक शक्ति नही होती। एक निर्व्यसनी आदमी के साथ एक शराबी की तुलना करने पर यह भ्रम

दूर हो सकता है। यदि दोनों को कोई कसरत या शक्ति का काम दिया जाय तो शराबी बहुत जल्द थक जायगा।

मांसलता बढ़ने का कारण यह है शरीर मे जितने भी पोषक द्रव्य आते हैं, उनका उपयोग करने की शक्ति उसके जीवाणुओं मे नहीं होती इसलिए उन द्रव्यों की चरबी बन जाती है और शरीर मे स्थान-स्थान पर जीवाणुओं के बीच में वह इकट्ठी होती रहती है। इससे हमें दिखाई तो देता है कि आदमी की शक्ति बढ़ती जा रही है परन्तु यथार्थतः वह बढ़ने के बजाय घटती ही रहती है। इधर तबतक जिगर की भी यही दशा होती है। शरीर मे सारा खेल उन जीवाणुओं की आरोग्यता और जीवन-रस की शुद्धि पर अवलम्बित होता है। इनके बिगड़ते ही सारे शरीर मे तहलका-सा मच जाता है। फिर जिगर इन दुष्परिणामों से कैसे बच सकता है। मृत्यु का रास्ता साफ हो जाता है और प्राणी अपनी शक्ति के अनुसार मृत्युपुरी का प्रवास धीमी या तेज़ गति से शुरू कर देता है।

शराब और ज्ञानेन्द्रियां

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्टतया ध्यान मे आ गया होगा कि शराब केवल मानव-जीवन के लिए ही नही बल्कि जीव-मात्र के लिए कितनी घातक वस्तु है। कई बार तो आदमी नशे मे इतनी शराब पी लेता है कि उसीसे उसकी मृत्यु हो जाती है। जब ऐसे मनुष्य की मृत्यु के बाद उसके शरीर की जाँच की जाती है, तब अक्सर पाया जाता है कि उसके मस्तिष्क मे शेष शरीर की अपेक्षा परिमाण मे कहीं अधिक अलकोहल है। बल्कि विशेषज्ञों का तो यह कथन है कि कई बार तो यहाँ तक देखा गया है कि

शरीर और मस्तिष्क मे अलकोहल की मात्रा बराबर आधी-आधी रहती है। इसका कारण क्या है? यही कि उत्क्रान्ति की सर्वोच्च सीमा को पहुँचे हुए कोमल स्नायु-केन्द्रो के प्रति अलकोहल का आकर्षण सब से ज्यादा होता है और मानव-शरीर मे मस्तिष्क एक ऐसा ही सर्वश्रेष्ठ अंग है। यही उसकी बुद्धि आदि उच्च मानवोचित गुणो का निवास-स्थल है। स्नायु-प्रणाली (Nervous System) का विकास अथवा उत्क्रान्ति प्राणियो के विकास-क्रम को जाहिर करती है। जिस प्राणी के स्नायु जितने हो अधिक उत्क्रान्त अथवा विकसित होंगे, उत्क्रान्ति-श्रेणी में उसका स्थान उतना ही ऊँचा होगा और उसी परिमाण मे उसमे बुद्धि, विवेक, नीति इत्यादि आत्मा-सम्बन्धी गुणो का विकास भी पाया जायगा।

अलकोहल का उत्क्रान्त स्नायु-प्रणाली के प्रति विशेष आकर्षण होने के कारण उन प्राणियो पर उसका विनाशक प्रभाव क्रमश· बढ़ता जाता है, जो क्रमशः अधिकाधिक उच्च-श्रेणी के होते हैं। इसीलिए उसका *विषैला प्रभाव प्राणियों में मनुष्य पर, मनुष्य-शरीर में भी उसके उत्तमांग अर्थात् मस्तिष्क पर, और मानव-जाति मे उस मनुष्य के मस्तिष्क पर सब से अधिक घातक होता है, जो अत्यन्त प्रतिभा-सम्पन्न होता है !*

मनुष्य का मस्तिष्क दो विभागो मे विभक्त है एक निम्नस्थ और दूसरा उच्च। मामूली शरीर-संचालन-सम्बन्धी क्रियाओ की व्यवस्था नीचे के विभाग मे होती है। और विचार, चिन्तन आदि उच्च मानसिक क्रियाओ का निवास अथवा कर्मक्षेत्र उच्च विभाग है। मामूली बोलचाल की भाषा मे कहना चाहे तो ये उच्च और निम्नस्थ मस्तिष्क-केन्द्र क्रमश हमारी ज्ञानेन्द्रियो और कर्मेन्द्रियो के हेड ऑफिस है। बाहर की खबरों की यहाँ

सुनवाई होती है और जैसा आवश्यक होता है, यहाँ से उनके उत्तर मे शरीर को निश्चित काम करने के लिए हुक्म छूटते रहते है। शरीर के प्रत्येक अंग के लिए यहाँ भिन्न-भिन्न ऑफिस भी हैं। यह भी पाया गया है कि मस्तिष्क मे जिस अवयव (विभाग) का दफ्तर अव्यवस्थित होता है उसके कर्मचारी भी अपना काम ठीक तौर से नहीं कर सकते।

अलकोहल ऐसा शक्तिशाली और भयानक विष है कि वह सब से पहले हमारी शारीरिक शासन-व्यवस्था के सर्वोच्च केन्द्र को ही जाकर धर दबाता है। ज्ञान, नीति, विवेक आदि विभागो के केन्द्रो को वह मूर्च्छित कर देता है। अपनी मूर्च्छितावस्था में मस्तिष्क के उच्च केन्द्रो को न अपनी अवस्था का खयाल होता है न शरीर की 'हानि' का। और ये उच्चकेन्द्र तो विचार, भावना, निर्णय-शक्ति, आत्मसंयम, इच्छाशक्ति, भक्ति, सदसद्विवेक, न्यायान्याय की भावना, कर्तव्य, प्रेम, करुणा, स्वार्थत्याग, इत्यादि मनुष्य के उच्चतम गुणो के उद्भव और विकास के स्थान है। अतः *इनके मूर्च्छित होते हो सारे शरीर की अवस्था दयनीय हो जाती है।* तरंगों पर बहने वाली नैया के समान फिर मनुष्य का ठिकाना नहीं कि वह किस चट्टान से जाकर टकरायगा। इस तरह *शराबख़ोरी के कारण न केवल मनुष्य का जीवन संकटापन्न हो जाता है, बल्कि उसके सम्बन्धी एवं आश्रित जन भी भारी मुसीबत में फँस जाते हैं।* और सबसे भारी दुर्दैव तो यह है कि प्रतिभा-सम्पन्न पुरुषो पर इस विष का परिणाम महा-

भयंकर होता है। वह बलिष्टों को कमज़ोर, बुद्धिमानों को मूर्ख, देशभक्तों को नीच, और स्वार्थत्यागी पुरुषों से उनकी बुद्धि और विवेक छीनकर उन्हे महापतित बना देता है। प्रेम और भक्ति मिट्टी में मिल जाते हैं। क्या कोई हिसाब लगा-कर बता सकता है कि इस भयंकर राक्षस ने इस तरह उत्तमोत्तम पुरुषों की बुद्धि को भ्रष्ट करके इस भूतल पर मानव-जाति की कितनी हानि की होगी ?

ऊपर कहा जा चुका है कि जीवाणुओ के कमजोर होने के कारण वे अन्न से अपने लिए पोषक द्रव्य आकर्षण करने योग्य भी नहीं रह जाते। तब उसकी चरबी बन कर वह जीवाणुओ के बीच मे एकत्र होती रहती है। इस चरबी के कारण मनुष्य की भावना और बुद्धि मे एक प्रकार की रुकावट-सी उत्पन्न हो जाती है। एक तो शराब से मस्तिष्क के केन्द्र मूर्च्छित वा सुन्न हो जाते हैं; दूसरे, स्नायु भी इस चरबी के कारण और पोषक द्रव्यो के अभाव तथा शराब के विष के कारण कुछ बेकाम से हो जाते हैं। चरबी जीवाणुओ के बीच मे उसी तरह बैठकर उनकी शक्ति को रोक देती है, जैसे धातु के टुकड़ो के बीच लकड़ी या मिट्टी का-सा अविद्युत-वाही पदार्थ (Non-conductor) बिजली को वहीं रोक देता है। बाहरी इन्द्रियगत विषयो की खबरें इस चरबी के कारण, जो जीवित संदेश-वाहक अणुओ के बीच पड़ी रहती है, मस्तिष्क के ज्ञान-केन्द्रो तक शीघ्र नहीं पहुँच पातीं; और न वहां से छूटे हुए हुक्मो पर तत्परता के साथ अमल ही हो पाता है। एक शराबी आदमी के ज्ञान और काम में जो

वेहूदापन होता है, उसका कारण यही है। न यह अपने और न अपने मालिक के कामों को ठीक समय पर ठीक तरह कर सकता है। बल्कि अपनी शारीरिक ढिलाई के कारण वह अनेक बार दुर्घटनाओं का भी शिकार हो जाता है।

स्मरण-शक्ति

उत्तम स्मरण-शक्ति के लिए मस्तिष्क के तमाम स्नायु-केन्द्रो का पारस्परिक सहयोग आवश्यक है। पर शराब से खून के विगड़ते ही मस्तिष्क की अवधान और एकाग्रता की शक्ति विगड़ जाती है। फलतः ज्ञान ग्रहण करने की शक्ति कमजोर हो जाती है। अतः ज्ञान-संग्रह और संग्रहीत ज्ञान को स्मरण रखना तथा पुनः निर्माण करना (Reproduction) आदि क्रियाएँ लूली हो जाती है। इसीलिए किसी शरावी आदमी द्वारा किये गये काम या उसकी कही किसी बात का कोई महत्व नहीं होता। अत्य-धिक और बार-बार शराब पीने के कारण मस्तिष्क के ज्ञान-केन्द्र सड़ जाते है। और मस्तिष्क के जीवाणु-संघो (Brain cells) के मरते ही उनमे संग्रहीत ज्ञान भी नष्ट हो जाता है। इस तरह शरावी को कभी किसी वात का पूरा ज्ञान नहीं होता। वह स्वप्न की घटनाओं को सत्य और सच्ची घटनाओ को स्वप्नवत् समझकर ऐसी ऊटपटाग वात वकने लगता है कि तमाम सुननेवालो को उनपर आश्चर्य और बुरी दशा पर तरस आता है।

जव एक शरावी की स्मरण-शक्ति विगड़ती है, तव वह ताजी वातों को सवसे पहले भूलता है और पुरानी वातो को

क्रमशः बाद में। उसकी विस्मृति मे भी एक निश्चित क्रम होता है। पहले वह घटनाओं को, बाद मे विचारो को, फिर मनोवेगो को और अन्त मे अपने कामो को भूल जाता है। अपनी अन्तिम अवस्था में वह भाषा को भी भूल जाता है। बुद्धि, विवेक और नीति का नियन्त्रण उठते ही वह मनोवेगों के साम्राज्य मे विहार करने लगता है। शनैः-शनैः मनोवेगों मे भी अधम विकार उसपर अधिकाधिक सिक्का जमाते जाते है। इस प्रकार वह क्रमशः प्रौढ़ावस्था, युवावस्था, किशोरावस्था, तथा बाल्यावस्था के विकारों से गुज़रता हुआ पाशविक विकारों का गुलाम बनता जाता है। और अन्त में उसकी केवल दो ही पाशविक इच्छाएँ-क्षुधाएँ बच रहती है। खाना खाना और दूसरी शराब।

शराब और कल्पना

स्मरण-शक्ति तमाम उच्च मानसिक क्रियाओ का आधार है। उसके बिगड़ते ही कल्पना, मनन, विवेचन, ध्यान, निर्णय, आदि सूक्ष्म मानसिक शक्तियाँ भी अपने आप नष्ट होने लगती हैं। पर यह बात शराबियो के खयाल मे नहीं आती। मस्तिष्क के मूर्च्छित होते ही कल्पना-शक्ति पर से उसका नियंत्रण उठ जाता है, और वह अनेक प्रकार की बेहूदी तथा अश्लील कल्पनाएँ करने लग जाता है। शीघ्र ही शराब उतरती है। विष से होनेवाले दुष्परिणाम के कारण उसे बेचैनी होती है। इस बेचैनी को दबाने के लिए वह फिर शराब पीता है। पर इस बार उतनी

ही शराब से उसे विस्मृति का वह आनन्द नहीं मिलता। उसे अपनी मात्रा बढ़ानी पड़ती है।

शराब और विचार-शक्ति

शराब के सेवन से शरीर मे जो खलबली और कष्ट-प्रद खलबली मच जाती है, उससे विचार-शक्ति को भी बड़ा आघात पहुँचता है, स्नायुओ की शक्ति घटते ही एकाग्रता, चिंतन, और निर्णय-शक्ति पंगु हो जाती है। विचार-शक्ति का आधार है स्मरण-शक्ति, और स्मरण-शक्ति निर्भर रहती है नीरोग मस्तिष्क तथा शरीर पर। *अतः जब अलकोहल मस्तिष्क के ज्ञान-केन्द्रों को मूर्च्छित और शारीरिक अवयवों को निष्क्रिय बना देता है, तब मनुष्य की विचार-शक्ति अवश्य ही नष्टप्राय हो जाती है।* तब वह ऐसे काम करने के अयोग्य हो जाता है जिनमे हर समय, हर वक्त, सोच-सोचकर आगे बढ़ना पड़ता है। हाँ, वह कुछ दिन तक ऐसे काम जरूर कर सकता है, जिसमे सोचने की जरूरत नहीं पड़ती, बल्कि यंत्र की तरह वही बात रोज या हर समय करनी होती है। पर नवीन जिम्मेदारी सिर पर आते ही वह दीन हो जाता है, दिमाग काम नहीं देता। *सर्वशक्ति की वह कला, जो परिस्थिति पर शासन करने के लिए पैदा होती है, इस शराब के कारण मिट्टी के ढेले की तरह जड़वत् हो जाती है।*

एक बार मनुष्य की अयोग्यता इस प्रकार जाहिर होते ही उस पर न कोई विश्वास ही करता है और न उससे कोई कुछ काम ही लेता है। यदि कोई भूलकर या दया-पूर्वक कुछ काम उसे देता है तो वही खुद अपनी अयोग्यता के कारण, फिर विश्वास को

गंवा देता है। शराब अनियमितता, मूर्खता, अयोग्यता, आकस्मिक दुर्घटनाओं का एक महान कारण है।

शराबखोर को धर्म और नीति का सूक्ष्म ज्ञान कहाँ ? वह अपनी मूर्खता के कारण शनैः-शनैः भले आदमियो की संगति के अयोग्य हो जाता है। परन्तु फिर भी उस अभागे को अपने पतन का पता नहीं होता ! वह अपने आपको पहले जैसा ही नीतिमान और बुद्धिमान समझता रहता है। बल्कि नशे से बुद्धि भ्रष्ट हो जाने के कारण वह तो अपने आपको सर्वज्ञ तथा राजा के समान शक्ति-शाली समझने लग जाता है। वह चाहता है कि उसकी वात को सब लोग माने और उसकी आज्ञाओं का सभी पालन करें। वह हर एक वात में टाँग अड़ाता है और अपनी बातों की अवगणना करने वालों से झगड़ता है। उसे न तो समाज का भय होता है न परमात्मा का। ऐसे अभागे के आश्रय में रहनेवाले स्त्री-पुत्रादिकों की करुण-कहानी क्या कही जाय ! वह तो अपने और अपनों के जीवन को भी संसार मे असह्य वना देता है। उसका विवेक और इच्छा-शक्ति नष्ट हो जाती है। वह अपने मनोवेगों का गुलाम वन जाता है और उसके अंतिम दिन एक पागल कुत्ते के समान वीतते हैं।

वह अनिवार प्यास !

आरम्भ मे संयम के नष्ट होते ही वह एक प्रकार की स्वाधीनता का अनुभव करने लगता है। मानव-जीवन के प्रारम्भिक विकार और क्रियाएँ निरंकुश हो जाती हैं। शराव पीते ही मनुष्य उस प्रसन्नता का अनुभव करता है जो वच्चो मे होती है। वह

उछलता है, हँसता है और निःसंकोच हो नाचता है। और इन सब चेष्टाओं को वह अच्छा समझता है। युवकोचित उत्साह और अहंकार को वह अनुभव करता है। वह बढ़-बढ़कर बातें करता है और दूसरों पर रौब गाँठने का यत्न करता है। शनैः-शनैः यह अहंकार विस्मृति में विलीन हो जाता है। सारी चिन्ताओं, दुःखों, जिम्मेदारियों आदि को वह भूल जाता है। और आराम-तलब हो जाता है। *युवक उस स्वच्छन्द, निरंकुश, पतित, आनन्द के लोभ से शराब पीते हैं और बूढ़े चिन्ता भुला देनेवाली विस्मृति की आशा से। पर अपने शरीर पर शनैः-शनैः अधिकार करनेवाली कमजोरी और मुर्दनी का ख़याल दोनों को नहीं होता। प्रकृति की चेतावनी की ओर वे ध्यान नहीं देते; विनाश की ओर बढ़ते चले जाते हैं।*

शराबी अक्सर व्यभिचारी भी होता है। जब वह यह पाप करके निकलता है तो वीर्य-नाश के कारण वह इस विष की तीव्रता को और भी अधिक अनुभव करने लगता है। कमजोरी, उदासी और जलन से वह जलने लगता है। फिर वह आग को आग से बुझाने की चेष्टा करता है। अब की बार आनन्द प्राप्त करने के लिए—जैसा कि हर एक विष का स्वभाव है—उसे अधिक मात्रा में शराब पीनी पड़ती है। इस बार जब नशा उतरता है तो कमजोरी और भी भयंकर जान पड़ती है। फिर शराब-फिर कमजोरी–फिर शराब–फिर कमजोरी—फिर शराब–फिर दुःख–यातनाएँ,–कष्ट ! फिर शराब–विस्मृति,–मूर्च्छा,–अनन्त वेदनाएँ–अंधकार !! फिर शराब और– – –!!!

[२]

सीधे सर्वनाश की ओर !

अभी तक यह बताया गया है कि शराब से प्रत्यक्ष शरीर को क्या हानि पहुँचती है। अब शराब से होनेवाले भिन्न-भिन्न, प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष दुष्परिणामो का हम संक्षेप मे अवलोकन करेगे तथा यह देखेगे कि उसका परिवार, समाज तथा राष्ट्र पर क्या प्रभाव पड़ता है।

यो तो अभी तक उसकी बुराई का जो वर्णन दिया गया है उसके देख लेने पर मानव-शरीर, परिवार अथवा समाज पर होनेवाले दुष्परिणामो को अलग-अलग दिखाने की कोई विशेष आवश्यकता नही रह जाती परन्तु संशोधको की खोज-भाल का कुछ नतीजा भी यहाँ पर संक्षेप मे दे दिया जाय तो पाठकों के चित्त पर वह और अच्छी तरह अंकित हो सकेगी। अतः अब हम इस विषय मे किये गये कुछ संशोधनो का वर्णन संक्षेप मे नीचे देते है।

सबसे पहले हम यह देखे कि *यह बुरी आदत मनुष्य को कब और क्यो लगती है?*

डा० अॅबट ने अमेरिका के वेलेव्यू अस्पताल मे २७५ शराबियो की जॉच की, उसका परिणाम नीचे लिखे अनुसार है.—

जिस उम्र में आदत लगी	प्रतिशत संख्या
१२ वर्ष के पहले	६.५
१६ ,, ,,	३३
२१ ,, ,,	६८

आदत लगने के कारण:—	प्रतिशत
बेकारी	५
पारिवारिक या धन्धे-सम्बन्धी आपत्ति	१३
पेशे में (जैसे शराब की दूकान, होटल जहाँ शराब बिकती है)	७
सहभोजों में	५२.५

यह बात ध्यान देने योग्य है कि *स्वाद के कारण* बहुत *थोड़े लोग शराब पीते हैं। शराब तो केवल नशे के लिए ही पी जाती है।* और इसका मुख्य कारण सहभोज है। अमेरिका की भाँति *भारत में भी शराबखोरी बढ़ने का मुख्य कारण जाति-भोज या सह-भोज ही है।* और यही प्रचार करने से सुधारक अधिक सफल हो सकेंगे। भारत मे ऐसी कितनी ही जातियाँ है, जिनमें मंगल कार्यों के समय अथवा मृत्यु-भोजो मे शरीक होनेवाले जाति-बिरादरी के लोगो को शराब पिलाना अनिवार्य है। ऐसे ही अवसरो पर कितने ही निर्दोष बालक, युवक या स्त्रियाँ भी इस आदत की शिकार बन जाती है।

नव-शिक्षितो में इंग्लैंड मे शिक्षा पाये हुए तथा अंग्रेजी तर्ज के सह-भोजों मे शामिल होनेवाले भारतीयो को अक्सर यह आदत लग जाती है। कितने ही बुद्धिजीवी प्राणी जैसे

प्रोफेसर, वकील, वैरिस्टर, जज, सम्पादक वगैरा मानसिक परिश्रम के बोझ को हलका करने या भुलाने की अभिलाषा से इस राक्षस के पंजे मे आ फँसते है।

सम्पत्ति अनेक अनर्थों का मूल है। शराबखोरी बढ़ाने मे भी वह अपना हाथ बँटाती ही रहती है।

शराब से स्नायुओं की और फलतः शरीर की कार्यशक्ति बहुत घट जाती है। अतः लोग निर्व्यसनी लोगो, कार्यकर्ताओ या मजूरों को ज्यादा पसन्द करते है।

एक ही मनुष्य पर शराब पीने के तथा न पीने के दिनो में प्रयोग किये गये। फल यह पाया गया:—

शराब पीने से (१) उसे १५ प्रतिशत अधिक शक्ति खर्च करनी पड़ी, (२) १६.४ प्रतिशत कम काम हुआ (३) २१.७ प्रतिशत अधिक समय उतने ही काम मे लगा (४) और कम काम करने पर भी उसे यह खयाल बना रहा कि वह बड़ी तेजी से और खूब काम कर रहा है।

दूसरे प्रकार के प्रयोगो मे देखा गया कि एक ही शख्श

शराब पीने के दिनों मे—	न पीने के दिनों मे औसतन
३० मे से औसतन ३ निशाने बंदूक से लगा सका	३० मे से २४ निशाने लगा सका

और फायर करने का हुक्म मिलने पर थकने के पहले तक –

शराब पीने के बाद	न पीने पर
२७८ बार फायर कर सका	३६० बार फायर कर सका

नियम से थोड़ी शराब प्रतिदिन पीने पर भी मनुष्य की कार्य-शक्ति बराबर घटती रहती है।

कार्यशक्ति के घटने से मनुष्य की धनोपार्जन शक्ति पर भी अवश्य ही इसका असर पड़ता है। और गृह-सौख्य नष्ट होता है। वह कौशलवाले कार्यों को छोड़कर ऐसे मजदूरी के काम करने लग जाता है जिनमे दिमाग़ से काम नही लेना पड़ता। बोल्टने में ऊपर से हट्टे-कट्टे वेकार आदमियो की जॉच की गई जो अपने परिवार का पोपण नहीं कर सकते थे। उनमे से २४३ अर्थात् प्रतिशत ६६ शरावी पाये गये। शराव आदमी की उपार्जन शक्ति को घटा देती है।

इसका नतीजा यह होता है कि घर मे बीबी-बच्चे भूखे मरने लगते है। स्त्री को बच्चों की माता तथा धनोपार्जन का काम भी करना पड़ता है। यह भारतीय स्त्रियों की विशेषता है। परन्तु पश्चिम में तो स्त्रियां ऐसे पुरुष के पास रहना कभी पसन्द नही करतीं जो अपने आप को किसी प्रकार अपनी स्त्री और बच्चों का पालन-पोपण करने में अयोग्य साबित कर देते हैं। अमेरिका में सन् १८८७ से लेकर १९०६ तक केवल शराब के कारण १,८४,५६८ गृहस्थियाँ टूटी अथवा प्रतिवर्ष ९२२८ गृहस्थियॉ टूटती थीं।

सचमुच शराब गृह-सौख्य की दुश्मन है। शिकागो मे गृह-सौख्य के नाश के कारणों की जॉच करने पर १९१३ मे पाया गया कि:—

शराब के कारण प्रतिशत ४६ गृहो का गृह-सौख्य नष्ट हुआ
अनीति (इसकी जड़ मे भी शराब होती है) } १४ " " "

रोग	१२	,,	,,	,,
माता-पिता की बुरी आदते	१७	,,	,,	,,
खराब स्वभाव	११	,,	,,	,,
अन्य कारण	१०	,,	,,	,,

गृह-सौख्य के नाश के कारणो मे मदिरा मुख्य है और व्य-भिचार का नम्बर दूसरा है। पर व्यभिचार के लिए शराब बहुत हद तक ज़िम्मेदार है । हम आगे चलकर देखेगे कि अनीति शराब से कैसे पैदा होती है। गृह-सौख्य के नाश की परम्परा यो है।

शराब
|
कार्यशक्ति का घटना
|
रोज़ी से अलग कर दिया जाना
|
बच्चो और स्त्री का पालन-पोषण न कर सकना
|
गृह-सौख्य का नाश
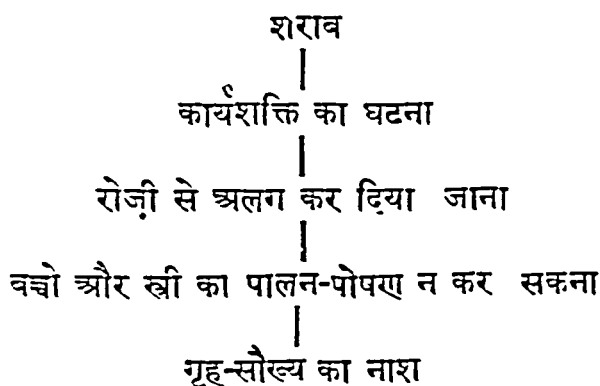
परन्तु इतना होने पर भी धन्य है हमारे पूर्वजों की उच्च संस्कृति को और उज्ज्वल रमणी-रत्नो के उदाहरणो को कि भार-तीय स्त्रियॉ सहसा कुमार्ग पर पैर नही रखती। मैंने देखा है कि कई बार पति के शराबी होनेपर भी उसकी पत्नी तन-तोड़ मिहनत करके अपने बच्चो का, अपना तथा पति का भी पोषण करती हैं। किन्तु शराब बीच में कभी नहीं रुकती। मानव-जाति के सर्वनाश के लिए ही उसकी उत्पत्ति हुई है और इस पर वह तुली हुई है। मनुष्य को इससे अपनी तथा अपनी

सन्तति की रक्षा के लिए हमेशा आँखों मे तेल डालकर जागृत रखना चाहिए।

शराव के चक्कर मे आकर आदमी अपना आर्थिक नाश करके ही नहीं रुकता। शराव और व्यभिचार में गाढ़ी मित्रता है। जहाँ-जहाँ शराव है, वहाँ-वहाँ व्यभिचार भी जरूर होता है। शराव पीते ही नीति-अनीति की भावना तथा आत्मसंयम धूल मे मिल जाता है और स्त्री-पुरुष ऐसी-ऐसी चेष्टाएँ करने लग जाते है जो अच्छी हालत में उनसे स्वप्न मे भी नहीं होतीं। ब्रिटिश रिफार्मेटरीज के निरीक्षक श्रीयुत आर० डब्ल्यू० ब्रन्थवेट अपनी रिपोर्ट मे लिखते है कि ८६५ पतित स्त्रियो में से प्रतिशत ४० स्त्रियो की अनीति का एक-मात्र कारण शराव और शराव ही थी! क्योंकि यो तो मामूली हालत मे वे वड़ी सभ्य और नीतिशील पाई गई हैं और उन्हे सदा इस वात का भय वना रहता है कि 'कहीं शराव पीकर फिर हमसे कोई पाप न हो जाय।' शराब के अभाव में अधिक स्त्रियों का नीतिभ्रष्ट होना असम्भव है।

न्यूयार्क के भूतपूर्व पुलिस कमिश्नर श्रीयुत वेंगहॅम कहते हैं— "इस सामाजिक बुराई को (व्यभिचार या वेश्यावृत्ति को) उसकी वर्तमान 'उन्नत' दशा मे बनाये रखने के लिए स्त्रियो की अनीति-वृत्ति और पुरुषो की पशुता को संवर्द्धित और उत्तेजित करते रहना पड़ता है।"

कितने ही स्त्री-पुरुष पहले-पहल, अनीति के मार्ग पर शराब के कारण ही पैर रखते हैं। कई लड़कियाँ शराव के नशे मे वेश्यालयों में लाई जाती है और वहा से छुटकारा पाने की

इच्छा होने पर भी अपने पतन के कारण लज्जित होकर वे बाहर नहीं निकल सकतीं। पर शराब एक दूसरी तरह भी स्त्रियों को व्यभिचार में प्रवृत्त करती है। उसकी परम्परा यों है।

इनसे उत्पन्न होनेवाली निर्लज्जता और 'अब क्या डर है' वाली मनोवृत्ति स्त्रियों को व्यभिचार की ओर ले जाती है जहाँ उन्हें शराब, जीविका और आनन्द (?) भी मिलता है।

यह कोष्ठक अथवा पतन की परम्परा पश्चिमी देशों की दशा को दिखाती है। हमारा खयाल है कि हमारे देश में स्त्रियों के पतन में शराब का इतना हाथ प्रत्यक्ष रूप से नहीं है। यहाँ उसके

लिए अन्य कारण अधिक महत्वपूर्ण हैं जिनका विचार हम अन्यत्र करेंगे। पर निःसन्देह पुरुषों के व्यभिचार के लिए तो शराब यहाँ भी बहुत जिम्मेदार है। और यही स्त्री-पुरुषो के पतन के कारण होते हैं। उनके पतन की परम्परा यों दिखाई जा सकती है:—

शराब
|
आत्मसंयम का नाश
|
पुरुषों का वेश्यागमन
|

धन का नाश, गृह-कलह की जड़ (प्रातःकाल)	गृहिणी का घोर अपराध घर मे असन्तोष (मध्यान्ह)	परिवार में गुप्तरोगो का प्रवेश और सर्वनाश (सूर्यास्त)

इसके बाद हम देखते हैं पति के अपराध के बदले में स्त्री की वेश्यावृत्ति या छिपा व्यभिचार यह घोर नारकीय जीवन की काली-कलूटी निराशा और दुःखमय रात है।
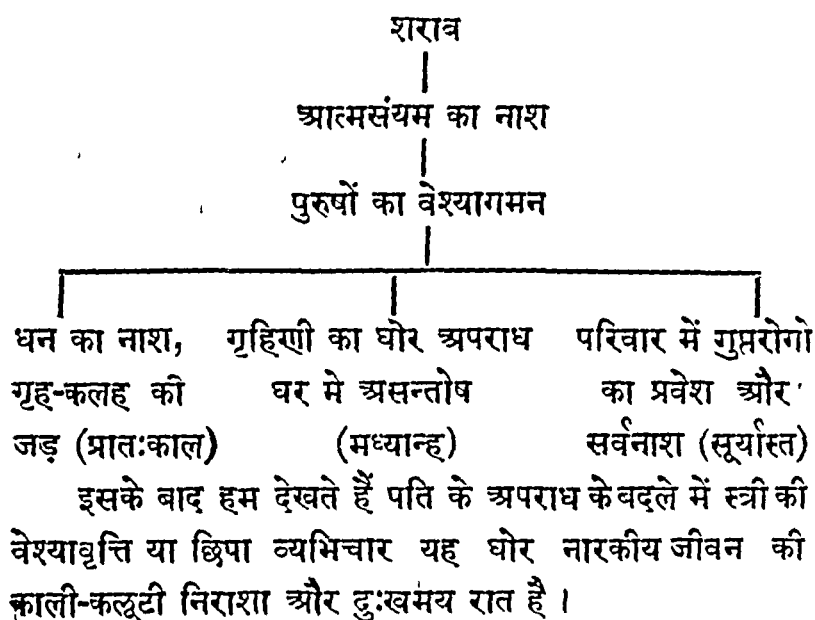
अमेरिका (संयुक्तराज्य) संसार मे अपने आपको सबसे नया और कम पतित राष्ट्र मानता है। किन्तु वहाँ सुजाक (Syphilis) से कोई ८०,००,००० मनुष्य पीड़ित हैं। अमेरिका की जन-संख्या करीब १० करोड़ है। हमारे देश मे तो ऐसे कोई अंक और हिसाब इकट्ठे नही किये गये हैं। परन्तु इससे अनुमान किया जा सकता है कि यहाँ की अवस्था कितनी भयंकर होगी।

अमेरिका, इंग्लैंड और यूरोप के इस विषय के तीन सब से बड़े ज्ञाता और प्रामाण्य डॉक्टरो की राय है कि शराब नीचे लिखे परिमाण मे गुप्त रोगो का कारण है।

डॉ० डगलस (इंग्लैंड)	प्रतिशत	८०	मरीज़ो के गुप्त रोग का कारण शराबखोरी का बुरा व्यसन है।
डॉ० कोरेल (यूरोप)	,,	७६	
टैवेन इमर्सन (अमेरिका)	,,	७५	

शराब और रोग

पीछे कहा जा चुका है कि *शराब के कारण मनुष्य के शरीर से रोगों का प्रतीकार करने की शक्ति कम हो जाती है अतः स्वभावतः शराबखोर आदमी बात की बात में हर किसी रोग का शिकार हो जाता है।* जॉन हॉपकिन्स युनिवर्सिटी के प्रोफेसर डॉ० विलियम एच वेल्क ने वेलेव्यू अस्पताल मे ९० शराबी पुरुषो और उपस्त्रियो की जॉच की जिसका परिणाम नीचे लिखे अनुसार है:—

	हृद्रोग,	जिगर का रोग	जिगर में चरबी उत्पन्न होने से	उदर रोग
९० पुरुषो मे से प्रतिशत	९०	४८	८०	५०
३५ स्त्रियो मे से ,,	९०	३४	७४	५०

इस जॉच मे इनकी रक्तवाहिनियॉ, फेफड़े, प्लीहा, गुर्दे, पॅनक्रीज तथा स्नायु-प्रणाली भी रुग्ण पाई गई।

शराबखोर की बीमारी अधिक लम्बी होती है। लिपज़िग (जर्मनी) की सिक बेनिफिट संस्था की रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि जब २५-३४ वर्ष का मामूली आदमी ५.५२ दिन

तक बीमार रहता है, तब उसी उम्र का शराबी आदमी १९.२९ दिन तक बीमार रहता है। और ३४-४५ वर्ष की उम्र का मामूली आदमी जब १० दिन तक बीमार रहता है तो शराबी २७ दिन तक बीमार रहता है।

'शराबी बीमार भी ज्यादा होते है। उसी संस्था की १९१० में छपी रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि २५-३४ वर्ष की की उम्रवाले १००० बीमा किये गये लोगो मे से, ३६८ मामूली मनुष्य बीमार होते थे। तहाँ शराबियों में ९७३ व्यक्ति बीमार होते थे।

शराबियो की शराब न पीनेवालो के साथ तुलना करनेपर पाया गया कि वे ज्यादा संख्या में बीमार पड़ते है अर्थात् रोग का प्रतीकार करने की शक्ति घट जाने के कारण रोगजन्तु फौरन उनके शरीर मे प्रवेश कर जाते है। नीचे लिखे अंको से ज्ञात होगा कि वे कितने कमजोर हो जाते है।

लिपजिग की सिक बेनेफिट सोसायटी की रिपोर्ट से ये अंक लिये गये है।

जहाँ शराब न पीनेवाले १०० मामूली आदमी किसी रोग से पीड़ित होते है तहाँ उसी उम्र के शराब पीनेवाले आदमियों की संख्या नीचे लिखे अनुसार है।

रोग का नाम	उम्र २५-३४	उम्र ३५-४४
सभी रोग	२६४	२८३
संसर्ग-जन्य रोग	१४९	१४०
स्नायु प्रणाली के रोग	३७५	४२६
श्वास रोग	२१९	२६७

(Not Tuberculous disease)		
क्षय रोग (Tuberculosis)	६०	८०
खून के रोग	२३३	२३०
बदहजमी से होनेवाले रोग	३००	३२१
जख्म वगैरा	३२४	३२३

शराबियों के लिए क्षय और न्यूमोनिया अधिक भयावह हैं। डॉ० ऑसलर का कथन है कि जाँच करने पर पाया गया कि न्यूमोनिया से पीड़ित होने पर—

नियमित शराबी	२५ प्रतिशत मरते हैं
अंधाधुन्ध शराब पीनेवाले	५२ ,, ,,
निर्व्यसनी पुरुष	१८ ,, ,,

फिलाडेलफिया की हेन्री फिप्स इन्स्टिट्यूट में कई वर्षों के एकत्र किये गये अंकों से पता चलता है कि शराब क्षय का रास्ता साफ कर देती है। १९०७ और १९०८ की रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि २७७ शराबी और ९३४ न पीनेवाले क्षय रोगियों का ब्यौरा नीचे लिखे अनुसार है।

	शराब पीनेवाले	शराब न पीनेवाले
अच्छे हो गये प्रतिशत	२९·५	४९·२
मर गये ,,	२१·८	९·९
असाध्य ,,	४८·५	४०·७

पागलपन

प्रत्येक मनुष्य के मस्तिष्क पर शराब का एक-सा परिणाम नहीं होता। तथापि *संसार के सभी देशों के विशेषज्ञ इस बात में*

एकमत है कि शराब प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मनुष्य के मस्तिष्क में ऐसे परिवर्तन कर देती है, जिनका अन्त पागलपन में होता है। नीचे भिन्न-भिन्न देशों के विशेषज्ञों की राय दी है।

अमेरिका—पागलखानों में लिये गये २० से लेकर ३० प्रतिशत पागलों के पागलपन का कारण शराब पाई गई है। स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों में यह प्रमाण ज्यादा है। शायद इसीलिए कि प्रायः पुरुष ही ज्यादा शराब पीते हैं।

न्यूयार्क के सरकारी शफाखाने में फीसदी ६० पागलो की (पुरुषो में) बीमारी का कारण शराब पाई गई और स्त्रियों में फीसदी २० पागलो का कारण शराब थी।

नॉरिसटाऊन—(अमेरिका) के सरकारी अस्पताल की रिपोर्ट से पता चलता है कि ५२० नये पागलो मे से प्रतिशत ४४ पागलो के पागलपन का एक कारण मद्यपान भी था।

इस तरह सभी देशों के अंक लेकर यदि हिसाब लगाया जाय तो बड़ी उदारता के साथ अनुमान करने पर भी हम इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि *प्रतिशत २५ पागलों के पागलपन का कारण प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से शराब है।*

मामूली आदमी किन्ही झगड़ो-उपद्रवों में सहसा नहीं पड़ता। और यदि कहीं ऐसा मौका आ ही जाता है तो मारपीट करने के पहले परिणाम को सोचता है। परन्तु *शराबी की बुद्धि तो पहले ही मारी जा चुकी है। अतः वह तो पहले मारपीट कर बैठता है। तब कहीं शराब का नशा उतरने पर उसे अपनी बेवकूफी पर पश्चात्ताप होता है।*

शराब से आदमी चिड़चिड़ा हो जाता है, उसकी निर्णय-शक्ति कमज़ोर हो जाती है और आत्म-संयम भी घट जाता है, जिससे वह अपने गुस्से को रोक नही सकता। नीचे लिखे अंकों से पाठकों को ज्ञात होगा कि *शराब का इन मारपीटो मे कहाँ तक हाथ है।*

हीडेलबर्ग (जर्मनी) की कमिटी ऑव फिफ्टी ने वहाँ रजिस्टर की गई १९१५ वारदातो की जॉच की और नीचे लिखे नतीजे पर पहुँची।

स्थान	प्रतिशत
शराब की दूकानो पर	६६.५
सड़को पर	८.८
कारखानो मे	७.८
घर पर	७.७
अज्ञात स्थानो मे	९.२

शराब की दूकानो को छोड़कर वाहर जो मार-पीट या ऐसी ही वारदाते हुई उनमे अधिकांश का कारण शराब ही थी।

संसार के अपराधियो की जाँच करने पर पाया गया है कि ५० से लेकर ९० तक वल्कि इससे भी अधिक अपराधियो के कुमार्गगामी होने का कारण प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष रूप से शराब ही थी। या उनकी वाल्यावस्था शराबियो के वायु-मण्डल मे गुजरी थी। कई वर्ष हुए हमने 'इण्डियन नेशनल हेरल्ड' मे पढ़ा था कि मद्रास इलाके की संयम-परिषद् मे भाषण देते हुए वहाँ के एक भूतपूर्व चीफ जस्टिस ने कहा था कि *१७ साल के अनुभव से मैं इस नतीजे पर पहुचा हूँ कि अदालतों मे दर्ज होनेवाले*

अपराधों में से प्रतिशत ६५ की जड़ में शराब ही थी।

शराब पीने से स्नायुओं पर से मनुष्य का प्रभुत्व उठ जाता है और निर्णय-शक्ति पंगु हो जाती है। कारखानों के मालिक और बीमा-कम्पनियाँ इस बात को बड़े ग़ौर के साथ देखती हैं कि शराब का दुर्घटनाओं से कितना गहरा सम्बन्ध है।

आकस्मिक दुर्घटनाएँ

जूरिच बिल्डिंग ट्रेडस् सिक क्लब की।सन् १९०० से लेकर सन् १९०६ तक की रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि सप्ताह-भर की दुर्घटनाओं में प्रतिशत २२.१ दुर्घटनाएँ सोमवार के दिन और शेष दिनों में प्रतिदिन औसतन प्रतिशत १५·७ दुर्घटनाएँ होती थीं। इसका कारण यह था कि शनिवार और रविवार को लोग अधिक शराब पीते हैं जिनका असर सोमवार तक बना रहता है।

लिपज़िग (जर्मनी) के सिक बेनिफिट क्लब को रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि मामूली *आदमियों की बनिस्बत दो-तीन गुने अधिक शराबी दुर्घटनाओं के शिकार होते हैं।*

वोलकिंनजेन (जर्मनी) केरॉकलिंगशे आयरन एण्ड स्टील वर्क्स मे पाया गया कि एक सहस्र मजदूरों में ८ शराब न पीनेवाले मजदूर दुर्घटनाओं के शिकार होते थे। और कारखाने के सर्वसाधारण मजूरों में से प्रति सहस्र १२। इसके मानी यह हुए कि शराब न पीनेवाले मजदूरों में ३३$\frac{1}{3}$ प्रतिशत दुर्घटनाएँ कम होती हैं।

शराब से दुर्घटनाएँ बढ़ जाती है, क्योंकि शराब–(१) ज्ञानेन्द्रियों को मंद कर देती है जिससे आदमी खतरे को देख नहीं पाता। (२) फासले-सम्बन्धी ज्ञान को वह उलट-पुलट कर देती

है। (३) खतरे को किस तरह टालना चाहिए इस बात का आदमी जल्दी और ठीक-ठीक निश्चय नहीं कर पाता। (४) और अपने हाथ-पैरो पर उसका पूरा-पूरा अधिकार नहीं होता।

इसलिए दुर्घटनाओं का बीमा लेनेवाली कम्पनी कहती है:-

"शराब की आदत तथा ताजे व्यभिचार के कारण कमजोर बने हुए आदमी को, जो अपने शरीर पर काबू नहीं रख सकता, कभी ऐसी मशीनरी पर न काम करने दिया जाय जो खतरनाक हो। वह केवल अपनी जान से ही हाथ नहीं धो बैठेगा बल्कि औरो की जान का भी ग्राहक होगा।"

आत्महत्या

संयुक्तराष्ट्र अमेरिका में सन् १९०१ से १९१० तक ६२,६६० आदमियों ने आत्महत्या करके प्राण दे दिये। बीमो के मेडिकल डायरेक्टरो की राय को यदि हम मान लें तो इनमे से १४४११ आत्महत्याओं के लिए प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष रूप से शराब ही जिम्मेदार थी।

मृत्यु

लिपज़िग के सिक बेनिफिट क्लब की बीमारी और मृत्यु की १९१० की रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि जब मामूली आदमी किसी रोग से १०० मरते है तब—

शराबी:—

सभी रोगो से	२९२	मरते हैं	जिन मरीजो के ये अंक दिये गये है उनकी उम्र ३४ वर्ष से लेकर ४५ वर्ष तक थी।
संसर्ग-जन्म रोगो से	१००	,,	
स्नायु-प्रणाली के रोगों से	२६७	,,	
श्वास रोग से (Not tuberculosis)	६६७	,,	
क्षय रोग से (Tuberculosis)	३०	,,	
खून-सम्बन्धी रोग से	१३७	,,	
हाजमे-सम्बन्धी रोग से	२६७	,,	
जखम वगैरा	३००	,,	

लिपज़िग की उसी संस्था की रिपोर्ट हमे बताती है कि १०,००० बीमा किये गये आदमियों मे अकाल मृत्यु की संख्या क्रमशः यो थीः—

वर्ष	मामूली	शराबी	स्पष्टीकरण
२५-३४	५३	११२	दो गुने से भी ज्यादा
३५-४४	९७	२८४	क़रीब-करीब तिगुनी
४५-५४	१६७	३७२	१२२ प्रतिशत ज्यादा
५५-६४	२९४	३६४	२२ ,, ,,
६५-७४	५८०	७४६	३० ,, ,,

इस तरह शराबी ज्यादा सख्या मे बीमार पड़ते हैं, अधिक दिनों तक बीमार पड़े रहते है और अधिक संख्या मे मरते भी है।

अमेरिका के रजिस्ट्रेशन क्षेत्र मे, जिसमें अमेरिका की क़रीब आधी जन-संख्या रहती है, मृत्यु-संख्या के अंक बड़ी सावधानी के साथ रक्खे गये हैं। हिसाब सन् १९०० से लेकर सन् १९०८ तक का २५–६४ वर्ष की आयु के स्त्री-पुरुषों की मृत्यु का है। इन नौ वर्षों मे

३३, १८५ मृत्युएँ ऐसे रोगो से हुई, जिनमे प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष कारण शराब थी।

३२,१६३ मृत्युएं विषम ज्वर से हुईं।

२, २१७ मृत्युएं चेचक से हुईं।

प्रति सप्ताह अमेरिका मे शराब १५०० आदमियों को यमलोक को ले जाती है! अर्थात् *हर आठवें मिनिट में एक जवान स्त्री या पुरुष शराब के कारण अपनी जीवन-यात्रा समाप्त करता है।*

बच्चों पर दुष्परिणाम

मनुष्य अपनी सन्तति को प्राणों से भी अधिक प्यार करता है। वह एक बार खुद मर मिटना पसंद कर लेता है परन्तु उसकी हमेशा यही चेष्टा रहती है कि बच्चो का कहीं बाल भी बाँका न हो। पर शराब इस बात में भी आदमी को घोर पतित बना देती है। अपने बच्चो के सुख-दुःख की परवा न करके कोई काम करनेवाले आदमी को क्या कहा जाय? उसे नर-पशु, नर-राक्षस या नर-पिशाच भी कह दे तो इन भिन्न-भिन्न नामधारी जीवों का अपमान होगा। पशु, राक्षस और पिशाच भी अपनी संतति की कभी ऐसी लापरवाही करते हुए नहीं पाये गये। इस बात में आदमी शैतान से भी नीच और पतित हो जाता है। कैसे सो देखिए।

माता या पिता होना एक महान् सौभाग्य और जिम्मेदारी की बात है। इस अमृत-कला का भूतल पर अवतार विषय-विलास की गटरो मे लोटने और सड़ने के लिए नहीं हुआ है। हमे यहाँ पर भेजने से परमपिता का हेतु महान, उच्च और उदात्त है। और वह क्या है? वह यही हो सकता है कि हम उसकी दया का दर्शन करे, उसके बच्चो—हमारे अन्य भाइयो की सेवा करे; उनके दु:खो को हलका करे। सब मिलकर अपने परमपिता की गोद मे जाकर अनन्त अनिर्वचनीय आनन्द प्राप्त करे। मनुष्य अपने जीवनभर इस ध्येय की अराधना और उपासना करे। जहाँ तक उससे इस आदर्श की सेवा हो सके वह करे और शेष की पूर्ति के लिए संसार मे अपना एक प्रतिनिधि परमात्मा से माँगे। उसके मिलने पर उसे वह अपने अनुभव और ज्ञान की थाती देकर उसी ध्येय की अराधना, उसी आदर्श की प्राप्ति की दीक्षा दे और स्वयं चिरन्तन शान्ति को प्राप्त करे।

यह है हमारा वह उच्च और पवित्र आदर्श जिसके लिए हमे अपने आपको तथा हमारे प्रतिनिधि को तैयार करने के लिए प्रतिक्षण प्रयत्न करना चाहिए। अतः हमारी जिम्मेदारी महान् है, सारा संसार इस बात को बड़ी उत्सुकता के साथ देखता है कि हम अपने पीछे हमारे ध्येय की पूर्ति के लिए कैसा प्रतिनिधि छोड़ जाते हैं। यदि वह सत्पात्र होता है तो संसार की आत्मा हमे कृतज्ञता-पूर्वक आशीर्वाद देती है। किन्तु यदि वह कुपात्र साबित हुआ, उसके हाथ संसार की सेवा के बजाय कु-सेवा हुई, संसार के सुख और शान्ति बढ़ाने के बजाय वह दु:ख और अशान्ति बढ़ाने का कारण साबित हुआ तो पीड़ित संसार की आहे हमे साक्षात

स्वर्ग मे भी भुलसा डालेगी और हमे वहाँ से खींचकर धड़ाम से पृथ्वी पर गिरा देगी। संसार की आत्मा कहेगी, "अपने बेटे को सम्हाल, वह हमारी उन्नति मे रुकावटें पेश कर रहा है। हमने इससे सहायता की आशा की थी। पर यह तो उलटा हमें नीचे गिरा रहा है। अब तू इसकी बेहूदी हरकतो को रोक। ऐसे बेटे होने के बजाय तुम लोगों का न होना ही अच्छा था, इत्यादि।" यह है एक माता या पिता की जिम्मेदारी।

परमात्मा की अनन्त शक्तियाँ हमारे आस-पास मँडराती रहती है। हमारी ओर से जरा भी मौका मिलते ही वे दृश्य स्वरूप धारण करती रहती है। अतः हमे इस बात की बड़ी सावधानी रखनी चाहिए कि उनको संसार मे कहीं अकारण अवतार लेने में हम कारणीभूत न हो। प्रत्येक शक्ति उस अनन्त प्रकाश की एक उज्ज्वल रश्मि है। वह हमारे अन्दर से होकर संसार मे आविर्भूत होती है। यह प्रकाश वही रंग, वही प्रकृति धारण करेगा जो रंग, जो शुद्धि अथवा अशुद्धि हमारे अन्दर होगी। अत॰ खयाल कीजिए कि हमारा उत्तरदायित्व कितना महान् है! इसलिए अपने आपको पवित्र और सतत् जागृत रखने की जरूरत है !

अत॰ इसके पहले कि ऐसी शक्ति का, ऐसे प्रकाश का जनकत्व हमें प्राप्त हो, हमे अपने आप को उसके शुभजनन और संवर्द्धन के योग्य बना लेना जरूरी है। एक बालक के पॉच जन्मसिद्ध अधिकार होते है।

(१) उसके माता-पिता शुद्ध-पवित्र, नीरोग और सच्चरित्र हों। उसका जन्म बिना किसी तकलीफ के हो।

(२) जन्म के समय माता-पिता की हालत ऐसी हो, जिससे वह उनके सम्पूर्ण वात्सल्य प्रेम को प्राप्त कर सके।

(३) उसे अपनी कोमलावस्था में ऊँची संस्कार-शालिनी शिक्षा मिल सके।

(४) ज्ञानावस्था में बुरे पदार्थों, बुरे वायु-मण्डल और कुसंगति से उसकी रक्षा हो और—

(५) सज्ञान होने पर राष्ट्र तथा मानव-जाति की सेवा द्वारा अपना विकास करने के लिए उसे सम्पूर्ण अनुकूलता हो।

वे माता-पिता, वे राष्ट्र और वे बालक धन्य हैं, जिन्हे ये पाँचो अनुकूलताएँ प्राप्त हैं। भावी सन्तति की इन शर्तों को जो स्त्री-पुरुष पूरी कर सकें, उन्हीं का माता या पिता होना धन्य और सार्थक है।

भारत में ऐसे माता-पिता कितने हैं! हममें से कितनो ने अपनी सन्तति के प्रति इन पुण्य कर्तव्यो का पालन करने की प्रतिज्ञा, चेष्टा या ख़याल भी कर के इन अमर शक्तियों का इस भूतल पर स्वागत किया है!—और स्वागत करके उन्हे संसार की सेवा के योग्य बनाया है? हे बाल-भारत और तरुण भारत! हम तेरे घोर अपराधी है। परमात्मन् हम आप के दिये विमल-विवेक और अखंड-शक्ति-भंडार को विषय-विलास मे बरबाद करने के घोर अपराधी है। इन पुण्य-पावन शक्तियो को धोखा देकर इस रौरव नरक मे घसीटने के लिए हम तुम्हारे, उनके और देश के महान् अपराधी हैं!

शराब के विष के शिकार होकर हमने कितना पाप किया है यह अभी कोई नहीं कह सकता। करुणामय की लीला, अगाध

है। जब दुःख-वेदना असह्य हो जाती है, तब वह समवेदना-शक्ति का हरण कर लेती है। मनुष्य मूर्च्छित हो जाता है। और वह दयाघन अदृश्य रूप से उस मनुष्य की विनष्ट शक्ति को दुःख का प्रतीकार करने के लिए जागृत करता रहता है। काफी शक्ति आते ही मरीज़ होश मे आ जाता है और पुनः दुःख को दूर करने की चेष्टा की जाती है। भारत की संविद् शक्ति पर परमात्मा ने अभी आवरण डाल रक्खा है। उसके दूर होने पर किसी दिन हमे पता चलेगा कि इस महान् देश की ग़रीब जनता मे शराब ने कैसा सर्वनाश किया है। इस समय तो हमे अन्य देशो की दशा देख कर ही अपने देश को दुर्दशा का केवल अनुमान करके रह जाना पड़ता है।

जहाँ-कहीं भी शराब के दुष्परिणामो की विशद् रूप से जॉच की गई है वहाँ यही पाया गया है कि *शराबी माता-पिता के बच्चे अधिक सख्या में मरते हैं।* बारहवीं इंटरनेशनल कांग्रेस में शराबख़ोरी के दुष्परिणामो को बताते हुए हेलसिंगफॉर्स युनिवर्सिटी के प्रोफेसर टी० लैटिनेन ने बताया कि जहाँ शराबी माता-पिता के प्रतिशत ८.२ बच्चे कमजोर होते और प्रतिशत २४.८ बच्चे मरते थे, वहाँ शराब न पीनेवाले माता-पिता के प्रतिशत १.३ कमजोर होते और १८.५ प्रतिशत बच्चे मरते थे।

	माता-पिता शराबी	शराब न पीनेवालों के
कमजोर बच्चे प्रतिशत	८.२	१.३
मर गये	२४.८	१८.५
अधूरे हुए	६.२१	०.९४

इसके बाद प्रोफेसर लैटिनेन बताते हैं कि एक दूसरे स्थान पर १९, ५१९ बच्चो की जॉच करने पर नीचे लिखे अनुसार फल पाया गया:—

माता-पिता के	प्रतिशत बच्चे मरे	अधूरे गिरे	और जीवित बचे
शराब न पीने वाले	१.०७	१३	८७
थोड़ी शराब पीनेवाले	५.२६	२३	७७
खूब शराब पीनेवाले	७.११	३२	६८

मतलब यह है कि *ज्यों-ज्यों शराब की आदत बढ़ती गई, बच्चों की मृत्यु-संख्या भी बढ़ती गई।*

डॉ० सॅलिवन शराब पीनेवाली माताओ के बच्चों की करुणा-कथा लिखते हुए बताते हैं कि:—

२१ शराब पीनेवाली माताओ के	प्रतिशत बच्चे मर गये
१२५ बच्चो मे से	५५.२
तहां	
२८ शराब न पीनेवाली माताओ के	
१३८ बच्चो मे से केवल	२३.९

जैसे-जैसे माता अधिकाधिक शराब पीती जाती है, वैसे-वैसे बच्चो की मृत्यु बढ़ती जाती है, यह बात डॉ० सलिवन की नीचे लिखी तहकीकात से जाहिर होगी।

बच्चे	प्रतिशत	मृत्यु-संख्या	बच्चे	मृत्यु-संख्या
पहले	,,	३३.७	चौथे पॉचवे	६५.७
दूसरे	,,	५०	छठे से दसवे तक	७२
तीसरे	,,	५२.६		

मिरगी के रोगी

बचे हुए बच्चों में से ४.१ प्रतिशत मिरगी के रोगी (Epileptic) थे और शेष कमज़ोर दिमागवाले।

शराबी माता-पिता के बच्चों का विकास भी बहुत धीरे-धीरे होता है।

मनोदौर्बल्य

बिरमिंगघम के खास स्कूलों में पढ़नेवाले २५० दोष-युक्त बालकों की जॉच करने पर उनमें से क़रीब आधे (४१.६ प्रतिशत) के पिता शराबी पाये गये। तुलना के लिए दूसरे स्थान के १०० मामूली बच्चे लिये, उनमें से केवल १७ बच्चे शराबी माता-पिता के पाये गये।

बच्चों में क्षयरोग

शराबी माता-पिता के बच्चे क्षय के शिकार बहुत जल्दी और अधिक तादाद में होते हैं। प्रोफेसर व्हॉन बुंगे की तहक़ीक़ात का फल नीचे दिया जाता है।

माता पिता के			प्रतिशत बच्चे क्षयी पाये गये
कभी-कभी शराब पीने वाले			८.७
प्रतिदिन किन्तु हिसाब से	,,	,,	१०.७
प्रतिदिन बेहिसाब	,,	,,	१६.४
मशहूर शराबी	,,	,,	२१.७

आनुवंशिक सर्वांगीण पतन

बर्न (स्विट्ज़रलैंड) के प्रोफेसर डेम ने इस विषय में बड़ी लगन के साथ संशोधन किया है। उन्होंने दस-दस परिवारों के

दो संघ लिये। एक शराब पीनेवाला और दूसरा न पीने वाला। और लगातार बारह वर्ष तक उनका अध्ययन करते रहे। इन दोनो संघो के परिवार केवल शराब को छोड़कर पेशा, रहन-सहन, खान-पान आदि और सब बातो मे एक-से थे। उनकी जाँच करने पर डाक्टर डेम ने देखा कि शराबी परिवारो में केवल १० बच्चे (प्रतिशत १७.५) भले-चंगे और शराब न पीने-वाले परिवारों में ५० बच्चे (प्रतिशत ८२) भले-चंगे थे।

इसके बाद इन्होंने पुश्त दर-पुश्त शराब पीनेवाले परिवारों को लिया। इस जाँच का हिसाब यो बताया जा सकता है:—

पूर्वज	परिवार	बच्चे अच्छे	बच्चे जल्दी मर गये	दोषयुक्त	कुल बच्चे
सिर्फ पिता शराबी	३	७	७	६	२०
पिता और दादा भी शराबी	६	२	१५	१४	३१
माता और पिता दोनो शराबी	१	१	३	२	६

यही प्रयोग अन्यत्र डॉ० हॉज और स्टॉकर्ड ने क्रमश: कुत्तो और सूअरो पर किया। जिसका फल क्रमश: यो है—

शराब पीने वाला कुत्ता और कुतिया (शराब इतनी नहीं दी जाती थी जिससे नशे के चिन्ह दिखाई दे,	प्रतिशत १७.४ बच्चे जिन्दे रहे। (१५ बच्चे मरे और ८ बदसूरत पैदा हुए, जिनमे से केवल चार जीवित बचे।

शराब न पीनेवाले कुत्ते और कुतिया के वच्चे	एक भी मरा वच्चा पैदा नहीं हुआ। चार वच्चे वदसूरत थे और ४५ मे से ४१ जीवित और स्वस्थ रहे।

डॉ० स्टॉकर्ड ने बड़ी सावधानी के साथ यही प्रयोग सूअरो पर किया। प्रयोग के लिए दोनो नर और मादा सूअर अच्छे हट्टे-कट्टे चुने। परिणाम यह हुआ.—

सिर्फ नर शराबी मादा मामूली	२४ बार संयोग करने पर	१२ वच्चे पैदा हुए	जन्म के वाद ७ जल्दी मर गये	५ बुरी हालत मे वचे रहे।
नर मामूली मादा शराबी	४ संयोग से	५ वच्चे		२ वचे।
नर-मादा दोनों शराबी	१४ संयोग से	१ वच्चा	पैदा होते ही मर गया।	
नर मादा दोनो शराव से मुक्त	९ संयोग से	१७ वच्चे	सभी स्वस्थ और नीरोग हैं।	

डॉ० लैटिनेन का कथन है माता-पिता की वेवकूफी के कारण पॉच वर्ष की उम्र होने के पहले आधी मानव-जाति इस संसार मे चल वसती है।

इसी प्रकार और भी कितने ही अंक और उदाहरण दिये जा सकते हैं। पर अब तो यह वात पूर्णतया सिद्ध हो गई है कि *ज्यों-ज्यों स्त्री अथवा पुरुष में शराव की आदत वढती जाती है त्यों-त्यों उसका असर उसकी प्रजनन-शक्ति पर भी पड़ता जाता है। पहले-पहल क्रमशः वच्चों की वृद्धि पर, फिर शरीर*

पर इसका असर पड़ते-पड़ते बच्चे अधूरे गिरने लग जाते हैं और अन्त मे उन दोनो के रजवीर्य की प्रजनन-शक्ति नष्ट हो जाती है। स्त्री-पुरुषों का पारस्परिक और स्वाभाविक शुद्ध प्रेम अशुद्ध हो जाता है। यही नहीं, बल्कि ससार में जितने प्रकार की अनीति और विश्वासघात है, वे सब बढ़ते जाते है। स्त्री-जाति के सतीत्व और शरीर की रक्षा करने के बजाय पुरुष स्त्री को ओर, और स्त्री पुरुष की तरफ अपवित्र विकार-दृष्टि से देखने लग जाते है। और व्यभिचार की दिन-दूनी रात-चौगुनी वृद्धि होती है। इन पापियों को प्रकृति भी सज़ा देती है। गुप्त रोग पारस्परिक संसर्ग से जाति मे बढते हैं और जाति नष्ट होती है।

यह तो स्पष्ट ही है कि प्रत्येक राष्ट्र आचार-पावित्र्य के नियमों की एक निश्चित हद से गिरा नहीं और वह पराधीन हुआ नहीं। अनीति और स्वाधीनता बहुत दिन तक साथ-साथ नही रह सकते। शराब और स्वाधीनता की तो कभी बनी ही नही है

आखिर आचार-विषयक पवित्रता और उसके कड़े नियम स्मृतिकारो की केवल सनक की उपज नहीं है। देश और जाति की स्वाधीनता और अस्तित्व उन्हींपर मुख्यतया निर्भर रहते है। राष्ट्र की विशेषता देखकर ही जागृति और दूरदर्शी द्रष्टा इन नियमो को गढ़ते हैं। हाँ, कालमान से उनके अन्दर थोड़े-बहुत फेर-फार हो सकते है। परन्तु हम उनके अन्तर्गत सिद्धान्तो की तो कभी उपेक्षा नहीं कर सकते। मनुष्य का अधम स्वभाव बार-बार नीति-नियमो के खिलाफ बलवा कर उठ खड़ा होता है। वह

सोचता है कि ये नियम उनके बनाये हुए हैं जो वेदाभ्यास से जड़ बने हुए थे और जिनकी इच्छा विषय-भोगो से पराड्मुख हो गई थी। वे हमारी परिस्थिति, हम गृहस्थो की दशा, इस जमाने की आवश्यकताओ, लाचारियो आदि को क्या जाने? उन्हे हमारे साथ सहानुभूति होना असम्भव है। उनकी कल्पना कभी इतनी दूर-दर्शी नही हो सकती। हम मानते हैं कि इस कथन मे बहुत अंशो मे सत्य हो सकता है। उनके बताये आचार-नियमो से सम्बन्ध रखनेवाली तफसील की बातो मे कुछ फर्क हो सकता है। परन्तु जिस सिद्धान्त को लेकर, राष्ट्र की जिस आवश्यकता और स्वभाव को देखकर उन्होने ये नियम बनाये थे उनकी उपेक्षा तो हम कभी नही कर सकते। अपने बुजुर्गों के अनुभव की उपेक्षा करना महान् मूर्खता होगी। उनके बनाये वे नियम मानव-जाति के अस्तित्व की कुञ्जी हैं। उन्ही के पालन से मानव-जाति अपना अस्तित्व क़ायम रखने की आशा कर सकती है। उन्ही की सहायता से वह अपने आपको धारण कर सकती है और इसीलिए हमारे आचार्यों ने उन नियमो को धर्म की संज्ञा दी है। उनको भूलना, या उनकी उपेक्षा करना मूर्खता अथवा आत्म-घात करना है। मनुष्य-जाति अपने पूर्वजो के अनुभव को जाँच कर उससे फायदा उठावे, पर यदि वह उसकी उपेक्षा ही करेगी, प्रत्येक बात मे श्रीगणेश से ही शुरुआत करेगी, तो प्रगति असम्भव हो जायगी।

शराब और राष्ट्रीय पतन

अब शराब से जो राष्ट्रीय पतन होता है, उसके पृथक् बताने की कोई आवश्यकता नही रह जाती। राष्ट्र व्यक्तियो से बनता है

और हम यह विस्तृत रूप से देख चुके कि शराब व्यक्तियो को कैसे हानि पहुँचाती है ! अतः अब यहाँ तो हम पूर्वोक्त कथन का राष्ट्रीय दृष्टि से सिंहावलोकन ही करना चाहते है ।

मनुष्य के अनुसार राष्ट्र के भी दो अंग होते हैं । शारीरिक और मानसिक । यदि मनुष्य की मानसिक शक्तियाँ पूर्ण रूप से विकसित हो, नीरोग हो तो शरीर कमजोर होने पर भी वे उस दुर्बल शरीर से ही आवश्यक काम ले सकते है । किन्तु यदि शरीर हृष्ट-पुष्ट हो और मनोदशा ठीक न हो तो कोई ठिकाना नहीं कि वह मनुष्य क्या करेगा और क्या न करेगा ।

फिर शराब तो मनुष्य के शरीर और मस्तिष्क को भी रोग-ग्रस्त करके राष्ट्र को महान् सङ्कट मे डाल देती है । जो राष्ट्र शराब के अधीन होता है, *वह अपनी स्वाधीनता से हाथ धो चुका है समझिए ।*

संसार के इतिहासकार ऊँचे स्वर से हाथ उठा-उठाकर कहते हैं कि राष्ट्रों के उत्थान और पतन का कारण संयम और असंयम, नियम-शीलता और विषय-विलास, वीर्य-रक्षा और व्यभिचार आदि ही हैं । और सचमुच जब हम प्रत्येक राष्ट्र या जाति के इतिहास को देखते समय उसके उत्थान तथा पतन-काल का मुकाबला तत्कालीन सामाजिक दशा से करते हैं तब हमे इस कथन की दुःखद सत्यता का अनुभव होता है ।

संयमी राष्ट्र बराबर प्रगति करता रहता है । वह अपने बुजुर्गों के अनुभव से लाभ उठाकर उसे नित्य बढ़ाता रहता है । प्रत्येक पुश्त अपनी प्रतिभा से उसे संवर्द्धित और व्यवहार से दृढ़ करता रहता है । परन्तु जिन राष्ट्रों के अन्दर शराब ने प्रवेश

कर लिया है, उनकी गति उलट जाती है। उनकी प्रगति रुक जाती है। बल्कि उसके सड़े दिमाग अपने बुजुर्गों की शिक्षा तथा अनुभव को भी खो बैठते है। वे मनुष्य से पशु-कोटि में गिर जाते हैं और किसी बुरे दिन अपनी स्वाधीनता को खो बैठते है।

शराब नीचे लिखे अनुसार राष्ट्र का सर्वनाश करती है।

अ. आर्थिक

(१) शराब उस पैसे का हरण कर लेती है जो परिवार के पोषण मे लगना चाहिए।

(२) शराब अपने भक्त की कार्य-शक्ति को घटा देती है, जिससे वह परिवार का पोषण करने और राष्ट्र की संपत्ति बढ़ाने के अयोग्य हो जाता है।

(३) फलतः राष्ट्र की उत्पादन-शक्ति भी घट जाती है। और वह कंगाल हो जाता है।

आ. शारीरिक

(१) शराब आदमी को कमजोर और रोग-ग्रस्त बना देती है।

(२) शराब पीने से आदमी का अपने बदन पर काबू नहीं रहता।

इसलिए सारा राष्ट्र कमजोर और दुर्बल हो जाता है। उसकी सेना किसी विपक्षी सेना का सामना करने योग्य नहीं रह जाती। और न वह व्यापारी प्रतिस्पर्धा मे टिक सकता है।

इ. मानसिक

(१) शराब मनुष्य की उच्च भावनाओं, तथा विचार-शक्ति के निवास-स्थान मस्तिष्क को मूर्च्छित करके उसके अधम विकारों को उभाड़ देती है।

(२) फलतः मनुष्य अपने अधम स्वार्थ या विषय-विलास का शिकार बनकर, अपने आपको तथा समाज को, पतित बना देता है। समाज भीरु, कायर, मूर्ख या निरंकुश तथा दुःसाहसी हो जाता है।

(३) और फिर किसी भी उच्च आदर्श का वह अनुसरण नहीं कर सकता और न उसके लिए लड़ सकता है। दया, प्रेम और आत्मोत्सर्ग की भावनाएँ जाती रहती हैं और निष्ठुरता, पारस्परिक द्वेष, ईर्ष्या और अधम स्वार्थ उनका स्थान ग्रहण कर लेते हैं।

यह परिस्थिति एक सत्तात्मक-शासन वाले तथा प्रजासत्तात्मक शासन-पद्धति वाले राष्ट्रों मे भी एक-सी हो जाती है। कह नहीं सकते कि इन दोनो मे से किसकी अवस्था अधिक भयंकर होगी। क्योकि जहाँ एक सत्तात्मक शासन-पद्धति वाले राष्ट्र मे देश एक व्यक्ति के वश मे होता है तहाँ प्रजासत्तात्मक-शासन वाले राष्ट्र मे ऐसे लाखो व्यक्तियो मे शासन की जिम्मेदारी बँटी रहती है।

राजा यदि शराबी होता है तो प्रजा मे भी शराबखोरी की सीमा नहीं रहती। राजा यदि व्यभिचारी हुआ तो यहां भी प्रतिदिन मोटरो मे स्त्रियां उड़ना शुरू हो जाती हैं।

शराब पीने पर जो-जो खेल होते हैं उनका तो कहना ही क्या ? प्रजा के धन की और अपने स्वास्थ्य तथा वीर्य की

होली करके प्रतिदिन दिवाली मनाई जाती है। जहाँ यह हाल है वहाँ का जीवन पशु-जीवन है। न स्वाधीनता है, न वहाँ सद्गुणो के विकास को ही कोई मौका मिलता है। जहाँ देखिए पतन का मसाला मौजूद है। वह राष्ट्र कभी उन्नति नही कर सकता। विदेशी उसे धर दबाते हैं। अधिकारी विदेशियो के हाथ की कठपुतली हो जाते है और प्रजा दीन पशु !

परन्तु प्रजासत्तात्मक राज्यो की दशा क्या होती है ? शराब से स्वभावतः मनुष्य के ऊँचे मानवोचित सद्गुण लुप्त हो जाते है और वह पशु के समान हो जाता है। वही विकार, वही अन्धापन, वही विषय-क्षुधा, वही द्वेष, वही क्रोध, सब कुछ वही। जो अपना ही शासन नही कर सकता, वह दूसरे का क्या करेगा ? छोटी-छोटी बातो पर वे उभड़ जाते है, और ऊटपटांग काम करने लग जाते हैं। विकार उनमे बहुत बढ़ जाता है। पतन की सामग्री अपने अन्दर बनाये रखकर मनुष्य बने रहने की आशा करना व्यर्थ है। यह कैसे हो सकता है कि शराब अविरत रूप से, मनुष्य के उदात्त भावो की हत्या करती रहे, उसकी ऊँची भावनाओ को जला-जलाकर खाक करती रहे, उसके हृदय को काम, क्रोध, और लोभ का अड्डा बनाती रहे और हम उससे शान्ति और सदाचार की ही आशा करे ? भारत में *अछूत कहे जाने वाल हारिजनों को भी हम तब तक नहीं उठा सकते जब तक उनके अन्दर शराब की रोक नहीं हो जाती।*

शराब से मनुष्य पशु बन जाता है। उसे न बच्चो का खयाल रहता है, न स्त्री का और न अपने स्वास्थ्य काही। नहीं, उसे तो अपनी आजीविका का भी खयाल नही रहता। भूखे बच्चे

और स्त्री घर पर सोचते हैं कि वह मजदूरी लेकर आएगा तो उससे सामान खरीदकर रोटी बनेगी। पर वह अपनी मजदूरी को वरवाद करके आता है और नशे में धुत्त होकर देता है अपने बीबी-बच्चों को लात, घूँसे और गालियों का पुरस्कार। यह दशा है उन वर्गों की जो हमारे समाज के आधार हैं। जबतक इस दशा मे से हम उन्हे वाहर नहीं निकाल देते तबतक हमारा विद्या-वैभव भी किस काम का ? क्या यह काफ़ी है कि हम खा-पीकर विषय-विलास मे लोटते रहे, या भगवद्भक्ति का नाम लेकर अपने-आप को समाज मे उच्चकोटि का नवीन अस्पृश्य वर्ग वनाये रक्खें ? हमारे सारे राजनैतिक आन्दोलन तबतक पंगु रहेगे जबतक हम इस बुराई की जड़ पर ही कुठाराघात नहीं करेंगे; वह बुराई जो भारत की दरिद्र जनता की दरिद्रता को वढ़ा रही है और उस के स्वास्थ्य गृह-सौख्य और राष्ट्रीय जीवन को नष्ट करती जा रही है।

[३]

भारत, शैतान के पंजे में

यह बताने के पहले कि भारत-सरकार की शराब के विषय मे क्या नीति है, यह आवश्यक है कि हम पहले पूर्वस्थिति का गरुड़ावलोकन कर ले। वेद-काल मे हमे शराब के विषय मे कोई साहित्य या उल्लेख नहीं मिलता। तथापि कितने ही पश्चिमी विद्वान् सोम को ही शराब समझकर यह विधान करते है कि वेद-काल मे भी शराब का व्यवहार होता था। परन्तु इस विषय पर विद्वानो का मत-भेद है। बात इतनी पुरानी हो गई है कि उसके विषय मे ठीक-ठीक कहना कठिन है। ×

हाँ, यह जरूर कहा जा सकता है कि इसके बाद के स्मृति तथा पौराणिक साहित्य में शराब का खूब उल्लेख मिलता है। शराब भी एक प्रकार की नहीं, कई प्रकार की होती थी। और उसके नाम भी ऐसे भिन्न-भिन्न होते थे, जिससे लोक-रुचि का स्वयं पता चल सकता है। अन्य सभी देशो के प्राचीन साहित्य के समान भारतवर्ष के प्राचीन साहित्य मे भी शराब के गुणो का वर्णन पाया जाता है। उसे प्रसन्ना, अमृता, वीरा, मेधावी, मोदिनी, सुप्रतिभा, मनोज्ञा, देव-सृष्टा आदि × कहा गया है। परन्तु ये तो वे नाम थे जिनसे वह जन-साधारण में परिचित

× परिशिष्ट देखिए।

थी। किन्तु आयुर्वेद तथा स्मृतिकार इसकी बुराइयो से अपरिचित नही थे। बल्कि उन्होने कड़े से कड़े शब्दो मे उसकी निन्दा की है। भगवान् मनु ने अपने सुरा-प्रकरण मे—

यक्षरक्षःपिशाच्चान्नं मद्यं मांसं सुरासवम्

कहा है और ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य को सुरापान से परावृत किया है। भगवान् पाराशर "अगम्यागमन" तथा "मद्य-गो-मांस भक्षणादि" के लिए चांद्रायण का प्रायश्चित्त बताते हैं। महाभारत मे शुक्राचार्य ने कहा है कि सुरा पीनेवाला 'ब्रह्म-हा' (ब्रह्म-हत्या का पातकी) होगा। बुद्ध-काल मे भगवान् बुद्ध ने अपने संघ के पाँच नियमो मे मद्यपान-निषेध को आवश्यक बताया है। अशोक के समय देश प्रायः सुरापान से मुक्त-सा हो रहा था। परन्तु आगे चलकर मध्यकाल मे फिर मदिरा का प्रभाव बढ़ गया। मुसलमान आक्रमणकारियो के साथ सुरापान की भी भारी बाढ़ आई। राजपूत भी भगवान् मनु की आज्ञा को ताक मे रखकर सुरापान करने लग गये। इस समय लिखे हुए काव्य-ग्रन्थो मे तत्कालीन समाज का खासा चित्र दिखाई देता है। इतिहास कहता है कि अलाउद्दीन को जब एकाएक शराब से वैराग्य हुआ तो उसने राजमहल की सारी शराब फेकवा दी। सड़को पर शराब का कीचड़ हो गया। जहाँगीर की शराबखोरी प्रसिद्ध ही है। औरङ्गजेब जरूर उससे दूर रहता था, किन्तु उसके उत्तराधिकारियों को अपने भाग्य-रवि के अस्त के दुःख को भुलाने के लिए शराब का ही आसरा लेना पड़ता था। इस समय सारे देश में अनेक छोटे-छोटे राज्य स्थापित हो रहे थे। क्रांति की लहरो से देश आन्दोलित हो रहा था। जनता का जीवन संकट मे था।

अंग्रेज़ी राज्य की स्थापना के समय देश एक तरह से क्रान्ति मे से गुजर रहा था अतः शराब पर राज्य की तरफ से उतना कठोर नियंत्रण नही था। हाँ, समाज की धाक जबरदस्त थी। परन्तु शराब पीनेवाले शासको के आने पर उनकी सभ्यता का शासितो पर असर पड़ना स्वाभाविक था। सन् १८३०-३२ में कामन्स-कमिटी ने हॉल्ट मैकेन्ज़ी नामक एक गवाह से पूछा था "अंग्रेजो की बस्तियो के पास-पड़ौस मे रहनेवाले भारतीयो पर अंग्रेजो की रुचि, रहन-सहन और आदतो का भी कोई असर पड़ा या नहीं ?"

हॉल्ट मैकेन्जी ने कहा—"अगर कलकत्ता पर से अन्दाज लगाया जाय तो निःसन्देह भारतीयो मे अंग्रेजी विलास-सामग्री की रुचि काफी बढ़ रही है। अपने मकानात वे वैसे ही सजाने लग गये हैं, कई घड़ियाँ रखते है और सुना है *शरावें भी पीने लग गये हैं।"*

इसी बुराई को देखकर पीड़ित हो महामना केशवचन्द्रसेन कहते हैं "शराब ने समाज को इतना पतित, व्यभिचारी और नास्तिक बना दिया है कि उसका सुधार करना बड़ा कठिन हो रहा है। एक तो अंग्रेजी शिक्षा के कारण भारतीयो की अपने धर्म पर से श्रद्धा हट गई और दूसरे शराब की दूकानो की वृद्धि हो गई।"

भारत के प्रत्येक महान् धर्म ने शराब की निन्दा ही की है। यहाँ पर शराब की बुराई इतनी नही फैलती यदि एक ओर से जनता को शराब की दुर्गन्धभरी शिक्षा देकर उसकी श्रद्धा को चूर-चूर न कर दिया जाता और दूसरी ओर सुगठित रूप से

उसके सामने प्रलोभन न खड़े किये जाते।

सरकार ने अपनी आवकारी नीति शुरू से ऐसी रक्खी है जिससे "*ग़ैर क़ानूनी रूप से शराब बनाने के लिए जनता को उत्तेजित न करते हुए कम से कम शराब से ज्यादा से ज्यादा आय ली जाय।*" अपने हाथो मे ज्यों-ज्यो देश के शासन-सूत्र आते गये, उसने आबकारी विभाग को भी सुसंगठित करना शुरू कर दिया।

अंग्रेजो के पूर्व-शासको के जमाने में भारत मे ठीके की प्रथा थी। निश्चित प्रदेश में शराब बनाने और वेचने के ठोके नीलाम होते और जो सब से अधिक दाम देता उसे उस प्रदेश मे शराब बनाकर बेचने का अधिकार दे दिया जाता। ब्रिटिश सरकार अपनी आवश्यकता और समयानुसार इस पद्धति मे परिवर्तन करती गई। शराब की आय को अपने उपर्युक्त उद्देश के अनुसार बढ़ाने तथा शराब की उत्पत्ति को और खपत को नियन्त्रित करने के लिए सरकार ने एक नवीन पद्धति शुरू की। उसने देखा कि उपर्युक्त पद्धति मे जिसे 'फार्मिङ्ग या आउट स्टिल' पद्धति कहते हैं, शराब पर वह काफी नियन्त्रण नहीं रख सकती। और उत्पन्न भी गिना-गिनाया मिलता है। इसलिए सरकार ने शराब बनाने तथा वेचने के काम को भी अपनी देख-भाल मे कराने की व्यवस्था की। इसे कहते हैं "डिस्टिलरी" पद्धति। इसके अनुसार सरकार एक निश्चित स्थान मे अपनी डिस्टिलरी–शराब का कारखाना बना देती है और फी गैलन निश्चित फीस लेकर किसी से अपनी देख-भाल मे शराब बनाने के लिए कहती है। इस पद्धति में शराब के बनाने और वेचने के दोनों अधिकार कभी

एक ही व्यक्ति को नहीं दिये जाते। दोनों पद्धतियों मे शराव की दूकानो की संख्या और स्थान सरकार स्वयं निश्चित कर देती है। आउट स्टिल पद्धति मे सरकार को भी नुकसान होता था और प्रजा को भी। क्योंकि प्रतिस्पर्धा के कारण ठीके की कीमत वहुत चढ़ जाती और उस हालत मे ठीकेदार शराव की विक्री वढ़ा करके अपना नफा वढ़ाने की कोशिश करते। फलतः इधर जनता अधिक पतित होती और सरकार को भी गिने-गिनाये रुपये मिलते। दूसरी पद्धति से सरकार का फ़ायदा वढ़ गया। किन्तु जनता की भारी हानि होती है। क्योंकि शरावखोरी को न वढ़ाने की अपनी नीति उद्‌घोषित करने पर भी शराव का वनाना और वेचना दोनो काम सरकार के हाथों मे आ जाने के कारण उसे हमेशा अधिक पैसा प्राप्त करने की इच्छा वनी ही रहती है।

हिन्दू और मुसलमान दोनो धर्मो मे शरावखोरी मना होने के कारण यदि इस बुराई को सरकार मिटाना चाहती तो फौरन मिटा सकती थी। किन्तु उसके सामने तो था धन का सवाल। और क्यो न हो? आवकारी की आय एक तो जल्दी इकट्ठी की जा सकती है। दूसरे उसे इकट्ठा करने मे खर्च भी वहुत कम लगता है। लोगो पर जवरदस्ती भी नही करनी पड़ती जैसी कि जमीन का लगान इकट्ठा करते समय करनी पड़ती है। इसलिए अधिकारी स्वभावत इस तरह सरकार की आय वढ़ाने के लिए झुक पड़ते थे।

"वल्कि, आवकारी विभाग के अधिकारियो को समय-समय पर सरकारी आय वढ़ाने के लिए सरकार की ओर से प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष रूप से सूचना भी मिल जाया करती थी।

जिन अधिकारियों के हल्के से कम आय होती उनकी वार्षिक रिपोर्ट मे निन्दा की जाती। उनका इस महकमे मे रखना न रखना अक्सर इन रिपोर्टों पर निर्भर रहता था। मि० केन ने सन् १८८९ मे हाऊस ऑव कामन्स मे सरकारी रिपोर्टों से ऐसे कई उदाहरण बताये थे जिनसे पता चलता था कि किस तरह अधिकारियो को सरकारी आय बढ़ाने के लिए उत्साहित किया जाता है।" ×

फल वही हुआ जो होना था। सरकार सब जगह सेंट्रल डिस्टिलरी पद्धति को शुरू नही कर पाई थी। कहीं यह पद्धति काम करती थी तो कहीं "आउट स्टिल पद्धति।" सेन्ट्रल डिस्टिलरी पद्धति सरकार ने शुरू तो कर दी, पर वह महँगी पड़ी। बगैर आय बढ़ाये चारा नहीं था। इधर ठेकेदार लोग भी प्रतिस्पर्धा के कारण पूरी तरह निचोड़ लिये जाते थे। उन्हे भी अपने नफे की चिन्ता तो रहती ही थी। वे क़ीमत कम कर-करके शराब की खपत बढ़ाकर अपना नफा सीधा करने की कोशिश करने लगे। प्रजा पर दोनों ओर से प्रयोग शुरू हुए। सरकार की ओर से दूकाने कम तो की गईं किन्तु बड़ी चतुराई के साथ। नई दूकानें, बाजार, देहात का रास्ता या सड़क तथा मिल-कारखानो के पड़ौस मे ही खोली जातीं। फलतः जनता मे शराबखोरी जोरो से फैलने लगी। यह देख उन्नीसवीं सदी के अन्तिम हिस्से मे अनेक "संयम-संस्थाएँ" खुलने लगीं। दे मे मद्यपान-निषेधक साहित्य की बाढ़ आ गई। इस विषय प नाटक, प्रहसन, उपन्यास आदि लिखे जाने लगे। शराबखो

× फायनेंशियल डेवेलपमेंट्स इन मॉडर्न इण्डिया।

को दूर करने को भारत-सरकार से कई बार प्रार्थना की गई। परन्तु व्यर्थ। अन्त मे मामला इंग्लैण्ड की साधारण-सभा तक पहुँचा। हाऊस ऑव कामन्स ने तारीख ३० अप्रैल १८८९ को एक प्रस्ताव द्वारा इस बुराई की ओर भारत-सरकार का ध्यान आकर्षित किया और तत्काल भारतीय जनता की अशान्ति को मिटाने के लिए आज्ञा दी।

तब जाकर भारत-सरकार को अपनी तमाम नीति मे नीचे लिखा संशोधन करना पड़ा।

(१) शराब तथा सब प्रकार के मद्यो पर जितना हो सके कर बढ़ा दिया जाय।

(२) इसके व्यापार पर उचित नियंत्रण रख दिया जाय।

(३) प्रत्येक स्थान की सुविधा के अनुसार मद्य और मादक पदार्थों के बेचनेवाली दूकानो की संख्या को नियमित कर दिया जाय।

(४) लोकमत को जानने की कोशिश की जाय। और उसके जान लेने पर उसकी ओर एक उचित सीमा तक ध्यान भी दिया जाय।

लोकमत का उल्लेख करते हुए भी पाठको की नजर से उसकी अवहेलना की ध्वनि न छूट सकेगी! लोक-कल्याण का तो बात ही दूर है। परन्तु लोकमत की ओर ध्यान देने मे भी उचित और अनुचित सीमा का खयाल किया जा रहा है।

इस नीति पर अमल करने के लिए नीचे लिखे उपाय काम मे लाना तय हुआ।

(१) आउट स्टिल या फार्मिंग पद्धति को बन्द करना।

(२) सेन्ट्रल डिस्टिलरी पद्धति को शुरू करना ।

(३) देशी शराब पर ज्यादा से ज्यादा कर लगाना। सिर्फ इस बात का ख़याल रहे कि विदेशी शराब पर लगाये गये कर से यह कर ऊँचा न बढ़ने पावे ।

(४) दूकानों को कम करना ।

यह सुधार भारत-सरकार ने अपने ४ फरवरी १८९० के डिस्पेच मे लिखकर साम्राज्य सरकार के पास भेजा था ।

अब हम देखे कि इस नीति का सरकार की आय तथा शराब की पैदावार पर क्या प्रभाव पड़ा ?

वर्ष	कुल उत्पन्न करोड़ो मे	असल आय करोड़ो मे
१८६१	१.६	१.५
१८६५	२.	१.७
१८६९	२.२	१.९
१८७३	२.२	२.१
१८७७	२.४	२.३
१८८१	३.४	३.३
१८८५	४.१	४.०
१८८९	४.८	४.७
१८९३	५.३	५.१
१८९७	५.४	५.२
१९०१	६.०	५.८
१९०५	८.४	८.१

इस आय की वृद्धि का कारण क्या है ? सरकार की ओर से कहा जाता है कि महकमा आबकारी अधिक अच्छी तरह से

सुसङ्गठित होने के कारण शराब की ग़ैर-कानूनी पैदायश रुक कर सरकार की देखभाल में खोली गई दूकानो मे वह बढ़ गई। और दूसरे जन-संख्या की वृद्धि के कारण भी तो कुछ आय बढ़नी चाहिए? परन्तु वास्तव मे हमें तो इस वृद्धि का कारण सरकार की धन-लोभ की वृत्ति ही दिखाई देती है! जबतक वह बनी रहेगी—जबतक सरकार भारतीय जनता के व्यसनो से अपने ख़ज़ाने भरने की नीयत रक्खेगी, शराब की खपत कम न होगी।

इसके बाद सरकार के अर्थ-विभाग की ओर से ता: ७ सितम्बर १९०५ को नीचे लिखी नीति घोपित की गई.—

"सरकार उन लोगो की आदतो मे हस्तक्षेप करना नहीं चाहती जो शराब का परिमित उपयोग करते है। सरकार इसे अपने कर्तव्य से बाहर समझती है! उसकी राय में यह *ज़रूरी है कि उनकी आवश्यकताओं को पूरी करने की व्यवस्था कर दी जाय।* पर सरकार यह ज़रूर चाहती है कि जो लोग शराब नहीं पीते उनके मार्ग मे जहाँ तक हो सके प्रलोभनो को कम किया जाय। अतिपान की वृत्ति को भी रोका जाय और इस नीति पर अमल करने के लिए सरकार आय के विचारो को बिलकुल गौण समझे। इस नीति पर अमल करने का सब से बढ़िया तरीक़ा यही है कि जहाँ तक हो सके करो को बढ़ा दिया जाय। पर इस बात का खयाल रहे कि करों के बढ़ाने के कारण शराब की ग़ैर-कानूनी उत्पत्ति को कहीं उत्तेजन न मिलने पावे या लोग इस सौम्य शराब के बदले अधिक विषैले पदार्थों का सेवन करने न लग जावें इसी नीति को ध्यान मे रखते हुए शराब की दूकानो की संख्या भी जहाँ

तक हो सके घटा दी जाय। साथ ही प्रलोभनो को कम करने के ख़याल से समय-समय पर इस बात की कड़ी जॉच होती रहनी चाहिए कि शराब की दूकाने कैसे स्थानो पर हैं। जहाँ तक हो सके इस में लोकमत के अनुकूल रहा जाय। इस बात को ओर विशेष ध्यान देने की ज़रूरत है कि दूकानो पर शराब अच्छी रक्खी जाय, न कि खराब जो स्वास्थ्य को हानि पहुँचावे।" ×

समझदार पाठक जान गये होगे कि इस चिकनी-चुपड़ी भाषा के भीतर कैसा निर्दय लोभ छिपा हुआ है। सम्पूर्ण शराव-बन्दी को अपने कर्तव्य से बाहर बताने मे अर्थ-विभाग को तिल-भर भी संकोच नही हुआ। यह घृणित गुलामी हमें क्या-क्या न सुनायेगी। अपने स्वार्थ के लिए एक महान राष्ट्र को नशे के जाल मे फॅसाकर उसे दीन-दुर्बल, मूर्ख और गुलाम

× तुलना कीजिए इंग्लैंड के प्रधान मन्त्री श्रीरैमसे मॅकडोनल्ड के इन वचनो मे—"कुछ लोग कहते है हम जनता को पार्लमेण्ट द्वारा क़ानून बनाकर व्यसनों से मुक्त नही कर सकते। जनता की आंखो मे धूल डालनेवाली ऐसी बेवक़ूफ़ी भरी, ग़लत दलीलो से मैं घृणा करता हूँ। इन्हे ऐसे लोग पेश करते है जिनके कोई दिमाग़ नही होता और मूर्ख लोग ही इनमे विश्वास भी कर सकते है। समस्त संसार का अनुभव निश्चित, असंदिग्ध और अकाट्य है और वह यह है कि पार्लमेण्ट मे कानून बनाकर हम औरतो को और मर्दों को ज़रूर व्यसनो से मुक्त कर सकते है।'

× × × ×

"शराब का व्यापार समाज के जीवन के लिए अब खतरनाक सीमा तक पहुँच गया है और वह देश की राजनीति को दूषित करने लग गया है।"

बनाये रखने मे भला लोभी को कैसे संकोच हो सकता है! सरकार शराबी की शराबखोरी को उसका हक़ मानती है। उसे व्यसनो से मुक्त करने के अपने कर्तव्य की उसे क्यो परवा होने लगी! पर इसपर अधिक लिखना व्यर्थ है। इन वर्षो मे शराब की दूकानो पर सत्याग्रह करनेवाले हजारो स्वयं-सेवको को गिरफ्तार करने और उनपर लाठियाँ बरसानेवाली सत्ता की नीति और नीयत के विषय मे भी क्या अब किसी को शक रह सकता है! शराब न पीनेवालो के मार्ग में प्रलोभन न रखने, अतिपान की वृत्ति को रोकने, दूकानो की संख्या घटाने और "जहाँ तक हो सके लोकमत के अनुकूल रहने की" सारी बातो मे अब कौन विश्वास कर सकता है? "अतिपान को रोकने के लिए करो को बढ़ाना" और उसमे इस बात का ध्यान रखना कि "कहीं गैर-कानूनी शराब की उत्पत्ति को प्रोत्साहन न मिलने पाये" अपने व्यापार को नियमित रूप से चलाने के एक ढग के सिवा और क्या है? इसीलिए अमेरिका के विख्यात सुधारक श्री पुसीफूट जानसन ने अपने एक भाषण मे कहा था—

"शराब की समस्या का अध्ययन करने के लिए मैंने तीन बार संसार की यात्रा की है। पर मैने यह कहीं न देखा कि शराब के बेचनेवालो ने उनके द्वारा पालन करने के लिए बनाये गये क़ानूनो को माना हो। लोगो को संयम की शिक्षा देने के हेतु शराब बेचना जनता को कमखर्ची सिखाने के लिए जुआ-घर खोलने अथवा गृह-सौख्य को क़ायम रखने के लिए व्यभिचार की इजाजत देने, और ब्रह्मचर्य या सतीत्व की रक्षा के लिए वेश्यालय खोलने के समान है। ऐसी बेवकूफी भरी

योजनाएँ कभी सफल नहीं हो सकतीं। न कभी सफल हुई हैं और न आगे होंगी।"

श्री राजगोपालाचार्य अपने प्रोहीबिशन मेन्युअल में लिखते हैं—

"अनुभव तो सरकार के इस दावे का समर्थन नहीं करता कि वह "शराब के व्यापार का नियन्त्रण कर रही है और साथ ही कम से कम खपत और अधिक से अधिक आय के सिद्धान्तानुसार प्रसंगवश यों ही थोड़ी आय भी कर देती है। भारत में जो बात सर्वत्र दिखाई देती है वह सरकार का शराब पर वास्तव में नियन्त्रण नहीं, एकाधिकार है और वह एकाधिकार भी ऐसा जो अधिकांश प्रान्तीय सरकारों को उनकी कुल आय का एक चौथाई हिस्सा कमाकर देता है। यहाँ तो सरकार की स्थिति में शराब बनानेवाली कम्पनी की-सी है। इसलिए इससे तथा ठीकों की बिक्री से मिलनेवाले पैसों की वजह से इस व्यापार को अनुदिन बढ़ाने की सरकार की रुचि और इस "कम से कम खपत" का मेल हो कैसे बैठ सकता है? नाबालिग आदि को शराब न देने के कुछ नियन्त्रणों को छोड़कर कि जिनपर बहुत सख्ती से अमल नहीं किया जाता परवानों के अनुसार जिसे जितनी चाहे शराब बेची जा सकती है। इस तरह शुरूआत तो पहले-पहल "शराब पीने की इजाजत" से होती है। पर आगे चलकर उनकी "रक्षा" होने लगती है और धीरे-धीरे नौबत पहुँचती है जाकर ठेठ शराब के प्रचार तक।"

सरकार भले ही कहती रहे कि "लोकहित के लिए आय-सम्बन्धी तमाम विचारों को गौण स्थान दिया जाय" पर भारतवर्ष में अब

हरएक शिक्षित और समझदार आदमी जानता है कि इन बातो पर कितना विश्वास करना चाहिए। अपने दिवालिये शासन को चलाने मे होनेवाली कठिनाइयो का सामना करने के लिए कभी-कभी कर भी बढ़ाने पड़ते है तो कहा जा सकता है बढ़ते हुए अतिपान को रोकने के लिए यह किया जा रहा है, और बिक्री कम होते ही यह कहकर कर घटा भी दिये जाते हैं कि कहीं लोग गैर-कानूनी शराब न बनाने लग जायँ। खैर उपर्युक्त नीति को अंगीकार करने के बाद के अंक करोड़ो मे यो है।

वर्ष	आय करोड़ो मे	वर्ष	आय करोड़ो मे
१९०५	८.४	१९२०	२०.४
१९०७	९.४	१९२२	१८
१९११	११.४	१९२४	१९.५
१९१४	१३.२	१९२६	२०
१९१७	१५.१	१९२८	२३.५

इस बढ़ती हुई आय का कारण हमारी सरकार की ओर से बताया जाता है लोगों की बढ़ती हुई सम्पत्ति ×।

उपहास की सीमा होती है। यह अंधापन है या अज्ञान? यह इस दरिद्र गुलाम देश के दुखित हृदय पर किया हुआ मर्मोपालम्भ है या विदेशियो को अंधा बनाने के लिए उनकी आँखो मे फेंकी हुई धूल! हरसाल करोड़ो रुपये ले जाकर इस देश को निस्सत्व बनानेवाली कठोर-हृदय सरकार के मुँह मे ही यह

× (देखिए Decennial Report Moral and Material Progress of India 1911-12 पृष्ठ २०५-०६ और भारत-सचिव का भारत-सरकार को भेजा सरकारी पत्र २९ मई १९१८)

घृणित असत्य शोभा दे सकता है। अब हमे यहाँ पर भारत की दरिद्रता को सिद्ध करके नहीं दिखाना है। यह प्रयास इसी देश के भाइयो के लिए है, जिन्हे भारत की दरिद्रता पुस्तक-ज्ञान की नहीं, अनुभव की वस्तु है। तथापि पाठक यह न समझे कि यह आय केवल कर के बढ़ जाने के कारण है। नीचे लिखे नक़शे से ज्ञात होगा कि शराब की उत्पत्ति और व्यवहार भी यहाँ बढ़ गया था। खूबी यह कि शराब की दूकानो की संख्या तो घटती गई है परन्तु शराब की तादाद बढ़ती गई है। इसके मानी यह हैं कि घाटा पहुँचानेवाली दुकानो को सरकार बन्द करती गई और आकर्षक जगहो पर नई दूकानें कायम करके अधिकाधिक शराब वेचकर अपनी आय बढ़ाती गई। शराब की वृद्धि के साथ कर भी बढ़ना चाहिए था न ? परन्तु पाठक करो के कोष्ठक में कुछ और ही पायेगे। पहले यह देखे कि दूकाने किस प्रकार घटी।

शराब और मादक पदार्थों की दूकानों की संख्या

वर्ष	शराब की दू०	मादक द्र० दू०	कुल
१८९९-१९००	८२,११७	१९,७६६	१,०१,८८३
१९०५-१९०६	९१,४४७	२१,८६५	१,१३,३१२
१९१०-११	७१,०५२	२०,०१४	९१,०६६
१९१५-१६	५५,०४६	१७,३१६	७२,३६२
१९१८-१९	५२,६८३	१७,१५२	६९,८५३
१९२६-२७	—	—	४३,०००

समस्या दिन-ब-दिन मुश्किल

त्रैमासिक प्रोहिबिशन (शराब-बन्दी) के सम्पादक लिखते हैं—

"सरकार के पक्षवाले चाहे जो कहते रहें, पर इसमें कोई शक नहीं कि उसने किसानों और कारखानों के मजदूरों को लुभाने के लिए समस्त देश में शराब की दूकानें प्रत्येक सड़क के किनारे और शहरों में अच्छे मौके की जगहों पर खोल रक्खी हैं। इन दूकानों पर शराब बेचने के हक को सरकार नीलाम करती है और वह उसी को दिया जाता है जो सबसे अधिक टके दे। बेचारा यह ठेकेदार भी अपने टके वसूल करने के लिए सालभर ग्राहक बढ़ाने की फिक्र में रहता है जिससे अगले साल उससे भी अधिक ऊँची बोली लगानेवाले को वह खड़ा कर देता है। इस तरह बुराई हर साल तेजी से बढ़ती ही जाती है। और सरकार के इस नियन्त्रण का कोई अर्थ नहीं रह जाता कि बिक्री ऐसे ही लोगों द्वारा कराई जाय जिन्हें बिक्री बढ़ाने का लोभ न हो। सरकार ने शराब-बन्दी की समस्या को इन ६० वर्षों में १०० गुना ज्यादा मुश्किल बना दिया है। सन् १९०० में केवल ६ करोड़ रुपयों के लिए वह शराब पर निर्भर थी। पर आज तो अपनी बजट की पूर्ति के लिए वह २५ करोड़ इस व्यापार से इकट्ठा करती है। इस हिसाब से १८७० में शराब-बन्दी जितनी आसान थी वह १९०० में न रही और १९०० में जो बात थी वह आज न रही"।

दूकानें जरूर घटती गई हैं पर शराब की खपत बराबर बढ़ती गई है:—

देशी शराबों की खपत प्रूफ×गैलनों में

प्रान्त	१९०१-०२	१९११-१२	१९१८-१९
बम्बई और सिन्ध	१७,१७,७७५	२९,३७,०३४	२६,७०,१५४
मद्रास	८,७५,७५५	१६,२८,१७८	१६,५२,४९२
पंजाब	२,४८,५२४	४,५९,७९६	४,३६,८३७
मध्यप्रदेश बरार	२,६६,१८०	१०,६६,८८०	१२,२१,१३७
युक्तप्रान्त	१२,१४,७९८	१५,३८,५०४	१४,६८,६२०
बंगाल, बिहार और उड़ीसा	६,०८,२९८	१८,७६,३१९	२०,६९,९०९
आसाम		२,३८,९४७	२,२५,५७१
ब्रह्मा		२६,७८६	१,२४,४०९
विदेशी शरावे और डि० पद्धति से बनी देशी श० } लिक्विड गैलनो मे		४९,६१,१४६	५७,१८,१३७

× "प्रूफ स्पिरिट" मे पानी और अलकोहल दोनो बराबर मात्रा मे (आधा-आधा) होता है।

"ओवर प्रूफ" शराब मे पानी के बजाय अलकोहल अधिक होता है। 'अण्डर प्रूफ" शराब मे अलकोहल के बजाय पानी अधिक होता है। डिग्रियाँ "केवल अलकोहल की प्रतिशत मात्रा" बताती है। शराब की शुद्धाशुद्धता से उनका कोई सम्बन्ध नहीं।

प्रान्तवार आबकारी आय

प्रान्त	रकबा १००० मीलों में	जन-संख्या लाखों में	प्रति वर्ष आय लाखों में								
			१९००	१९११-१२	१९१८	१९-२०	२१-२२	२३-२४	२७-२८	२८-२९	३१-३२ (बजट से)
मद्रास	१४२	४२३	१३६	३०१	४०४	५३६	४८१	५११	५३४	५५१	४९६
बम्बई	१२४	१९३	१०१	२०३	३२०	४०२	३४७	४११	३९४	३८४	३१२
बंगाल	७७	४६७	१४६	१३४	१५६	१६१	१८४	२१०	२२५	२२६	२०७
युक्तप्रान्त	१०६	४५४	६९	१११	१४३	१७४	१४५	१३२	१४४	१३४	१२२
पंजाब	१००	२०७	२६	६४	८५	१२४	१०८	१०६	१२६	१२६	१०८
बिहार उड़ीसा	८३	३४०	—	१०१	११८	१२९	१२४	१८३	१९७	१९०	१६१
मध्यप्रदेश	१००	१३९	१८	९१	११५	१४८	१०४	१३१	१२२	१२५	९४
आसाम	५३	७६	२९	४४	५४	६७	६२	६२	७०	६६	५८
ब्रह्मा	२३४	१३२	५०	७३	६२	१०४	९८	११०	१२४	१३४	१०९

अख़बारों से ज्ञात हुआ है कि ३१-३२ के आन्दोलन के कारण बंगाल-सरकार को इस विभाग में २४ लाख की घटी रही।

वास्तव मे जिस प्रान्त मे शराबखोरी बढ़ती हुई नज़र आती वहाँ उसे रोकने के लिए सरकार को उसी या उससे कुछ अधिक परिमाण मे कर बढ़ाना चाहिए था। परन्तु कर बढ़ाये गये इस परिमाण मेः—

प्रान्त	प्रतिशत शराब की वृद्धि	कर-वृद्धि प्रतिशत
बम्बई	५१	३८
सिन्ध	३५	२२
मद्रास	८६	३१
पंजाब	८१	३३
युक्तप्रान्त	२०	३४
मध्यप्रदेश	३००	५४

जनता की प्रत्यक्ष हानि

पर किसी प्रान्त की आबकारी से होनेवाली आय को देखकर हम यह नहीं कह सकते कि इस प्रान्त के लोग इतना धन शराब या मादक द्रव्यो पर बरबाद करते है। यह तो उसका एक अंश-मात्र है। वास्तव मे लोग इससे कई गुना अधिक खर्च करते हैं। सरकारी आय तो उस धन-प्रवाह का एक हिस्सा-मात्र है, जिसे लोग कलवार की दूकान पर दे आते हैं। देखिए, मदरास इलाके में सरकार की आबकारी आय है ५ करोड़ १० लाख रुपये। पर वास्तव में जनता का कितना रुपया बरबाद होता है—

	तादाद (गैलन)	कीमत
ताड़ी	१५,००,००,०००	१२,७५,००,०००
(१० हजार से ऊपर दूकानो मे)		
बीयर	९,००,०००	८,००,०००
तेज स्पिरिट	२६,८६,०००	३,२२,००,०००
अफीम और अन्य मादक द्रव्य	पौंड १६७,९००	७८,००,०००
		१६,८३,००,०००

इसमें से सरकार को करो से जो आय होती है वाद कीजिए	५,००,००,०००
शराव और मादक द्रव्यो पर कुल व्यय	११,५०,००,०००

अब तुलना कीजिए

मदरास प्रान्त मे जमीन का लगान	७,५०,००,०००
„ „ शासन-व्यय	२,५०,००,०००
„ „ न्याय पर व्यय	१,००,००,०००
„ „ पुलिस विभाग	२,००,००,०००
„ „ शिक्षा-विभाग लगभग	१,५०,००,०००
„ „ रोग-निवारण और आरोग्य लगभग	१,५०,००,०००
„ „ अकाल पीड़ितो की सहायता वगैरा	७,०० ०००

इसी प्रकार समस्त भारत मे सरकार को शराब और मादक द्रव्यो के कर से लगभग २५ करोड़ रुपये की आय होती है।

आबकारी आय का भार

	फी आदमी ×मन १९२७-२८	
बम्बई	२६५	पाई
मदरास	२४०	,,
ब्रह्मा	२०१	,,
आसाम	१७९	,,
मध्यप्रदेश	१६३	,,
पंजाब	११३	,,
बिहार-उड़ीसा	१०६	,,
बंगाल	९२	,,
सीमाप्रान्त	८४	,,
युक्तप्रान्त	६०	,,

इन विषो का शिकार हर एक आदमी शराब या मादक द्रव्य खरीदते समय जो कीमत देता है उसमे नीचे लिखे हिस्सेदार हैं।

(१) शराब तथा अन्य मादक पदार्थों की बनावट मे लगनेवाले द्रव्यो की कीमत

(२) परिश्रम

(३) देखभाल की फी

(४) वितरण व्यय

× भारत मे अनेक जातियाँ शराब नही पीती इसलिए वास्तव मे शराब पीनेवाली जातियो पर शायद पचासो गुना इससे अधिक भार है। जिसके कारण वे बरबाद हो रही है।

(५) मादक द्रव्य की पैदायश की तादाद पर लगाया गया सरकारी कर

(६) ठीकेदार के नीलाम द्वारा सरकार को मिलनेवाले रुपये और

(७) ठीकेदार का नफा

इस प्रकार देखा जाय तो ऊपर बताये हुए २५ करोड़ की अपेक्षा जनता को कहीं अधिक रुपये मादक द्रव्यों पर बरबाद करने पड़ते हैं। इस विषय के विशेषज्ञ श्री राजगोपालाचार्य तथा दीनबन्धु ऐण्ड्रयूज साहब का कथन है कि भारत में शराब और मादक द्रव्यों पर १ अरब से भी कहीं अधिक रुपये प्रतिवर्ष बरबाद होते हैं।

जरा तुलना कीजिए:—

शराब और मादक द्रव्य	१,००,००,००,०००
सैनिक व्यय	५८,००,००,०००
शासन व्यय समस्त प्रान्त और ब्रह्मदेश सहित	२३,००,००,०००
पुलिस	१२,००,००,०००
शिक्षा-विभाग	१३,००,००,०००
न्याय-विभाग	५,६४,००,०००
भूमि-कर	३७,००,००,०००
आयकर	१७,००,००,०००
रेल की आय (मुसाफिरों से)	४०,००,००,०००
" " (माल द्वारा)	७९,००,००,०००

हमारे पाप का पहाड़

तुलना कीजिए !
और शर्म से सर नीचा
झुकाइए !

शारीरिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक हानि अपार

शराब और मादक द्रव्य पर १,००,००,००,००० रुपयों की होली

सेना व्यय ५८,००,००,०००

लगान ३७,००,००,०००

आयकर १७००००००

शासन व्यय ३३ करोड़

पुलिस १२ करोड़

शिक्षा १३ करोड़

न्याय ५½
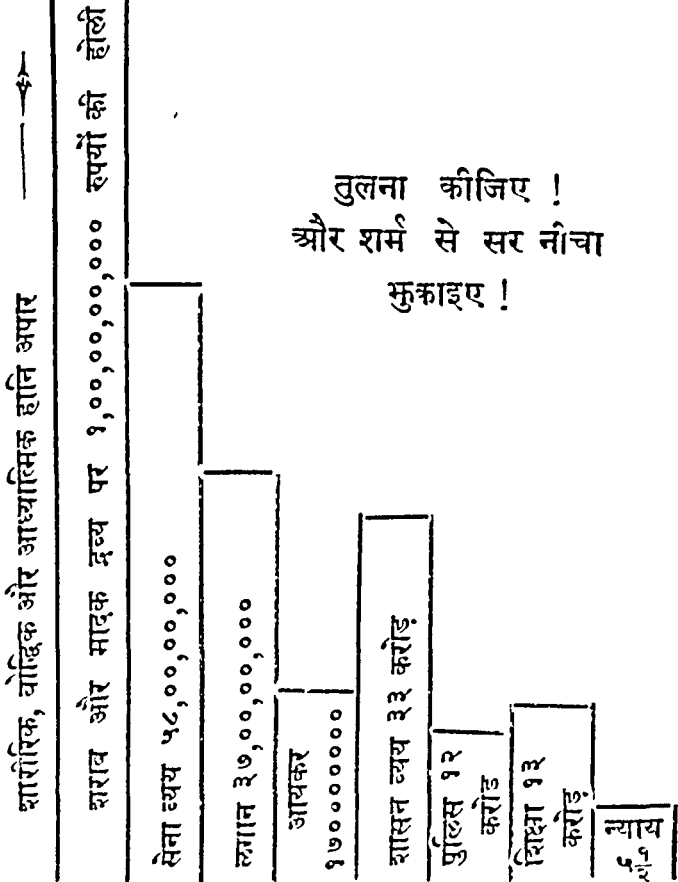
शराब के बनाने में भी जिन खाद्य पदार्थों (नाज या फल,का उपयोग होता है उनकी सारी पोषक शक्ति नष्ट होकर एक महा भयंकर विष मे परिणत हो जाती है। इसलिए शराब के बनाने मे लगने वाला धन, परिश्रम और समय देश की प्रत्यक्ष एक जबरदस्त हानि है। यो तो भारत मे कई प्रान्तो मे "ताड़ी" बनती है परन्तु अकेले मद्रास प्रान्त मे प्रतिवर्ष २७००००० नारियल खजूर और ताड़ के पेड़ ठोके पर दिये जाते हैं जिससे केवल वहाँ कम से कम ११,००,००,००० रुपये के नारियलो की हानि होती है। ज़रा सोचिए कि इस अभागे देश मे—जहाँ लोग दाने-दाने के लिए तरसते हैं कितनी खाद्य-सामग्री ताड़ी और दूसरी तरह की शराबो मे बरबाद करके लोगो को शराब पिलापिलाकर उनके शरीर और मन की शक्तियो को नष्ट किया जा रहा है !!!

भारत मे जिस श्रेणी के लोग प्राय: शराब पीते हैं, उनकी दशा को देखकर हृदय मे करुणा और बड़ा दु:ख उत्पन्न होता है। वह अभागा इन दूकानो की ओर उसी तरह आता है जिस तरह पतिंगे दीपक पर आत्मनाश के लिए दौड़ते हैं। जिस समय उनके बच्चे मारे भूख के तड़पते हैं और स्त्री मातृ-प्रेम से व्याकुल होकर बच्चो के पेट की चिंता मे जलती हुई पति की राह देखती रहती है, यह अभागा अपनी दिन-भर की कमाई खोकर कहीं मार-खाकर, कभी सिर मे पैर तक कीचड़ मे लथ-पथ हो कर, तो कभी खून से नहाता हुआ अपने शराबी दोस्तों के साथ रात के दस-दस बजे घर पहुँचता है। कुटुम्ब का पालन-पोषण करनेवाले अपने पति की यह दशा देखकर उस

बेचारी गृहलक्ष्मी की क्या हालत होती होगी सो तो वही जाने। एक के बाद एक बुरा वर्ष आता जाता है, जीवन-संघर्ष अधिकाधिक भीषण हो रहा है और उसमे भी यह शराब का शैतान एक ग़रीब आदमी की आय को निगल जाता है। फिर भी हमारे शासको को यह भद्दा मजाक सूझता है कि लोग सम्पन्न होते जा रहे है इसलिए शराब की बिक्री बढ़ रही है। हाँ, इंग्लैड में भले ही यह बात सत्य साबित होती होगी। मगर यहाँ तो बेचारे ग़रीब लोग प्रायः अपने जीवन की भयंकरता को भुलाने के लिए ही शराब पीते है और पीते है होश मे आने पर उस भयंकरता को और भी नग्न रूप मे देखने के लिए! कैसा दैव-दुर्विपाक है? देश की इस भीषण परिस्थिति की उपेक्षा तो केवल धनलोलुप विदेशी सरकार ही कर सकती है। हाँ, और उपेक्षा कर सकते है अपने उत्तरदायित्व, बल, पौरुष, सम्मान, स्वाधीनता और सर्वस्व को खोकर गुलामी की खाई मे सड़नेवाले उससे भी अधिक ग़ैर जिम्मेवार एवं अपने अधम स्वार्थों के लिए अन्धे बने हुए लोग भी।

[४]

भारत में विदेशी शराबें

पाठकों को शायद यह ख़याल न रहा होगा कि अभी तक हमने जो अंक दिये हैं वे केवल देशी शराब के है जो सरकार के आबकारी विभाग द्वारा बिकती है। परन्तु इसके अलावा भी इस देश का अपरिमित धन प्रतिवर्ष विदेशी शराबो के लिए बाहर भेजा जाता है।

अंगरेजी सभ्यता के पुरस्कारस्वरूप केवल कोट पतलून और बूट ही हिन्दुस्थानियो ने नहीं अपनाये बल्कि अनेक दूसरी चीजे भी, जिनमे वहाँ की शराब भी एक महत्वपूर्ण वस्तु है। ऊंची अंगरेजी शिक्षा पाने पर जब हिन्दोस्तानियो को ऊंची-ऊंची नौकरियां भी मिलती हैं तब उन्हे अपने प्रभुओ के यहाँ कभी-कभी खाना खाने या चाय पीने के लिए भी जाना पड़ता है। और ऐसे अवसरो पर शराब पीने का शुभ सस्कार भी सम्पन्न हो जाता है। किसी के यहाँ खाना खाने के लिए जाने पर यजमान को कोई चीज लेने से इन्कार करना निरा जंगलीपन कहलाता है, इस भावना से कितने ही युवक इस "देवदुर्लभ" चीज़ का स्वागत करते है। गोरी फौजे, फौजी अफसर, मुल्की अफसर, राजा-रईस, ठाकुर, और इनके अन्य आश्रित एवं प्रभावित लोग मिलकर भारत मे करोड़ो रुपये विदेशी शरावो के पीछे स्वाहा कर जाते है। और चीजों की भाँति देशी शराब

मे भी तो देशी भद्दापन है न ! कौन इज्जतदार आदमी उन गंदी—खराब दूकानो पर जाकर शराब पीयेगा । क्या विदेशी शराब सभ्यता की निशानी नहीं है । और सुविधा कितनी ?—जहॉ चाहो बोतल और वह खूबसूरत सुन्दर प्याला ले जाओ । और सबसे बड़ी चीज तो है सोसायटी ! कहॉ वे "अपढ़, गधे-हिन्दुस्तानी किसान" और कहाँ ये सुसभ्य आंग्ल देशीय युवक-युवतियाँ ! नौबत अब यहाँ तक पहुँच गई है कि जो विदेशी शराब पीना नहीं जानता, असभ्य समझा जाता है । चार मित्र इकट्ठे होते है तब अगर "जनरल इंटरेस्ट" की कोई बात-चीत छिड़ती है तो यही—"अच्छा बताइए मिस्टर आप "वायब्रोना" पीते हैं या "बोवरिल" । बोवरिल के बाद अगर सीजर मिल जाय तो कहना ही क्या ?"

पर हममे से कितने ही लोग तो इन विदेशी शराबो के नाम सुनकर ही चकित हो जाते हैं । साधारण आदमी नहीं जानता कि बीयर. रम, ह्विस्की, वाइन आदि में क्या भेद हैं । इसलिए यदि यहॉ पर इन भिन्न-भिन्न शराबों का परिचय भी दे दिया जाय तो अनुचित न होगा ।

बीयर—जौ अथवा इसी तरह के नाज से यो बनाई जाती है—जौ पानी मे भिगोकर उगने तक गरम जगह मे रक्खे जाते है । कुछ रोज बाद उन्हे सेककर पीस लिया जाता है । फिर एक बड़े चौड़े बरतन मे रखकर उन्हे सड़ने देते हैं । फिर बड़े-बडे हौजो में डालकर उन्हे साफ कर लेते हैं । बाद मे स्वाद तथा मादकता बढ़ाने के लिए हॉप्स वगैरा चीजे डाल दी जाती है । (हॉप्स मे वहा विप होता है जो गांजा-भांग या चरस मे होता है)

एल } यह भी बीयर ही हैं। सिर्फ स्वाद और सुगन्ध
पोर्टर } भिन्न होती है।

पोर्ट
शेरी } अंगूर के रस से बननेवाली शराबे।
शैम्पेन

ह्विस्की—गेहूँ, जौ, राई, आदि से। बड़ी तेज होती है।

सायडर—ऐपल—सेबफल के रस से बनती है।

रम—गन्ने के गुड़ से बनाई जाती है।

ब्रैण्डी—अंगूर के रस से बनी शराब है परन्तु इसमे अलकोहल की मात्रा कहीं अधिक होती है।

पर ब्रैण्डी तथा अन्य तरह की शराबे दूसरे ढंग से पानी या दूसरे पेयो मे अलकोहल मिलाकर ब्रॉण्डी की-सी खुशबू या स्वाद बनाकर—भी तैयार की जा सकती हैं।

१३ प्रतिशत से अलकोहल की अधिक मात्रा रखनेवाली शराबे "फॉर्टीफाय" करके अर्थात् उनमे शुद्ध अलकोहल ऊपर से मिलाकर तैयार की जाती हैं। शराबो के नाम उनके बनने के स्थानो के अनुसार भी होते हैं।

नाज या फल के सड़ने पर उसकी सारी पोषण-शक्ति नष्ट हो जाती है। इसलिए यह कहना कि शराबे पौष्टिक होती हैं लोगो को सरासर धोखा देना है।

प्रतिशत अलकोहल	नाम शराब
४ से ८	बीयर, एल या पोर्टर
८—१२	ताड़ी
१०—२५	वाइन्स
२५—३५	अरक या देशी शराबें
३५—४०	स्पिरिट
लगभग ५०	जिन, रम, ब्रैण्डी, ह्विस्की

स्पष्ट ही प्रत्येक शराब की मादकता उसके अन्दर रहनेवाले अलकोहल की मात्रा तथा प्रत्यक्ष शराब के परिमाण पर निर्भर है। जो परिणाम एक ड्राम अरक से होगा उसके लिए कहीं अधिक ताड़ी की मात्रा को दरकार होगी।

तमाम पौष्टिक या शक्ति-वर्द्धक कही जानेवाली शराबों में १५ से २५ प्रतिशत अलकोहल होता है। इसी कारण तमाम अच्छे-अच्छे डाक्टर उनकी निन्दा करते है और उन्हे आदमी के शरीर और दिमाग के लिए हानिकर बताते हैं।

लन्दन-अस्पताल के डॉक्टर हचिन्सन इनके बारे में लिखते हैं—"इन शराबो का इस्तेमाल करने की सिफारिश किसी हालत मे नहीं की जा सकती। बल्कि तमाम डाक्टरो को चाहिए कि इनकी उत्पत्ति और प्रचार को हर तरह से रोके।"

सन् १९१४ मे इंग्लैड की साधारण सभा ने पेटेण्ट दवाओ की जॉच के लिए एक सिलेक्ट कामटी की नियुक्ति की थी। पूरी जॉच के बाद उसने अपनी रिपोर्ट में लिखा है—

"इसमे कोई सन्देह नहीं कि बहुत से आदमियों को इन शराबो और पौष्टिक पेयो के पीने से ही शराबखोरी की लत

लग जाती है।"·········भिन्न-भिन्न प्रकार की शरावो और पेयो मे नीचे लिखे अनुसार अलकोहल विष की मात्रा होती है—

वोवरिल शराव	२० प्रतिशत
लेमको शराव	१७ ,,
विनकारनिस	१९.६ ,,
वेपइल्स वाइन	२० ,,
ग्लेरिडनिग्स वाइन	२०.८ ,,
ऐक्स्ट्रेक्ट्स कोका शराव	१५ ,,
स्वायर और पौराड की शराव	१७ ,,
कोलमन की कोका शराव	१७ ,,
सावर की शराव	२३ ,,
हाल की शराव	१७.८ ,,
विन मैरिआनि	१६ ,,
सेन्ट रैफल टॉनिक शराव	१६ ,,
कैरिन्स लिकिड पेप्टोनोइड्स	२० ,,
पैना पेप्टोन	२० ,,
आर्मर्स न्यूट्रिटिव एलिक्सिर ऑव पप्टोन	१५ ,,
कार्ना विन	१५ ,,
ज़ूनोरा	११.९ ,,
वायनोना	’/९ ,,
लीडिया पिरवास विजिटेवल कम्पाउण्ड	२० ,,

हाल की शराव मे इसके अलावा कोका पत्तो का अर्क (अर्थात् कोकीन) होती है।

वहुत कम लोग जानते हैं कि भारत में विदेशी शरावें कितनी खपती है। आवकारी आय में इसका कहीं जिक्र तक नहीं मिलेगा। सायर के अंको से पता चलता है कि विदेशो से आनेवाली शराव पर सरकार को सिर्फ करो से नीचे लिखे अनुसार आय होती है:—

	रुपये
१९२६–२७	३५२८६०००
१९२७–२८	३६६९९०००
१९२८–२९	३५७१६०००
१९२९–३०	३७६६३०००
१९३०–३१	३३१७६०००

पर इससे तादाद का ठीक-ठीक पता नहीं लग सकता, वह इस प्रकार है। अंक गैलन के है।

	वीयर आदि लिकर्स	वाइन	स्पिरिट	डिनेचर्ड स्पि
१९२३–२४	२८४६३१६	२२५३३६	१३००२४९	३६६३८८
१९२७–२८	४४९९८१४	३०४१४१	१४०३३८८	९१११२५

१९२९–३० कुल ७५७९००० गैलन } ५ प्रतिशत कमी
१९३०–३१ कुल ७१८२००० ,, } शायद आंदोलन के कारण

१९२३–२४	१९२७–२८
२८४६३१६	४४९९८१४
२२५३३६	३०४१४१
१३००२४९	१४०३३८८
३६६३८८	९१११२५
४७,३८,२८९	७१,१८,४६८

इन अंकों पर सरसरी नजर दौड़ाने से पता चल जायगा कि सन १९२३-२४ के बजाय इन ४-५ वर्षों मे विदेशी शराब की आयात कही अधिक बढ़ गई है। १९२३-२४ में ४७३८२८९ गैलन से एकाएक ७११८४३८ गैलन पर संख्या पहुँच गई। और १९३०-३१ में आन्दोलन इतना जोरो पर होने पर भी इसकी बिक्री पर हम अधिक असर नहीं डाल सके। जरा ध्यान से अध्ययन कीजिए; पिछले साठ वर्षों मे इस घृणित वस्तु के व्यापार ने इस देश मे किस तरह तरक्की पाई है—

वर्ष	विदेशी शराब—गैलनो मे
१८७५–७६	७०११७७
१९०४–०५	१२९७६११
१९२७–२८	७११८४३८

पचीस-तीस वर्ष पहले सन १९०५–६ मे शराब वगैरा चीजो की खपत की जाँच के लिए एक कमेटी मुकर्रर हुई थी उसने इन विदेशी शराबो के सम्बन्ध मे लिखा था—"सरकार नहीं चाहती कि इन विदेशी शराबो का प्रचार भारत की आम जनता मे हो। इसलिए इनकी बिक्री उन्हीं जगहो में शामिल है जहाँ इनका इस्तेमाल करनेवाली युरोपियन और पारसी बस्तियाँ है।" पर पता नहीं आजकल सरकार की क्या नीति है। आज-कल तो नि.सन्देह विदेशी शराबों की बिक्री केवल इन्हीं लोगों के लिए सीमित नही है। इससे साधारण आदमी तो सिवा इसके और क्या अनुमान लगा सकता है कि सरकार इस व्यापार को मनमाना बढ़ने देना चाहती है और जितनी अधिक आय मिल सके वसूल करना जानती है।

प्रान्तीय सरकारे और भी आगे बढ़ रही है। उन्होने विदेशी ढंग की शराबे यहीं पर बनवाकर तमाम जनता को बिना रोकटोक बिकवाना भी शुरू कर दिया। यह देखिए १९२६-२७ के अंक हैं (इंपीरियल गैलनो मे)

प्रान्त	स्पिरिट	माल्ट शरावें
पंजाब	२५५,६५	१४८६९३१
मद्रास	२६५१८	५४०६७६
सीमा प्रान्त	८७७८	२२४०३४
ब्रह्मा	५१७५	१७०१२५
मध्यप्रदेश	५२४१	९६१७२
युक्तप्रान्त	२१२६७	९०६५०
बम्बई	३२२५१	४४४०३
सिन्ध	१३१	४८५६
बिहार-उड़ीसा	१८५९	१८३

कई प्रान्तो की सरकारो ने स्थानीय नई शराब की बिक्री बढ़ाने और बाहर से आनेवाली शराबो का मुकाबला करने के लिए उनकी बिक्री पर रु० २१-१४-० से महसूल घटाकर १७-८-० कर दिया है। फलतः करों की आय और शराबो की खपत का बढ़ना स्वाभाविक ही है। अकेले पंजाब मे इनकी ९० प्रतिशत बिक्री बढ़ गई जिसके लिए सरकार ने १४३ नई दूकाने खोलीं ताकि विदेशी शराबो की बिक्री पर "कुछ नियन्त्रण हो।"

परन्तु वह वैदेशिक व्यापार भी बराबर ज्यो का त्यो जारी ही है। जरा इन अंको पर नजर डालिए

(गैलन)

	२३-२४	२७-२८
एल, बीयर और पोर्टर	२८३६७९३	४४८७१७८
ब्रॉण्डी	३४८४०८	४२५६९३
जिन	८५१८२	११४१०८
लिकर्स	१३९०५	१६३९३
रम	१२३१४२	९०६५९
ह्विस्की	५२६८१३	५४७३५९
कुल	३९३४२४३	५६८१४२६

पॉच वर्ष मे १७४७१८३ गैलन बढ़ गये !!

क्या ये अंक ही सरकार की नीति को स्पष्ट करने के लिए काफी नही हैं। वह तो टके कमाना चाहती है। लोग देशी शराब पीयेंगे देशी देगी, विदेशी मांगेंगे विदेशी दी जायगी। आप हज़ार टीकाएँ कीजिए यहॉ कोई परवा नहीं है। लोगो की 'उचित जरूरत' (Legitimate need) को पूरी करना प्रत्येक सरकार का काम ही जो है !

भारत में विदेशी शराबों की आयात (गैलनों में)

	१९२४-२५	२५-२६	२६-२७	२७-२८	२८-२९
वीयर	३३३८२९४	३४९८३४५	३८२००४८	४४८७१७८	४३७०४०२
सायडर	११३४९०	१२५२४	९९८४	१२७३६	१२२४२
स्पिरिट	१६५९१११९	१९०११०२	२१३५४९१	२२१४५०३	२११४९१३
वाइन	३०९७३६	२७३४५५	२९५७२०	३०४१४१	२९८०६२

सरकारी कर से आय (रुपयों में)

वीयर-सायडर	१६२३१६८	१८०१४२०	१९४८४६२	२९१२३९१	२१५९१.५
स्पिरिट	२१९९८७४७	२५१९०३८९	२२६६४३५२	२१५२३६६९	२११८३०२५
वाइन	१४१०२८४	१४०७२२४	१५१८६६८	१४५००८२	१४७६५८७

('आवकारी' जुलाई १९३० से)

विदेशी शरावें वेचनेवाले ठेकेदारो की संख्या सन १९२६-२७ में इस प्रकार थी—

सीमाप्रान्त	२२६	पंजाव	७०८
मदरास	५५९	ब्रह्मा	६७४
वम्बई	१९७	विहार-उड़ीसा	१९६
वंगाल	६९६	मध्यप्रदेश वरार	२५९
युक्तप्रान्त	१०२०	आसाम	१२४

कुल ४६५९

'फारेन लिकर्स इन इण्डिया' नामक लेख मे श्री हरवर्ट ऐण्डरसन साहव लिखते हैं—"इस विषय के अध्ययन से हम अखीर में इसी नतीजे पर पहुँचते हैं कि विदेशी शरावो की विक्री देश मे वेहद वढ़ती जा रही है। इस वुराई के लिए भारत सरकार जिम्मेवार है पर वह न तो खुद अपने क्षेत्र मे इसे रोकने के लिए कुछ कर रही है और न प्रान्तों मे।"

यह कहना व्यर्थ है कि अव यह विभाग मंत्रियों के हाथों मे आ गया है। १०० वर्ष के शासन के वाद सारी असली सत्ता अधिकारियो के हाथों मे चली गई है। पच्चीस वर्ष पहले भारत-मंत्री से प्रार्थनाएँ की गई थी। तव वही सलाहकार वोर्ड और लायसेंसिगवोर्ड वने। पर इन वेचारो के हाथो में भी सत्ता का नाम नहीं।

अफीम

[१]

परिचय और इतिहास

"अहिफेनं गरलमेव"

भारतवर्ष अफीम के लिए संसार मे बहुत विख्यात है। किन्तु आजकल यहाँ इसकी पैदायश बहुत कम कर दी गई है। इसलिए कितने ही लोग इसकी उत्पत्ति का हाल भी नही जानते। वस्तुतः अफीम एक पौधे के फल के छिलकों से निकाला हुआ रस है। इसका पौधा कोई तीन-चार फुट ऊँचा होता है। इसकी पत्तियाँ कंगूरेदार और फूल बड़े ही सुन्दर होते हैं। फल भी आकार में कम सुंदर नही होते। इनके अन्दर वे छोटे-छोटे दाने होते है जिन्हे हम ख़स-ख़स कहते हैं। खस-खस खाने मे मधुर और शक्ति-वर्द्धक होती है। अफीम के पौधे कई प्रकार के होते है जिनके फूलो के रंग भी चित्र-विचित्र पाये जाते हैं। परन्तु भारतवर्ष मे केवल दो ही प्रकार के पौधे देखे गये हैं। एक सफेद और दूसरे लाल फूल वाले। सफेद फूलवाले पौधे मे अफीम अधिक होती है और लाल फूलवाले पौधे मे बीज ज्यादा होते हैं। भारत मे अक्सर सफेद फूल वाली अफीम ही अधिक होती है। बंगाल, युक्तप्रान्त, पंजाब, विहार, मालवा और गुजरात मे अफीम की खेती होती है। इनमे से मालवा और विहार की अफीम विदेशो मे भेजी जाती है। भारतवर्ष से प्राय. ८।९ करोड़ रुपये कीमत की अफीम और ६०-६५ लाख रुपये

की खसखस प्रतिवर्ष विदेशो में जाती है। भारतीय अफीम के वैदेशिक व्यापार का मनोरंजक इतिहास आगे दिया गया है।

अफीम की खेती के लिए बड़ी उपजाऊ जमीन की जरूरत होती है। वर्षाकाल में खेत को खूब जोतकर उसमें खाद वगैरा डालने के बाद कार्तिक में बीज बोया जाता है। माघ में पौधे फूलने लगते हैं। फूलों के झड़ जानेपर उसमे फल लगते हैं। इन सड़े हुए फूलों को किसान इकट्ठा कर लेते हैं और मिट्टी के ठीकरे में उन्हें कुछ गरम कर लेनेपर उनकी रोटी बना लेते हैं। आगे चलकर इसी रोटी में अफीम के गोले लपेटे जाते हैं। फूलो के झड़ जानेपर कोमल फल आते हैं। तब किसान बड़े सवेरे उठकर चाकू से फल के छिलके को दो-तीन जगह लम्बा-लम्बा चीर देते हैं। उसीके द्वारा दूध बह-कर बाहर निकलता है। दूसरे दिन किसान उस दूध को निकाल-कर मिट्टी या चीनी के बरतन में तेल डालकर उसमे रखते है। बरतन में इतना मीठा तेल डाल दिया जाता है कि वह दूध या रस तेल मे डूब जाय। सब पौधो का रस इकट्ठा हो जाने पर उस मीठे तेल मे मलकर उसके गोले बनाकर बेचा जाता है या सरकार को दे दिया जाता है।

भारतवासियो को यह बताने की जरूरत नही है कि अफीम कितनी विषैली चीज है; इसके 'गुणो' को तो भारत का अदने से अदना आदमी जानता है। कितनी ही गरीब औरतें अपने दुखी जीवन से ऊबकर अफीम खा लेती हैं और आत्महत्या कर लेती हैं। सच पूछा जाय तो अफीम भारत मे आत्म-हत्या का एक उपाय ही बना लिया गया था। पर लोगो का यह गलत ख्याल

[१]

परिचय और इतिहास

"अहिफेनं गरलमेव"

भारतवर्ष अफीम के लिए संसार मे बहुत विख्यात है। किन्तु आजकल यहाँ इसकी पैदायश बहुत कम कर दी गई है। इसलिए कितने ही लोग इसकी उत्पत्ति का हाल भी नही जानते। वस्तुतः अफीम एक पौधे के फल के छिलको से निकाला हुआ रस है। इसका पौधा कोई तीन-चार फुट ऊँचा होता है। इसकी पत्तियाँ कंगूरेदार और फूल बड़े ही सुन्दर होते हैं। फल भी आकार मे कम सुंदर नहीं होते। इनके अन्दर वे छोटे-छोटे दाने होते है जिन्हे हम खस-खस कहते हैं। खस-खस खाने मे मधुर और शक्ति-वर्द्धक होती है। अफीम के पौधे कई प्रकार के होते है जिनके फूलो के रंग भी चित्र-विचित्र पाये जाते हैं। परन्तु भारतवर्ष मे केवल दो ही प्रकार के पौधे देखे गये हैं। एक सफेद और दूसरे लाल फूल वाले। सफेद फूलवाले पौधे मे अफीम अधिक होती है और लाल फूलवाले पौधे मे बीज ज्यादा होते हैं। भारत मे अक्सर सफेद फूल वाली अफीम ही अधिक होती है। बंगाल, युक्तप्रान्त, पंजाब, बिहार, मालवा और गुजरात मे अफीम की खेती होती है। इनमे से मालवा और बिहार की अफीम विदेशो मे भेजी जाती है। भारतवर्ष से प्राय ८।५ करोड़ रुपये कीमत की अफीम और ६०-६५ लाख रुपये

की खसखस प्रतिवर्ष विदेशों में जाती है। भारतीय अफीम के वैदेशिक व्यापार का मनोरंजक इतिहास आगे दिया गया है।

अफीम की खेती के लिए बड़ी उपजाऊ जमीन की जरूरत होती है। वर्षाकाल में खेत को खूब जोतकर उसमें खाद वगैरा डालने के बाद कार्तिक मे बीज बोया जाता है। माघ में पौधे फूलने लगते हैं। फूलों के झड़ जानेपर उसमें फल लगते हैं। इन सड़े हुए फूलों को किसान इकट्ठा कर लेते हैं और मिट्टी के ठीकरे मे उन्हे कुछ गरम कर लेनेपर उनकी रोटी बना लेते हैं। आगे चलकर इसी रोटी मे अफीम के गोले लपेटे जाते हैं। फूलो के झड़ जानेपर कोमल फल आते हैं। तब किसान बड़े सवेरे उठकर चाकू से फल के छिलके को दो-तीन जगह लम्बा-लम्बा चीर देते हैं। उसीके द्वारा दूध बह-कर बाहर निकलता है। दूसरे दिन किसान उस दूध को निकाल-कर मिट्टी या चीनी के बरतन मे तेल डालकर उसमे रखते हैं। बरतन मे इतना मीठा तेल डाल दिया जाता है कि वह दूध या रस तेल मे डूब जाय। सब पौधो का रस इकट्ठा हो जाने पर उस मीठे तेल मे मलकर उसके गोले बनाकर बेचा जाता है या सरकार को दे दिया जाता है।

भारतवासियों को यह बताने की जरूरत नहीं है कि अफ़ीम कितनी विषैली चीज है; इसके 'गुणों' को तो भारत का अदने से अदना आदमी जानता है। कितनी ही ग़रीब औरतें अपने दुखी जीवन से ऊबकर अफीम खा लेती हैं और आत्महत्या कर लेती है। सच पूछा जाय तो अफ़ीम भारत मे आत्म-हत्या का एक उपाय ही बना लिया गया था। पर लोगों का यह ग़लत ख्याल

बन गया है कि जो विष इतना भयंकर है वह थोड़ी-थोड़ी मात्रा मे देने से मनुष्य की बीमारी को अच्छा कर सकता है। इसी भ्रम मे पड़कर कितने ही लोग अफीम खाना शुरू कर देते है और सदा के लिए इस बुरी आदत के शिकार बन जाते हैं। *अफीम बीमारी को तो दूर नहीं करती। परन्तु शरीर को सुन्न करके हमारे दर्द को मिटा देती है। अगर मृत्यु मानी बीमारी का मिट जाना हो तो अफीम बड़ी उपकारी चीज है।* पर जान-बूझकर मृत्यु को कौन बुलाने की इच्छा करेगा ? बेचारे अपढ़-कुपढ़ लोग अपने अज्ञान के कारण यही करते हैं। डाक्टर भी जब रोगी के दर्द को खूब बढ़ा हुआ देखते हैं, वह छटपटाता है, नींद नहीं आने पाती, तब उसे अफीम का इन्जेक्शन दे देते हैं। थोड़ी देर के लिए वह बेहोश हो जाता है और बाद नशा उतरने पर फिर वही छटपटाहट शुरू हो जाती है।

अफीम मे मैकोनिक एसिड, मार्फिया, कोडाइया, थिवाइया अथवा पैरे मार्फिया और नार्कोटिन नामक भयंकर विष होते है।

प्राचीन इतिहास

पहले-पहल अफीम के पौधे का आविष्कार यूनान के निवासियों ने किया। होमर आदि यूनानी कवियो के काव्य-ग्रन्थो मे इसका वर्णन पाया जाता है। किन्तु यूनानियो ने इसके उत्तेजक (?) और मादक गुणों का आविष्कार किया उससे कहीं पहले अरब लोगो ने अफीम की जानकारी ठेठ चीन तक फैला दी थी। ईसवी सन की तीसरी सदी मे इसके गुणो की खोज यूनान मे होने लगी। यूनान के थियोफ्रेस्टस, वर्जिल, प्लिनी, डियोस्कोराइड्स

वगैरा लेखकों ने मौके-मौके पर इसके गुणविशेष और क्रिया का उल्लेख किया है। रोमन-साम्राज्य के समय सिर्फ एशिया मायनर की अफीम का ही संसार को पता था।

भारत में आठ सौ वर्ष पहले लिखे "भाव-प्रकाश" मे अफीम के विषय मे यों उल्लेख पाया जाता है.—

"उक्तं खसफलक्षीरमाफूकमहिफेनकं ॥"

और "आफूकं शोषणं ग्राहि श्लेष्मघ्नं वातपित्तलं ॥"

शार्ङ्गधर मे इसकी क्रिया पर लेखक यों अपना मत प्रकट करता है:—

"पूर्वं व्याप्याखिलं कायं तत. पाकं च गच्छति ।"
"व्यपायि तद्यथा भङ्गा फेनंचाहि समुद्भवं ॥"

परन्तु ईसा की सोलहवीं सदी के पहले भारत मे अफीम के विषय मे कोई जानकारी नही पाई जाती। ज्ञात होता है कि बिहार मे कोई दो-ढाई सौ वर्ष पूर्व अफीम की खेती शुरू की गई थी। सोलहवीं सदी मे भारत में अफीम की पैदायश अच्छी तरह होने लग गई थी। वल्कि मालवा मे तो अफीम की खेती और उसका व्यापार और कारखाने एक महत्वपूर्ण वस्तु बन बैठे थे।

मध्यकाल मे अफीम के उपयोग के विषय मे संसार मे बड़ा भ्रम रहा है। चीनी लोग इसे "ईश्वरीय रस" कहते थे। भारतवर्ष मे भी इसे बच्चो और वृद्धो के लिए एक अमूल्य औषधि समझा जाता था। किन्तु अब तो संसार मे इसकी भयंकरता पूर्णतया सिद्ध हो गई। भारतवर्ष से चीन मे प्रतिवर्ष हजारों पेटियाँ जाती थी। जब चीन को इस वस्तु की भीषणता का

पूरा-पूरा खयाल हुआ तब उसने एक स्वर से इसका विरोध करना शुरू किया। किन्तु भारत मे इसका प्रचार कम नहीं है। आइए, पहले हम यह देख लें कि भारत में अफीम का व्यवहार किस तरह होता है।

[२]

प्रयोग और परिणाम

प्रयोग

अफीम का कई तरह से प्रयोग होता है। बहुत से लोग तो सिर्फ कच्ची अफीम की गोलियाँ बनाकर खाते है। कुछ लोग तमाखू की तरह उसे पीते भी हैं। डॉक्टर लोग अफीम का इञ्जेक्शन देते है और बहुतेरी दवाइयो के असर की छाप ग्राहको पर डालने के लिए, धूर्त वैद्य और डॉक्टर थोड़ी अफीम भी उनमे डाल देते है। कई पेटेण्ट दवाइयाँ इस तरह की होती हैं।

पर दवा के स्थान पर तो अफीम का बहुत कम उपयोग होता है। उसका व्यवहार अक्सर नशे के लिए अधिक होता है, और इस उपयोग की बुराई के विषय मे कहीं दो मत नहीं है। कलकत्ता की नेशनल क्रिश्चियन कौंसिल के श्रीयुत् पैटन देशभर के नामी-नामी डॉक्टरो से जानकारी प्राप्त कर के अपनी "ओपियम इन इण्डिया" नामक पुस्तक में लिखते हैं कि भारत मे अफीम का नीचे लिखे अनुसार व्यवहार होता है।

(१) भारत मे बच्चो को प्रायः अफीम दी जाती है।

(२) थकावट और जाड़े को भगाने के लिए भी उसका उपयोग किया जाता है।

(३) किसी बीमारी को रोकने या भगाने के लिए लोग अफीम का सेवन करते हैं।

(४) और कई शुद्ध व्यसन के बतौर उसको नित्य खाते या पीते है।

जॉच करने पर पाया गया है कि भारतवर्ष के प्राय: प्रत्येक हिस्से मे बच्चो को अफीम की छोटी-छोटी गोलियाँ देने की प्रथा है। जबतक बच्चा दो या तीन साल का नही हो जाता, यह प्रथा शुरू रक्खी जाती है। उपर्युक्त संस्था को अबतक जो सबूत मिला है उसके आधार पर श्रीयुत् पैटन का कथन है कि यह कुप्रथा देश मे बहुत फैली हुई है। बच्चो को अफीम देने के कारण कई है। बम्बई की विख्यात महिला डॉक्टर श्रीमती जीवान मिस्त्री L M. S उपर्युक्त संस्था को भेजे अपने पत्र मे लिखती है—"नीचे लिखे कारणो से अफीम भारत मे बच्चो को प्राय. दी जाती है और यह उसका सब से भयंकर दुरुपयोग है।

(१) अफीम बच्चो को इसलिए दी जाती है कि वे रोने न पायें। यद्यपि रोने का कारण कई बार उचित ही होता है। मसलन् माता का दूध काफी न होना।

(२) जब माता को घर से बाहर कहीं खेत या कारखाने मे काम के लिए जाना पड़ता है तो वह बच्चे को इसलिए अफीम दे देती है कि वह चुपचाप पड़ा रहे।

(३) इस गलत ख्याल से भी माता-पिता बच्चो को अफीम खिलाते है कि वह उनकी बढ़ती और स्वास्थ्य के लिए फायदे-मन्द है।

(४) झाड़ा, कय, वगैरा को रोकने के लिए।

(५) क्योकि अफीम कब्ज करती है. मामूली तौर से भी बच्चा बार-बार टट्टी न फिरता रहे और उसको उठाने के लिए अपना काम छोड़कर माता को न दौड़ना पड़े इसलिए लोग बच्चो को अफीम खिला दिया करते है।"

माताओ को जिन कारणो से बच्चो को अफीम देनी पड़ती है उससे हमारे देश की दरिद्रता और हमारी विषय-लालसा प्रकट होती है। ऊँचे वर्ग के लोगो को तो समाज को प्रत्यक्ष देखने का शायद ही कभी मौका मिलता है। पर हम मध्यमवर्ग के लोग भी अपने और अपने पड़ोसी के सुख-दु:ख से बेखबर और उदासीन रहे तो काम कैसे चलेगा ? यदि संतति इनी-गिनी हो तो न उनकी माता दुर्बल होगी न बच्चे ही दुर्बल होगे। दुबले बच्चे खाते भी खूब है और टट्टी भी खूब जाते है; उनमें अन्न का सत्व खीचने की शक्ति नही होती। संयमी माता-पिता के बच्चे सुंदर सतेज, बलिष्ट और हँस-मुख होते है। पर जब मनुष्य संयम के सुखमय किन्तु मुश्किल पाठ को भूलकर विषय-सेवन की आसान राह को पकडता है, तो वह फौरन अपने और अपने बच्चो के लिए एक सम्पूर्ण नारकीय जीवन बना लेता है। सारा मकान और मकान के सारे वस्त्र बच्चो के मैले के मारे बदबू करने लग जाते है। क्योकि जब एक, दो, तीन, चार, पॉच, छ , सात इस तरह साल-साल डेढ़-डेढ़ साल मे बालको की पैदायश होने लगे, तो क्या तो इन बच्चो मे सत्व होगा और क्या उस माता मे उनको सम्हालने की शक्ति होगी ? इस तरह से यदि कार्य जारी रहे तो धन-कुबेर भी दो दिन मे सुदामा हो जायगा। बच्चो को सम्हा-लने के लिए घर मे कोई मनुष्य न हो, नौकर रखने और उनके

(३) किसी बीमारी को रोकने या भगाने के लिए लोग अफीम का सेवन करते है।

(४) और कई शुद्ध व्यसन के बतौर उसको नित्य खाते या पीते है।

जॉच करने पर पाया गया है कि भारतवर्ष के प्रायः प्रत्येक हिस्से मे बच्चो को अफीम की छोटी-छोटी गोलियाँ देने की प्रथा है। जबतक बच्चा दो या तीन साल का नहीं हो जाता, यह प्रथा शुरू रक्खी जाती है। उपर्युक्त संस्था को अबतक जो सबूत मिला है उसके आधार पर श्रीयुत् पैटन का कथन है कि यह कुप्रथा देश मे बहुत फैली हुई है। बच्चो को अफीम देने के कारण कई है। बम्बई की विख्यात महिला डॉक्टर श्रीमती जीवान् मिस्त्री L. M. S उपर्युक्त संस्था को भेजे अपने पत्र मे लिखती है—"नीचे लिखे कारणो से अफीम भारत मे बच्चो को प्रायः दी जाती है और यह उसका सब से भयंकर दुरुपयोग है।

(१) अफीम बच्चो को इसलिए दी जाती है कि वे रोने न पाये। यद्यपि रोने का कारण कई बार उचित ही होता है। मसलन् माता का दूध काफी न होना।

(२) जब माता को घर से बाहर कहीं खेत या कारखाने मे काम के लिए जाना पड़ता है तो वह बच्चे को इसलिए अफीम दे देती है कि वह चुपचाप पड़ा रहे।

(३) इस गलत ख्याल से भी माता-पिता बच्चो को अफीम खिलाते हैं कि वह उनकी बढ़ती और स्वास्थ्य के लिए फायदेमन्द है।

(४) झाड़ा, कय, वगैरा को रोकने के लिए।

(५) क्योकि अफीम कब्ज करती है, मामूली तौर से भी बच्चा बार-बार टट्टी न फिरता रहे और उसको उठाने के लिए अपना काम छोड़कर माता को न दौड़ना पड़े इसलिए लोग बच्चो को अफीम खिला दिया करते है।"

माताओ को जिन कारणो से बच्चो को अफीम देनी पड़ती है उससे हमारे देश की दरिद्रता और हमारी विषय-लालसा प्रकट होती है। ऊँचे वर्ग के लोगो को तो समाज को प्रत्यक्ष देखने का शायद ही कभी मौका मिलता है। पर हम मध्यमवर्ग के लोग भी अपने और अपने पड़ोसी के सुख-दु:ख से बेखबर और उदासीन रहे तो काम कैसे चलेगा? यदि संतति इनी-गिनी हो तो न उनकी माता दुर्बल होगी न बच्चे ही दुर्बल होगे। दुबले बच्चे खाते भी खूब है और टट्टी भी खूब जाते है; उनमे अन्न का सत्व खीचने की शक्ति नही होती। संयमी माता-पिता के बच्चे सुंदर सतेज, बलिष्ट और हँस-मुख होते हैं। पर जब मनुष्य संयम के सुखमय किन्तु मुश्किल पाठ को भूलकर विषय-सेवन की आसान राह को पकड़ता है, तो वह फौरन अपने और अपने बच्चो के लिए एक सम्पूर्ण नारकीय जीवन बना लेता है। सारा मकान और मकान के सारे वस्त्र बच्चो के मैले के मारे बदबू करने लग जाते है। क्योकि जब एक, दो, तीन, चार, पॉच, छ, सात इस तरह साल-साल डेढ-डेढ़ साल मे बालको की पैदायश होने लगे, तो क्या तो इन बच्चो मे सत्व होगा और क्या उस माता मे उनको सम्हालने की शक्ति होगी? इस तरह से 'यदि कार्य जारी रहे तो धन-कुबेर भी दो दिन मे सुदामा हो जायगा। बच्चो को सम्हा-लने के लिए घर मे कोई मनुष्य न हो, नौकर रखने और उनके

खाने की चीजें खरीदने या बनाकर रखने के लिए पैसा न हो और साथ ही उसके भाई-बहन बढ़ाने के मोह को रोकने की शक्ति भी न हो तो नतीजा क्या होगा ?—सिवा इसके कि खिलाया बच्चे को जहर और लिटा दिया उसे चीथड़ों पर ? ऐसे निःसत्व बालक न भूख को बरदाश्त कर सकते, न टट्टी को एक मिनट रोक सकते। खाना खाया कि उनके लिए रसोई-घर से बाहर निकलना भी मुश्किल हो जाता है। उनकी बुद्धि मंद होती है। शरीर काँटे का-सा होता है और आगे चलकर वे नीति और सदाचार मे भी दुर्बल होजाते है। अस्तु।

अफीम का प्रचार देश में बहुत बड़े पैमाने पर है। डॉ० मिस्त्री का कथन है कि हिन्दुओ मे फीसदी ९० और मुसलमानो में फीसदी ७० बच्चो को अफीम दी जाती है ।× खंभात के एक डॉक्टर का कथन है कि उनके प्रदेश मे आनेवाली अफीम मे से करीब-करीब तीसरा हिस्सा बच्चो मे खर्च होती है। मध्यप्रदेश की एक महिला डॉक्टर कहती है कि फीसदी ८० बच्चो को यहाँ अफीम दी जाती है।

इससे बच्चो पर जो दुष्परिणाम होते है उनपर हम विस्तृत रूप से आगे लिखेंगे।

× इसमें डॉ० मिस्त्री मे हम नम्रतापूर्वक अपना मत-भेद प्रकट करते है। हमने भी समाज का कुछ अवलोकन किया है। उसके आधार पर हमे श्रीमती मिस्त्री का कथन सारे समाज के लिए अत्युक्तिपूर्ण प्रतीत होता है। सम्भव है बम्बई और अहमदाबाद की मज़दूर जनता मे उनका कथन सम्बन्ध रखता हो।

अफीम का दूसरा उपयोग किया जाता है थकावट या जाड़े को मिटाने के लिए। इसे आधा डॉक्टरी उपयोग कहा जा सकता है।

उपर्युक्त कौन्सिल मे जिन-जिन डॉक्टरो की राये आई हैं वे सब इस कारण को सरासर झूठा और बनावटी बताते है। कलकत्ता के डॉ॰ म्योर का कथन है कि ऐसे मामलो मे मनुष्य को शुरू से ही किसी मर्ज की शिकायत होती है और वह थकावट को दूर करने के लिए नही, बल्कि इस डर से अफीम लेता है कि कही थकावट के समय मे अथवा जाड़े के समय वह मर्ज ज्यादा जोर न पकड़ ले। कुछ डॉक्टरो का कथन है कि यह केवल थोथा कारण है। अफीम का इस्तेमाल करनेवालो की अपेक्षा उन लोगो पर थकावट का या जाड़े का कोई अधिक बुरा असर नही पाया गया जो अफ़ीम नही खाते। कुछ लोग तो महज लज्जा के कारण कोई न कोई कारण ढूँढ़कर बता देते है। वास्तव मे उन्हे अफीम खाने की आदत ही होती है।

कहा जाता है कि खांसी, दमा, क्षय, झाड़ा, मधुमेह, प्लीहा के रोग, रक्तार्श, संधिवात, फसली बुखार इत्यादि रोगो पर अफीम का दवा के समान उपयोग होता है। इसका कारण यही है कि जनसाधारण को डॉक्टर की सहायता नही मिल सकती। क्योकि वह बहुत महँगी पड़ती है। जनता मे अफ़ीम कई रोगो के लिए भूल से एक अक्सीर दवा भी समझी जाती है। इसलिए इस गलत सामाजिक धारणा तथा मित्रो की सलाह के कारण ऐसे लोग भी अफ़ीम का उपयोग करने लग जाते हैं, जो डॉक्टरी इलाज से फ़ायदा उठा सकते हैं।

परिणाम

अफीम के सेवन के परिणामो को दिखाते हुए श्रीयुत् विलियम पैटन लिखते है कि बच्चो पर अफीम का इस तरह परिणाम होता है:—

(१) मालूम होता है कि मर्ज थोड़ी देर के लिए कम हो गया। किन्तु कुछ समय बाद वह और भी अधिक भीषण रूप मे दिखाई देता है। एक रोग मे कई दूसरे रोग भी मिल जाते है— बच्चे को मंदाग्नि हो जाती है। अफीम खानेवाले बच्चे अक्सर कम खाने वाले होते है।

(२) बदन का खून सूख जाता है। बच्चे की बढ़ती रुक जाती है। दिमाग़ कमजोर हो जाता है। मध्यप्रदेश के एक डाक्टर का कथन है कि हमारे प्रान्त के पिछड़ने का खास कारण बच्चो मे यह अफीम की आदत ही जान पड़ती है। एक शिक्षिका दावे के साथ कहती हैं कि मै स्कूल मे बच्चो की एकाग्रता-शक्ति के अभाव को देखकर बिना पूछे बता सकती हूँ कि किस बच्चे को अफीम दी गई थी।

(३) बच्चे निःसत्व हो जाते है। रोगो के बहुत जल्दी शिकार होने लग जाते हैं। दवाओ का उनपर ठीक तरह से असर नहीं होता। और बड़ी देर मे बीमारी से उठते है।

माता-पिताओ को चाहिए कि वे अपने बच्चो के कल्याण के खयाल से उन्हे (१) अफीम देना बन्द कर दे और खुद भी संयम-पूर्वक रहने लग जावे। जिससे मौजूदा बच्चो के सामने अच्छी मिसाल बनी रहे; न अधिक बच्चे पैदा हो, न उनको सम्हालना भारी पड़े और न उन्हे अफीम देनी पड़े। (२) डॉ० मिस्त्री सूचित

करती हैं कि जिन बहनों को अपने बच्चों को घर पर छोड़कर खेत में या मिल में काम करने के लिए जाना पड़ता है उनके बच्चों के लिए हर एक स्थान या गाँव में एक धात्री-गृह होना चाहिए। वहाँ माताएँ बच्चों को छोड़कर अपने काम पर जावें। यह सूचना भी अच्छी है। उपर्युक्त दो सूचनाओं में से जिनके लिए जो व्यवहार्य हो उसपर वे अमल करें। परन्तु, यदि भारत में ऐसे धात्री-गृह हो सकते हों तो भी बच्चों की फौज की फौज पैदा करके धात्री-गृह में उन्हें छोड़ने के बजाय संयमपूर्वक रहना अधिक श्रेयस्कर है। जो हो पर किसी प्रकार वे अपने बच्चों को इस भयंकर विष से जितनी जल्दी हो सके बचावें।

जो थकावट और जाड़े से बचने के लिए अफीम का व्यवहार करते हैं उन्हें अफीम खाने की आदत हो जाती है। कुछ लोग ऐसे जरूर होते हैं जो इस आदत के वश नहीं हैं। पर साधारणतया लोगों का यही अनुभव है कि उससे बचना बहुत मुश्किल है। इसलिए अच्छा यही है कि समझदार आदमी अफीम के फेर में न पड़े। अपनी थकावट या जाड़े को भगाने के लिए वे किसी दूसरे ऐसे साधन का उपयोग करें जो सचमुच फ़ायदेमन्द हो।

ऊपर कहा जा चुका है कि अफीम दवा के बतौर भी खाई जाती है। जैसा कि श्रीयुत पैटन ने लिखा है, उसमें एक बात बड़ी मार्के की है और उसपर ध्यान देना बहुत जरूरी है। इस तरह के उपयोग के फीसदी ९० उदाहरणों की जड़ में एक भारी ग़लती पाई जाती है। बेशक अफीम दर्द को मिटा देती है। और एक अपढ़ आदमी के लिए तो दर्द ही बीमारी है। इसी-

लिए कितने ही लोग अफीम को कई रोगों पर रामबाण दवा समझते है।

पर वास्तव मे दर्द का मिटना और बीमारी का हटना दो जुदी-जुदी बाते है। बात यह है कि अफ़ीम बीमारी को कभी नहीं मिटाती। वह तो सिर्फ दर्द को रोक कर बीमारी के असली लक्षणो को ढॅक देती है। वह एक विष है और विष दर्द करनेवाले हिस्से के जीवाणुओ को मूर्च्छित कर देता है। इसका नतीजा यह होता है कि आदमी अपनी बीमारी का ठीक-ठीक इलाज भी नहीं कर पाता। कलकत्ता के डा० म्योर लिखते हैं कि "एक मामूली देहाती मे इतनी बुद्धि नहीं होती कि वह जाकर डॉक्टर से अपने मर्ज का इलाज करा ले। उसे तो डॉक्टर के इलाज की अपेक्षा अफीम की ख़ुराक ही ज्यादा फायदेमंद मालूम होती है। वह तो तात्कालिक फ़ायदा देखता है। आगे की राम जाने। नतीजा यह होता है कि अफीम से रोग के चिन्ह दब जाते है। पर अफीम का विषैला प्रभाव दूर होते ही फिर वही लक्षण और भी भीषण रूप मे दिखाई देते हैं। मामला बिगड़ने पर मेरे पास ऐसे कई लोग आते रहते हैं। पर तब उनका इलाज करना बड़ा कठिन होता है। यद्यपि शुरू-शुरू में मामूली इलाज से भी काम चल जाता है।"

यह देहातियो के अज्ञान का परिणाम तो होगा ही। परन्तु हमे इसका कारण भारत की भीषण दरिद्रता मालूम होती है। साधारणतया मध्यम वर्ग के लोगों के पास भी डाक्टर की फीस देने को पैसे नहीं होते। बेचारे ग़रीब किसान और मजूर तो फिर इतने पैसे कहाँ से लावे ?

श्रीयुत पैटन लिखते है कि नियमित तौर से अफीम का व्यवहार करने पर नीचे लिखी बीमारियाँ मनुष्य को हो जाती हैं—

१ कब्जा,	८ आलस्य और निद्रालुता, चित्तभ्रम
२ रक्त की न्यूनता,	९ Halucintein
३ मंदाग्नि,	१० नैतिक भावना का बोदा होना
४ हृदय, फेफड़े और	११ काम का भार आ पड़ने पर
५ गुर्दा के रोग	चीं बोल देना
६ स्नायुजन्य कमजोरी,	१२ साधारण नैतिक अविश्वास
७ फुर्तीलेपन का अभाव,	१३ मृत्यु

अफीमची के दिमाग़ पर भी उसका असर तो पड़ता ही है। डॉक्टर म्योर की राय हम ऊपर लिख ही चुके है। अपने-अपने प्रान्त के प्रसिद्ध अफीमचियो की कथाएँ प्राय प्रत्येक प्रान्त के लोग जानते ही हैं। कथाएँ अनेक हैं, स्थानाभाव के कारण हम उन्हे नहीं लिख सकते। इसलिए अफीम के विशेष गुण-अवगुण जानने के लिए तो पाठक उन अफीमचियो का ही अध्ययन करे तो उन्हे बहुत-सी शिक्षा प्राप्त होगी।

यह कथन ग़लत है कि अफीम की आदत कभी छूट ही नहीं सकती। हॉ, जिनकी आदते बहुत मजबूत है, उन्हे ज़रा देर लगेगी। पर वे भी छूट तो जरूर सकती है। इसके उदाहरण जेलो मे बहुत मिलते हैं। कई क़ैदियो की अफीम खाने की आदते छूट गई हैं और वे स्वस्थ, नीति-शील और बुद्धिशाली हो गये हैं।

भारत मे अफीम बहुत बड़े पैमाने पर नहीं पी जाती है। कहीं-कहीं राजपूताना मे और कच्छ मे यह पाया जाता है। कल-

कत्ता में बसनेवाले कुछ चीनी इस तरह अफीम पीते है। कहीं-कहीं साधू-वैरागियो तथा गरीब मुसलमानो मे भी इसके प्रचलित होने की बात कही जाती है। अफीम का धुआँ सेवन करने की मुमानियत १९११ मे ही कर दी गई है। और पीने योग्य अफीम का बेचना भी तभी से बन्द कर दिया गया है। पर पीनेवाले तो घर पर भी ऐसी अफीम बना लेते हैं। जबतक अफीम उन्हे मिलती रहेगी इसका छूटना प्रायः असम्भव है।

कलकत्ता की नैशनल क्रिश्चियन कौन्सिल ने इस बात पर भी डाक्टर की राय ली कि अफीम खाने और उसका धुआँ पीने मे क्या फर्क है। ×उनमे से प्रायः सभी ने अफीम पीने को महा-भयंकर व्यसन बतलाया। अफीम खानेवाले की अपेक्षा अफीम पीनेवाले का शरीर अधिक दुर्बल होता है। उसके दिमाग़ पर भी ज्यादा बुरा असर पड़ता है। परन्तु कई डाक्टर अफीम खाने को अधिक भयंकर बताते हैं। क्योंकि पीने में तो उसका सत्त्व जल जाता है, कुछ धुँए के रूप मे भीतर जाने पर भी फौरन निकल जाता है। यद्यपि अफीम खाने के दुष्परिणाम इतने स्पष्ट न दिखाई दे, पर उसमे सारी अफीम शरीर के अन्दर रह जाती और वह निस्सन्देह अपना बुरा प्रभाव शरीर पर डालती रहती है। जो हो इसमे तो कोई सन्देह नहीं कि अफीम खाना और पीना दोनो बुरे हैं।

श्रीयुत गोविट अपनी पुस्तक ("The Survey on two Opium Conferences of Geneva") मे लिखते है—

"औषधि और वैज्ञानिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए फी आदमी नीचे लिखे अनुसार नशीली चीजो की जरूरत होती है:-

× आगे लखनऊ की 'ओपियमडेन' का वर्णन पढ़िए।

प्रतिवर्ष अफीम ४५० मिलिग्राम (करीब-करीब ७ चावल के बराबर)
कोकेन ७॥ मिलिग्राम

यदि हम मानले कि संसार की १, ७४,००,००,००० जन-संख्या में से ७४४०००००० मनुष्यों को पश्चिमी ढंग के अनुसार शिक्षा पाये हुए डाक्टरों का इलाज नसीब हो सकता है, तो सारे संसार के लिए नीचे लिखे अनुसार औषधि के लिए मादकद्रव्यों की जरूरत होगी।

अफीम १०० टन (स्थूल मान से एक टन २८ मन का होता है)
मार्फाइन १२६ ,,
कोडाइन ८४ ,,
हिराइन १५ ,,
कोकेन १२ ,,

———

३४७

परन्तु संसार में उपर्युक्त द्रव्यों की उत्पत्ति ८६०० टन की जाती है। कोकेन की उत्पत्ति किसी प्रकार १०० टन से कम नहीं होती होगी।

शेष नशीली चीजों का क्या होता है? निश्चय ही उनका अनावश्यक और हानिकर उपयोग हो रहा है।

खेती का व्यवसाय करनेवाली जनता जिन प्रान्तों में घनी है वहाँ अफीम का प्रचार उतना नहीं है। परन्तु जिन प्रान्तों में पश्चिमी ढंग के कल-कारखाने ज्यादा हैं वहाँ अफीम की खपत ज्यादा है। हम ऊपर देख चुके हैं कि अफीम की खपत ऐसे स्थानों में भी अधिक है जहाँ चीनी अथवा रूसी लोगों की बस्ती

ज्यादा है। आसाम के कुछ ज़िलों में फी १०००० अफीम की खपत २३७ सेर तक बढ़ जाती है। उसी प्रकार बम्बई की एक शिशु-प्रदर्शिनी में लेडी विलसन ने कहा था कि बम्बई की फी सैकड़ा ९८ माताएँ काम पर जाने से पहले अपने बच्चों को अफीम खिलाकर जाती हैं। पाठक देखेंगे कि पश्चिम के कल-कारखानो की बदौलत जिन शहरो का विकास हुआ है उनमें अफीम की खपत बहुत ज्यादा बढ़ी हुई है। भारत के कुछ खास-खास शहरों में फी १०००० आदमी अफीम की खपत नीचे लिखे अनुसार (सेरो मे) पाई गई:—

शहर	अफीम सेरो में	शहर	अफीम सेरो मे
कलकत्ता	१४४	बम्बई	४३
रंगून	१०८	भड़ौच	५१
फिरोजपुर	६०	सोलापुर	३५
लुधियाना	४९	कराची	४६
लाहोर	४०	हैदराबाद (सिध)	५२
अमृतसर	२८	मदरास	२६
कानपुर	२९	कटक	९५
अहमदाबाद	४२	बालासोर	५६

तमाखू के असाधारण प्रचार ने अफीम को पीछे हटा दिया है। परन्तु अब भी वह हमारे देश मे किस भीषण रूप मे फैली हुई है यह उपर्युक्त अंको से मालूम हो सकता है। अफीम की भयंकरता और इसके इस प्रचार को देखते हुए भारतीयो को सावधान हो जाना चाहिए। बल्कि हम तो जोरो से इस बात की

सिफारिश करेंगे कि सर्वसाधारण के लिए इसकी कानूनन बन्दी हो जाना ही सर्वोत्तम मार्ग है।

सम्भव है कि इस तरह अफीम की बन्दी करने से उन लोगो को कुछ कष्ट होगा जो उसके अधीन हो गये हैं। हमारी समझ मे ऐसे लोगो के भी कुछ वर्ग कर दिये जायें। अफीम के अत्यंत पुराने सेवको को जो चालीस या पचास वर्ष के ऊपर हो थोड़ी मात्रा मे अफीम दी जाय। दूसरे वर्ग को, जो उतना पुराना सेवक नही है, निश्चित समय के अन्दर अपनी आदत को छोड़ने की सूचना दे दी जाय और उतने समय के भीतर तक अफीम कम करते-करते उसे यह भयंकर आदत छोड़ने पर मजबूर किया जाय। निश्चित समय खतम होते ही उसे अफीम देना बन्द कर देना चाहिए। और तीसरे वर्ग को जो नया है अफीम देने से एक दम इन्कार कर दिया जाय। शेष सब लोगो को जिन्हे दवा के लिए अफीम की जरूरत हो सिर्फ डाक्टर या प्रतिष्ठित वैद्य की आज्ञा मिलने पर ही वह दी जाय अन्यथा नही। अफीम लेने वालो के नाम रजिस्टर मे दर्ज हो, और उनमे कभी नवीन लोगो को शामिल न किया जाय। बच्चो को अफीम देना भी एकाएक बन्द हो जाना नितान्त आवश्यक है।

[३]

मित्र-द्रोह

अथवा

हमारे लज्जाजनक इतिहास का एक पृष्ठ

"The Curse of opium in some ways is more deadly to the Soul of India than intoxicants, because it has its effects chiefly on a neighbouring and friendly people—the Chinese. It is thus at-once more cruel and more selfish than the curse of drink"

C F. Andrews.

पिछले अध्याय से पाठको को कुछ-कुछ ख्याल हो गया होगा कि हमारे देश मे अफीम का कितना प्रचार है। परन्तु हमारा पाप यहीं समाप्त नहीं होता। गुलाम देश को शासक अपने पापो मे भी शरीक करते है। दूसरे देशो की स्वाधीनता का हरण करने के लिए केवल भारत के सिपाहियो का ही उपयोग नहीं किया जा रहा है। वल्कि भारत की अफीम का भी इस काम के लिए उपयोग करने मे हमारे शासको को संकोच नहीं हुआ। चीन-जैसे एक शान्तिप्रिय राष्ट्र को अफीमची बनाकर भारत-सरकार ने दो पाप किये और हमे उनमे शरीक होने के लिए मजबूर किया। एक तो यह कि चीन अफीमची हो जाय तो उसको जीतने और भारत की तरह निगल जाने मे सुविधा हो, दूसरे यह कि अफीम

की बिक्री से जो धन मिले उसकी सहायता से फौजे रखकर स्वयं भारत को भी पराधीन बनाकर रक्खा जाय। भारत के इतिहास मे अफीम का व्यापार एक बहुत बड़ा कलंक है। आज भी यदि संसार का लोकमत इस घृणित व्यापार के इतने जोरो से विपक्ष मे न होता तो सरकार अपना व्यापार शायद ही रोकती। अब भी कहां रोका है? पाठक आगे पढ़ेगे कि इस समय भी धन कमाने की गरज से कितनी अफीम बाहर भेजी जाती है।

भारतभक्त ऐण्ड्र्यूज अपनी पुस्तक (The Drink and Opium Evil) मे लिखते हैं—

"अफीम की बुराई भारत की आत्मा के लिए कुछ अंशो मे मादक द्रव्यो की अपेक्षा भी अधिक भयंकर है। क्योंकि उसका परिणाम खासकर हमारे पड़ोसी और मित्र राष्ट्र चीन पर पड़ रहा है। इसलिए यह शराब की बुराई की अपेचा अधिक दुष्ट और स्वार्थी है।"

आगे चलकर एण्ड्र्यूज साहब एक पुस्तक से भारत सरकार की चीन-सम्बन्धी अफीम की नीति पर यह उद्धरण देते हैं—

"भारत और चीन के बीच अफीम के व्यापार का जो अन्यायपूर्ण और दुष्ट एकाधिकार (Monopoly) स्थापित किया गया था उसका उद्देश केवल धन जोड़ना ही था।

"यह बात किसी से छिपी हुई नहीं थी कि चीन के लिए अफीम पीना हर तरह से एक शाप था। अफीम की आदत धीरे-धीरे मनुष्य के शरीर और आत्मा को भी खा जाती है। जिन जिलो मे अफीम पीने की आदत है, वहाँ का सारा पुरुषवर्ग

निकम्मा हो जाता है। उससे कोई मेहनत का काम नहीं होता। वह धीरे-धीरे व्यभिचारी होता है और अंत मे निराश जीवन व्यतीत करते हुए यम-लोक को सिधारता है। पर इससे अंग्रेज व्यापारी, पूंजी-पति और राजपुरुषो को क्या ? यहाँ तो थोड़ी पूंजी पर बेहद पैसा कमाने का आसान तरीका हाथ लग गयाथा। अफीम के एकाधिकार से भारत के कोष को भी सहायता मिल जाती थी इसलिए अफीम अच्छा व्यापार बन गया।"

पाठक ज़रा दिलथाम कर इस करुण-कहानी को पढ़ें और देखें कि किस शास्त्रीय ढंग से चीन को भारत की अफीम की चाट लगाकर हमें उस पाप मे शरीक किया गया।

हम पहले लिख चुके हैं कि मुग़ल-साम्राज्य के स्थापन-काल से ही भारत मे अफीम की खेती होती थी और यहाँ के लोग उसका व्यवहार भी करते थे। पूर्व के देशो मे भी अफीम का व्यवहार कम-अधिक मात्रा मे होता ही था। और भारत का उनसे व्यापारी सम्बन्ध प्राचीन काल से चला आया है। भारत से चीन को भी अफीम जाती थी। हमे यह कबूल करना पड़ेगा कि अफीम की बुराइयाँ एशिया के लोगो से छिपी नहीं थीं। परन्तु जबतक पश्चिम के साहसी देशो ने पूर्व मे अपने व्यापार का जाल नहीं फैलाया, ये बुराइयां बड़े पैमाने पर नहीं फैली थीं। पहले-पहल ई० स० १५३७ मे पुर्तगीजो ने और बाद मे यूरोप के अन्य राष्ट्रो ने चीन से व्यापारी सम्बन्ध कायम किये और इस महान् बुराई को सुसंगठित रूप से बढ़ाने का प्रयत्न होने लगा। शनै-शनै. चीन मे यह बुराई जड़ पकड़ती गई। यहाँ तक कि ईसवी सन १७२९ मे चीन की सरकार को यह आज्ञा

जारी करनी पड़ी कि चीन में कोई अफीम के धुएँ का सेवन न करे। पर इसका कोई परिणाम नहीं हुआ, तब अन्त मे ई० स० १७९९ मे चीन-सरकार को दूसरी आज्ञा जारी करके अफीम की आयात को ही बन्द करना पड़ा। पर इसका भी कोई नतीजा नहीं निकला। अफीम का छिप-छिप कर चीन मे प्रवेश होता ही रहा।

१७२९ मे चीन मे केवल २०० पेटियाँ गई थीं, तहाँ सन् १८०० मे यह संख्या ४००० के लगभग बढ़ गई। इसका कारण अंगरेज व्यापारी ही थे। चीन अफीम का सबसे अच्छा बाजार था। और वहाँ भारत की अफीम भेजना जरूरी था। आखिर चीन के ही लिए तो भारत में अंग्रेजो के द्वारा अफीम की खेती इतने बड़े पैमाने पर हो रही थी और प्रतिवर्ष बढ़ाई जा रही थी। यहाँ पर यह कह देना जरूरी है कि यह सब अफीम ईस्ट-इण्डिया कम्पनी की अधीनता में ही तैयार नहीं होती थी। ईसवी सन् १७५८ मे बंगाल और बिहार को अपने अधीन करने पर ईस्ट-इंडिया कम्पनी ने अफीम की पैदायश पर अपना अधिकार कर लिया था। परन्तु अभी वैदेशिक व्यापार को उनने पूर्णतया अपने अधीन नहीं किया था। ईस्वी सन् १८३० के लगभग कलकत्ता मे कोई ४००० पेटियाँ नीलाम की गई थीं। चीन मे अफीम ले जानेवाले व्यापारियो की माग तो बढ़ती ही जा रही थी। शेष मांग को मालवा के देशी राज्य पूरी करते थे। अब कम्पनी का ध्यान इन देशी राज्यो की ओर गया। उन्नीसवीं सदी के आरम्भ मे मालवा के अफीम के व्यापार पर इसका प्रभाव पड़ने लग गया। अंग्रेजो ने इस बात की विशेष सावधानी

रक्खी कि मालवा की अफीम सीधी समुद्र तक पहुँचने ही न पावे। क्योंकि समुद्र किनारा तो उस समय अंग्रेजों के अधीन आ गया था। अलावा इसके ब्रिटिश प्रजा को तथा ब्रिटिश जहाजो को इस तरह की हिदायतें भी मिल गई थीं कि वे मालवा से अफीम-संबन्धी कोई व्यापार न करें। मालवा के देशी राज्य भी उस समय इस विषय मे कुछ नहीं कर सकते थे, क्योंकि उस समय वहाँ अशान्ति छाई हुई थी। अन्त में १८१८ मे मालवा के देशी राज्यों से कंपनी की सुलह हो गई। कंपनी को अपनी नीति जरा शिथिल कर देनी पड़ी। कंपनी सरकार ने मालवा के अफीम के व्यापार को अपने अधीन करने की गरज से वहाँ अफीम खरीदने के लिए अपने आदमी भी रक्खे। परन्तु देशी व्यापारियो की प्रतिस्पर्धा में वे टिक न सके। तब सरकार ने देशीराज्यो से अफीम की पैदायश को घटाने और भारत-सरकार के हाथ मे सारा वैदेशिक व्यापार सौप देने के लिए देशी नरेशो से कहा। परन्तु इससे देशी राज्य भारत-सरकार से और भी अधिक असंतुष्ट हो गये। अतः यह चाल भी व्यर्थ हुई। अन्त मे १८३० मे सरकार ने ट्रान्जिट ड्यूटी सिस्टम शुरू की। अर्थात् बंगाल की अफीम के भाव को विदेशी बाजारो मे बनाये रखने की गरज से उसने मालवा की अफीम पर कर लगा दिया। यह भी बन्दोबस्त कर दिया गया कि वह बिना कर दिये समुद्र तक न पहुँच सके तथा अंगरेजी प्रदेश मे वह किसी प्रकार छिप कर भी प्रवेश न पा सके।

साथ ही मालवा को अधिक फायदा न मिलने पावे इस गरज से कंपनी-सरकार ने बंगाल मे अफीम की खेती बढ़ाना

शुरू किया। शीघ्र ही वहाँ पहले की अपेक्षा दुगुनी बल्कि चौगुनी जमीन में अफीम की खेती होने लग गई।

इस प्रकार भारत मे अफीम के व्यापार को अपने हाथो में लेकर अंगरेज व्यापारियो ने छिप-छिपकर चीन में अफीम भेजना शुरू किया। परन्तु फिर भी कमजोर और शस्त्रसामर्थ्य न होने पर भी चीन ने इसका काफी विरोध किया। अंग्रेजो ने सन् १८३४ और १८३६ मे चीन से घनिष्ट राजनैतिक सम्बन्ध स्थापित करने की बात चलाई। परन्तु चीनी लोग इन युरोपियनो की नीति से एकदम अपरिचित नहीं थे। वे भारत, ब्रह्मा, जावा सुमात्रा आदि देशो की हालत देख चुके थे। उन्हे अपनी स्वाधीनता प्रिय थी। इसलिए वे जानते थे कि ऐसे मित्रो को दूर से ही नमस्कार करना भला है। फलत. चीन की सरकार ने ऐसे सम्बन्ध स्थापित करने से इन्कार कर दिया। इसका परिणाम अंग्रेजो के व्यापार पर भी पड़ा। ×कैंटन के किनारे पर सन १८३९ मे अंग्रेजी जहाजो पर २०,००० पेटियां पड़ी रह गई। चीन के बादशाह को भय था कि अगर अंगरेजो से यह अफीम छीनकर नष्ट न कर दी जायगी तो वे चुरा कर उसे चीन के लोगो मे बेच देगे। अतः उसने अपने लिन नामक एक अधिकारी को आज्ञा दी कि वह अंगरेजो से यह अफीम छीनकर उसे नष्ट कर दे। लिन ने यही किया।

× इससे पहले भारत से चीन को अफीम का निकास [illegible] था।

१७९० मे ४००० पेटियो
१८२० मे ५००० ,,
१८३० मे १६८७७ ,,
१८३८ मे २०६१९ ,,

चीन ने जो कुछ किया था उचित था। उसने अपने आपको इस विष से बचाने के लिए अपने दरवाजे पर खड़े हुए विष बेचनेवाले से विष छीनकर नष्ट कर दिया। अंगरेजो को चीन पर अपनी अफीम जबरदस्ती लादने का कोई अधिकार नहीं था। पर धन का लोभ बड़ी बुरी चीज होती है। उसने अंग्रेजो को इसी बहाने चीन से युद्ध-घोषणा करने को मजबूर कर दिया। अंगरेजो के जंगी जहाज आये और एक के बाद एक चीन के बंदरगाह लेने लगे। यांगत्सी नदी के मुहाने से होकर वे चीन के अंदर घुस गये और ग्रेड कनाल की राह से जो शाही खजाना पेकिंग को जा रहा था उसे छीन लिया। बेचारे चीन की हड्डी-पसली ढीली हो गई। उसे लाचार हो १८४२ मे सुलह करनी पड़ी। और अपने अपराध (?) के दण्ड-स्वरूप ब्रिटेन को हांग-कांग अर्पण करना पड़ा और ऊपर से दक्षिणा-स्वरूप २१ मिलियन डालर अर्थात कोई सवा छः करोड़ रुपये देने पड़े। इसके अतिरिक्त कैंटन अमॉय, फूचू, निगपो और शंघाई नामक बन्दरगाहो को "ट्रीटी पोर्ट्स" के बतौर अफीम के व्यापार के लिए खोल देना पड़े। यहाँ पर यह कह देना अनुचित न होगा कि *इस युद्ध का खर्चा भारत से ही लिया गया।*

ब्रिटिश सरकार ने इस बार बड़ी कोशिश की कि अफीम का व्यापार चीन की सरकार द्वारा क़ानूनी करार दे दिया जाय। लार्ड पामर्सटन ने ब्रिटिश प्रतिनिधि को लिखा था कि "छिपकर चीन में अफीम लेने वाले के प्रलोभन को तोड़ देने की गरज से वह चीन की सरकार से मिलकर चीन में अफीम की आयात पर कानूनी मंजूरी ले ले। परवा नहीं अगर चीन उसपर थोड़ा कर

भी लगा दे।" परन्तु चीन के सम्राट तो इसके बहुत ही खिलाफ थे। चीन के कमिश्नरो को उनसे इस विषय मे बातचीत करने की हिम्मत भी नहीं हुई। उन्होंने अंग्रेजों की बात को नीचे लिखे गोलमोल शब्दो मे कबूल कर लिया। चीन न तो इस बात की तहकीकात करेगा और न कानूनी कार्रवाई करेगा कि भिन्न-भिन्न देशो के जहाज अफीम लाते है या नहीं" (ओपियम कमिशन पृ० २११)

खैर, पंद्रह वर्ष तक व्यापार बराबर बढ़ता रहा। बीचबीच मे चीन अफीम का प्रतीकार कर ही रहा था। १८५८ मे भारत से चीन के लिए ७०,००० पेटियो का निकास हुआ पर ब्रिटिश-सरकार को केवल इतने से संतोष नहीं था। वह अफीम को एक बार में कानूनी वस्तु बना देने के लिए बड़ी उत्सुक थी। लॉर्ड क्लेरेण्डन ने लॉर्ड एलिगन (वाइसराय) को लिखा कि "इस तरह अव्यवस्थित रूप से व्यापार चलाने की अपेक्षा अफीम पर कुछ कर मंजूर करके उसे कानून के आधार पर मजबूत बना देना अधिक अच्छा होगा। इससे होनेवाले फायदे स्पष्ट हैं।"

शीघ्र ही दूसरी बार युद्ध छेड़ने के लिए भी कारण मिल गया। इस बार भी अभागा चीन सशस्त्र ब्रिटिशो के मुकाबले मे न टिक सका। ब्रिटेन और उसकी अफीम की विजय हुई। और ६०,००,००० डॉलर का दण्ड दे कर ब्रिटेन के लिए चीन को पांच अधिक ट्रीटी पोर्ट खुले करने पड़े। सुलह १८५८ के जून महीने मे टिएन्टसिन मे हुई। पर उसमे अफीम से प्रत्यक्ष संबन्ध रखनेवाली कोई बात नहीं थी। हां, चीन के करो मे संशोधन करने की बात जरूर तय हो गई थी। बाद मे इसी वर्ष के नवम्बर

चीन ने जो कुछ किया था उचित था। उसने अपने आपको इस विप से बचाने के लिए अपने दरवाजे पर खड़े हुए विष बेचनेवाले से विप छीनकर नष्ट कर दिया। अंगरेजो को चीन पर अपनी अफीम जबरदस्ती लादने का कोई अधिकार नहीं था। पर धन का लोभ बड़ी बुरी चीज होती है। उसने अंग्रेजो को इसी बहाने चीन से युद्ध-घोषणा करने को मजबूर कर दिया। अंगरेजो के जंगी जहाज आये और एक के बाद एक चीन के बंदरगाह लेने लगे। यांगत्सी नदी के मुहाने से होकर वे चीन के अंदर घुस गये और ग्रेंड कनाल की राह से जो शाही खजाना पेकिंग को जा रहा था उसे छीन लिया। बेचारे चीन की हड्डी-पसली ढीली हो गई। उसे लाचार हो १८४२ में सुलह करनी पड़ी। और अपने अपराध (?) के दण्ड-स्वरूप ब्रिटेन को हांग-कांग अर्पण करना पड़ा और ऊपर से दक्षिणा-स्वरूप २१ मिलियन डालर अर्थात कोई सवा छः करोड़ रुपये देने पड़े। इसके अतिरिक्त कैंटन अमॉय, फूचू, निगपो और शंघाई नामक बन्दरगाहो को "ट्रीटी पोर्ट्स" के बतौर अफीम के व्यापार के लिए खोल देना पड़े। यहाँ पर यह कह देना अनुचित न होगा कि *इस युद्ध का खर्चा भारत से ही लिया गया।*

ब्रिटिश सरकार ने इस बार बड़ी कोशिश की कि अफीम का व्यापार चीन की सरकार द्वारा क़ानूनी करार दे दिया जाय। लार्ड पामर्सटन ने ब्रिटिश प्रतिनिधि को लिखा था कि "छिपकर चीन मे अफीम लेने वाले के प्रलोभन को तोड़ देने की गरज से वह चीन की सरकार से मिलकर चीन मे अफीम की आयात पर कानूनी मंजूरी ले ले। परवा नहीं अगर चीन उसपर थोड़ा कर

भी लगा दे।" परन्तु चीन के सम्राट तो इसके बहुत ही खिलाफ थे। चीन के कमिश्नरो को उनसे इस विषय मे बातचीत करने की हिम्मत भी नही हुई। उन्होने अंग्रेजो की बात को नीचे लिखे गोलमोल शब्दो मे कबूल कर लिया। चीन न तो इस बात की तहकीकात करेगा और न कानूनी कार्रवाई करेगा कि भिन्न-भिन्न देशो के जहाज अफीम लाते है या नही" (ओपियम कमिशन पृ० २११)

खैर, पंद्रह वर्ष तक व्यापार बराबर बढ़ता रहा। बीचबीच मे चीन अफीम का प्रतीकार कर ही रहा था। १८५८ मे भारत से चीन के लिए ७०,००० पेटियों का निकास हुआ पर ब्रिटिश-सरकार को केवल इतने से संतोष नही था। वह अफीम को एक बार में कानूनी वस्तु बना देने के लिए बड़ी उत्सुक थी। लॉर्ड क्लेरेण्डन ने लॉर्ड एल्गिन (वाइसराय) को लिखा कि "इस तरह अन्यवस्थित रूप से व्यापार चलाने की अपेक्षा अफीम पर कुछ कर मंजूर करके उसे कानून के आधार पर मजबूत बना देना अधिक अच्छा होगा। इससे होनेवाले फायदे स्पष्ट हैं।"

शीघ्र ही दूसरी बार युद्ध छेड़ने के लिए भी कारण मिल गया। इस बार भी अभागा चीन सशस्त्र ब्रिटिशो के मुकाबले मे न टिक सका। ब्रिटेन और उसकी अफीम की विजय हुई। और ६०,००,००० डॉलर का दण्ड दे कर ब्रिटेन के लिए चीन को पांच अधिक ट्रीटी पोर्ट खुले करने पड़े। सुलह १८५८ के जून महीने मे टिएन्टसिन मे हुई। पर उसमे अफीम से प्रत्यक्ष संबन्ध रखनेवाली कोई बात नही थी। हां, चीन के करो मे संशोधन करने की बात जरूर तय हो गई थी। बाद मे इसी वर्ष के नवम्बर

महीने मे दोनो सरकारो के बीच यह तय हो गया कि प्रत्येक पेटो पर प्रतिशत पॉच के हिसाब से कर लिया जाय। इस तरह अन्त में अङ्गरेजो ने पशुबल की सहायता से चीन मे अफीम के प्रवेश को कानूनी रूप दिलवा ही दिया। पर इसमे भी चीन ने एक शर्त अपनी ओर से रख दी। शर्त यही थी कि बंदरगाह पर अफीम आनेपर वह देश मे चीनियो द्वारा ही लाई जाय। चीनियो का उद्देश यह था कि देश के भीतर यह व्यापार विदेशियो के हाथो मे न जाने पावे। बल्कि पूरी तरह चीनियो के अधीन रहे। इस समय चीन में भारत से जानेवाली अफीम की पेटियों की संख्या ७०००० तक बढ़ गई थी। वह १८३० तक ४०२० थी।

इस तरह जब चीन ने देखा कि व्यसन किसी प्रकार रुकता नही है तब उसने बजाय इसके कि यहाँ का पैसा विदेशो मे जाय, अपने यहॉ ही अफीम की खेती शुरू कर दी। विशाल प्रदेश इसके लिए खुले कर दिये गये। जहां अच्छे-अच्छे पोषक नाज बोये जाते, वहॉ विष के पौधे लहराने लगे। परन्तु फिर भी वे भारत की अफीम को न रोक सके। चीन की अफीम यहॉ के जैसी अच्छी न थी। हॉ, इससे एक फायदा हुआ। लोगो को दो प्रकार का विष मिलने लगा। सस्ता और महंगा, और सभी अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार सस्ता या महॅगा विष खाने लगे।

१८५८ मे भारत मे कम्पनी के हाथो से सरकार ने अपने हाथो में शासन-सूत्र ले लिये। और उसके साथ-साथ अफीम के व्यापार को भी।

ई०स० १८६८ मे करो का संशोधन करने के लिए फिर बात-चीत छिड़ी। चीन के अधिकारियो ने इस बात पर बड़ा जोर

दिया कि भारत से अफीम का निकास बन्द करके अफीम के व्यापार का अन्त कर दिया जाय। पर यह तो कुछ नहीं हुआ। इसके बदले उन्हें कह दिया गया कि आप अपने कर बढ़ा सकते हैं। १८७६ में फिर चेफू कन्वेंशन की बैठक हुई। उसने तत्कालीन परिस्थिति को और भी मजबूत कर दिया। और चीन में अफीम का कर इकट्ठा करने की पद्धति का संशोधन करके उसे अधिक सुसंगठित बना दिया। पर इसे मंजूर होने में बड़ी देर लगी। १८८५ में उसमें एक और बात जोड़ दी गई। अबतक आयात-कर के अतिरिक्त देश के भीतर अफीम पर कई कर लगाये गये थे। अब की बार उन सबको मिलाकर प्रत्येक पेटी पर ११० टेल्स कर लगा दिया गया। अब ब्रिटिश सरकार एक तरह से निश्चिन्त हो गई। उसने अपने संगीन की नोक को भी चीन पर से हटा दिया। और सन् १८९१ में अप्रैल की १० वीं तारीख को वैदेशिक मंत्री (Foreign Secretary) ने इंगलैंड की सधारण सभा में बादशाह की ओर से यह जाहिर कर दिया कि अब चीनी जब चाहे एक साल की सूचना देकर सुलह का अन्त कर सकते हैं। यदि वे अपनी रक्षा करना चाहें तो वे विदेशी अफीम की बन्दी भी कर सकते हैं। मैं यह भी कह देता हूँ कि यदि चीन-सरकार कर को यहाँ तक बढ़ा दे कि विदेशी अफीम का चीन में जाना असंभव हो जाय अथवा उसके प्रवेश को ही रोक दे, तो यह देश चीन को अपनी भारतीय अफीम लेने पर मजबूर करने के लिए एक भी सिपाही की जान न खोएगा और न एक पौंड बारूद ही जलाएगा।" जलावे भी

क्यों ! अफीम अब स्वाश्रयी हो गई थी। उसे अंगरेज संगीन की सहायता की जरूरत नहीं रही।

पर अबतक चीन और भारत-सरकार के बीच अफीम-सम्बन्धी प्रश्न पर जो नरम-गरम बातें और झगड़े हो रहे थे, उनसे ब्रिटिश जनता एक दम अपरिचित नहीं थी। वल्कि उसमे से कई सच्चे हृदय के लोगो को इस बात पर बड़ा बुरा मालूम हुआ कि ब्रिटिश सरकार ने चीन पर जबरदस्ती अफीम लाद दी है। शीघ्र ही वहां अपनी सरकार की इन हरकतों को रोकने के लिए तथा जनता को सरकार के द्वारा किये जानेवाले अन्याय के प्रति जागृत करने के लिए अफीम के व्यापार को रोकनेवाली संस्था का जन्म हो गया। १८७४ के लगभग उसने अखबारों और पार्लमेएट मे अपना आन्दोलन शुरू कर दिया। १८८५ की सुलह मे सरकार ने जिस निराग्रही वृत्ति का परिचय दिया उसका कारण इस संस्था की हलचल ही थी। पर संस्था को इतने से सन्तोष नहीं हुआ। उसने चीन और भारत मे भी प्रचार शुरू किया। फलतः सरकार को १८९३ मे अफीम के प्रश्न की जॉच के लिए एक रायल कमिशन की स्थापना करनी पड़ी। भारत और चीन के बीच अफीम के व्यापार के सम्बन्ध में कमिशन ने यह राय दी। ×

(१) चीन मे अफीम की आयात के लिए चीन-सरकार की मंजूरी है।

(२) अफीम चीन पर जबरदस्ती नहीं लादी गई है। ‡

× भारत मे अफीम के प्रचार के विषय मे कमीशन ने जो राय दी उसके सम्बन्ध मे आगे चलकर यथास्थान लिखा जायगा।

‡ झूठ की भी कोई हद है !

(३) आज अगर चीन से अफीम का व्यापार भारत न भी करे तो उससे चीन मे अफीम का व्यवहार कम न होगा।

(४) बल्कि इस तरह व्यापार बन्द करना *भारत के किसानों के साथ अन्याय करना है, जो अफीम की खेती करते है।*X

(५) अफीम से मिलनेवाली यह आय बन्द करने से सरकार को घाटा होगा। इस घटी की पूर्ति करना अत्यन्त कठिन है।

(६) भारत के लोगो पर अगर कर बढ़ाने की बात कही जायगी तो वे उसे मंजूर नही करेगे।

(७) और इस कार्य से जो घटी होगी उसके साम्राज्य सरकार से पूरी होने की भी तो आशा नहीं है।

रॉयल कमिशन ने जो कारण-परम्परा दी है वह अनोखी है और उसकी असाधारण बुद्धि की सूचक है। श्री० सी० एन० वकील अपने फायनेंशियल डेवलेपमेंट आफ इण्डिया मे इसपर टीका करते हुए लिखते हैं—

"हम देख चुके है कि चीन की सरकार ने अफीम के प्रवेश को अपने प्रदेश में किस परिस्थिति मे मंजूरी दी है। हम यह भी बता चुके है कि रायल कमिशन का यह वचन कहाँ तक सत्य है कि ब्रिटिश सरकार ने चीन पर अफीम के मामले में कोई जबरदस्ती नही की। अपने व्यापार को जारी रखने के लिए पेश की गई तीसरी दलील बड़ी विचित्र है। कहा गया है कि यदि हम व्यापार बन्द कर देगे तो चीन या तो अफीम की खेती बढ़ा देगा या और कहीं से अफीम मँगाने लग जायगा। फिर हम ही क्यों न उसे अफीम दे? मतलब यह कि इस खयाल से कि अनंत

X भारत के किसानो के प्रति कैसा अगाढ प्रेम (?) है! धन्य है।

आत्मघात करने पर तुला हुआ है और मोहन-सोहन उसको विष देकर अवश्य मार डालेंगे फिर धनपत ही उसे विष देकर क्यों न दो पैसे सीधे कर ले ? बंगाल मे अफ़ीम की खेती करने वाले तो सरकार के आदमी थे। अगर वे अफीम के बदले नाज बोते तो उन अकाल के वर्षों मे निःसन्देह देश का फायदा होता। देशी राज्य भी तो सरकार के अधीन ही थे। यदि उनके सामने यह मानवोचित नीति रखी जाती तो सम्भव नहीं कि वे उसे मानने से इन्कार कर जाते। सच्ची बात तो यह है कि सरकार के सामने धन का सवाल ही जबरदस्त था। और इसके मानी यही है कि सरकार ने भारत के शासन-यंत्र को इतना क़ीमती बना दिया है कि उसको सुचारु-रूप से जारी रखने के लिए सरकार के लिए ऐसे नीति-हीन मार्गों से धन इकट्ठा करना आवश्यक हो गया है।"

रायल कमीशन को सिफारिशो को पूर्ण महत्व दिया गया। चीन से अफीम के व्यापार के सम्बन्ध में कुछ न किया गया। और वह महान् देश दिन-ब-दिन शैतान के जाल मे अधिकाधिक जकड़ता गया।

पर ईसवी सन् १९०६ मे एक ऐसी बात हो गई कि जिसकी किसी को कल्पना भी नहीं थी। और न होता था किसी को विश्वास। चीन की जनता ने अब की बार अफीम को क़तई छोड़ने का अटल प्रण कर लिया। चीन ने ब्रिटेन से सुलह की कि वह अपने देश मे प्रतिवर्ष १० हिस्सा अफीम की खेती कम करता जाय। और ब्रिटेन भी भारत से प्रति वर्ष अपने निकास का १० वाँ हिस्सा घटाता जाय। इस तरह १० वर्ष में चीन मे

अफीम की खेती और भारत की अफीम के व्यापार का भी एक साथ अन्त हो जाय। किसी को कल्पना न थी कि ऐसे प्रस्ताव का भी पालन हो सकता है। परन्तु परमात्मा की दया से दोनों ओर से इसका पालन करने की भरसक कोशिश हो रही थी। चीन तो हृदय से अफीम से छुटकारा चाहता था। और ब्रिटेन मे भी इस समय उसके अफीम के व्यापार के खिलाफ बड़ी खलबली मची हुई थी। ब्रिटिश-सरकार उसका नैतिक दृष्टि से कोई जवाब नहीं दे सकती थी। इस कारण उसे हेठी लेनी पड़ी। चीन का मार्ग सरल हो गया। यदि एक बात न होती तो यह चीन की विजय अपूर्व होती। परन्तु एक देश-द्रोही आदमी की गलती ने सारे राष्ट्र के उत्साह और शुद्धि पर पानी फेर दिया। किस्सा यह है:—

इस समझौते का अन्तिम दिन १९१७ के अप्रैल मास की १ ली तारीख था। महीनों पहले से जाहिर कर दिया गया था कि उस दिन सारे देश मे उत्सव मनाया जाय। स्थान-स्थान पर बड़ी-बड़ी तैयारियाँ होने लगी। पर इधर विघ्न-कर्ताओ की मण्डली भी अपने काम में मशगूल थी। भारत और चीन के कृतघ्न स्वार्थी व्यापारी-मंडल इस बात के लिए तन-तोड़ मिहनत कर रहे थे कि इकरार की मीयाद नौ महीने और बढ़ा दी जाय। उनका कहना था कि 'हमारे पास अभी थोड़ी-सी अफीम पड़ी हुई है। तबतक हम इसे खतम कर देंगे।' "शंघाई ओपियम कम्बाइन" (उस मण्डल का नाम था) ने चीन में रहने वाले अंग्रेज अधिकारियो से अपील की, लंदन मे भी अपील की! पर ब्रिटिश-सरकार ने भी उनकी एक न सुनी। और इस कार्य के

लिए ब्रिटिश-सरकार चीन और भारत की जनता के धन्यवादो की पात्र है। बात यह थी कि यदि इस मीयाद को एक बार भी बढ़ा दिया जाता तो उसे फिर बार-बार बढ़ाने के लिए लोग अपीले करते रहते। अंत मे "शंघाई ओपियम-कम्बाइन" की दाल जब अपनी सरकार के पास न गली तब उसने दूसरे उपायों का अवलम्बन किया। उसने किसी प्रकार चीन के उपाध्यक्ष को अपने वश मे कर लिया। और उसके हाथ बची हुई ३००० पेटियाँ बेच दी। उपाध्यक्ष ने यह माल चीन की सरकार के नाम से खरीद लिया और व्यापारियो को २०,०००,००० डॉलर देने के लिए हुक्म दे दिया। यह घटना अप्रैल की पहली तारीख के कुछ सप्ताह पहले की है। जब इस लेन-देन की बात देश मे फैली तो सारा राष्ट्र मारे रोप के पागल हो गया। सारे देश मे विराट्-सभाएँ होने लगी। प्रत्येक शहर, क़स्बे और जिले के मुख्य स्थानों से तारो का तांता लग गया—'सौदे को रद कर दो'। अखबार पृष्ठ के पृष्ट रंगने लगे और पार्लमेण्ट ने कठोर शब्दो मे इस सौदे की निन्दा की। पर किसी अज्ञात कारण से सौदा रद नहीं किया जा सका।

सारे देश का उत्साह बात की बात मे निराशा मे परिणत हो गया। वह वीर प्रयत्न, दस साल का वह भगीरथ परिश्रम एक देशघातक, रिश्वतखोर अधिकारी की मूर्खता के कारण मिट्टी मे मिल गया। यह सत्य है कि कुछ महीने बाद यह सब अफ़ीम जिसकी कीमत छ. करोड़ रुपये के करीब थी, खुले आम जला दी गई। पर उस एक आदमी की गलती ने सारे राष्ट्र के आत्म-विश्वास पर ऐसा जोरो का प्रहार किया कि फिर वह उससे

उठ न सका। अब क्या है? आश्चर्य नहीं यदि चीन के निवासी फिर अफीम की खेती करने लग गये हो।

भारत से चीन को नीचे लिखे अनुसार अफीम उन दिनों मे जाती रही थी।

वर्ष	पेटियाँ
१७२९	२००
१७९०	४०००
१८२०	५०००
१८३०	१६८७७
१८३८	२०६१९
१८५८	७००००
१८७०	५९०३५
१८८०	७३२८८
१८९०	७६६१६
१९००	४९२७७
१९०५	५१९२०
१९१०	३५४८८

चीन वर्षानुवर्ष भारत की अफीम का प्रधान ग्राहक रहा है। मालवा की अफीम को जोड़कर सन् १८५३ से लेकर १८९२ तक किसी भी वर्ष मे ६०,००० पेटियो से कम अफीम चीन को नही गई। १८९२ से १९०७ तक वह औसतन् ५०००० पेटियो मे गई। जिसकी कीमत ४०,००,००० पौंड से भी अधिक होती है। १० वर्ष मे अफीम भेजना कम करने के हिसाब से १९०७ से प्रति वर्ष ५००० पेटियाँ कम जाने लगीं।

कहते हैं, इस प्रकार भारत की अफीम के लिए चीन का दरवाजा सदा के लिए बन्द हो गया। परन्तु मिस ला मोटे की पुस्तक को पढ़ने से जो कि "ब्ल्यूबुक्स" और सरकारी हिसावों के आधार पर लिखी गई है, हमे पता चलता कि यद्यपि भारत की अफीम के लिए सामने का दरवाजा तो बन्द हो गया है तथापि कोशिश करके दूसरे रास्तो से अब भी भारत की अफीम चीन मे भेजी जा रही है। भारतभक्त ऐंड्रयूज लिखते हैं—

"The hateful and miserable thing is this, that the British Government in India, all through the war and since the war, has been a party to this new sin of Opium poisoning in China. I have with me a letter from the "International Anti-Opium Association" at Peking, in which the Secretary assersts, from intimate knowledge of the facts that the greatest hindiance to the suppression of opium in China is the production and sale of such large amounts of Opium by the Indian Government."

"बड़ी घृणित और दुःख की वात तो यह है कि महायुद्ध के दिनो में और उसके वाद भी भारत-सरकार का चीन को अफीम पहुँचाने मे हाथ रहा है। पेकिंग की अंतर्राष्ट्रीय अफीम-विरोधिनी संस्था का मेरे पास एक पत्र है जिसमे उस संस्था के मंत्री जिन्हे असली वातो का खूब पता है, लिखते हैं कि चीन मे अफीम के व्यसन को रोकने के काम मे सबसे भारी विघ्न भारत-सरकार है, जो इतनी अधिक तादाद मे अफीम पैदा करती और वेचती है।"

मिस ला मोटे सरकारी अंको के आधार पर लिखती है कि स्ट्रेट सेटलमेन्ट्स की वार्षिक आय १ ९०,००,००० डालर है।

इनमे से ९०,००,००० डॉलर भारत को अफीम के व्यापार से उसे मिलते है। वहाँ सन् १९१४–१५ में भारत से ६०० पेटियाँ गई थी आगे यो बढ़ती गई—

१५–१६	२५५०
१६–१७	३७५०
१७–१८	४७८९
१८–१९	४१३६

हांगकांग, जिसकी जनसंख्या पाँच लाख है, इतनी अफीम हर साल लेता है जो १५,००,००,००० लोगो की औषधि विषयक आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकती है। *अपनी सारी वार्षिक आय का तीसरा हिस्सा उसे केवल इस भारत की अफीम के व्यापार से ही मिलता है। और यह सब अफीम चोरी से चीन में भेजी जाती है। स्वयं हांगकांग की सरकार इस बात का प्रतिवाद नहीं करती।*

मिस लामोटे लिखती है—"हम सुदूर पूर्व में एक वर्ष तक रहे थे और हम जिस देश मे गये इस विषय (अफीम) मे तहकीकात की। जहाँ कहीं हो सका हमने शासन-विवरण भी ध्यानपूर्वक पढ़े। हमने देखा कि सरकार ने अफीम के व्यापार को बड़ी मजबूत बुनियाद पर प्रतिष्ठित कर रक्खा है और इसमें अपना एकाधिकार (Monopoly) रक्खा है। अफीम पर आवकारी (Excise) कर लगाकर और ठेकेदारो से ठेके की फीस के रूप मे खुले-आम सरकार टके कमा रही है। यह सब पूर्ण व्यवस्था के साथ हो रहा है और विदेशी सरकारें अपने शासित प्रजाजनो के हितो का बलिदान देकर अपना नफा कमा रही है। अमेरिका और यूरोप के देशो मे हम देखते हैं कि सर-

कारें ऐसी नशीली चीजों के व्यवहार को रोकने की हर तरह से कोशिश करती है। पर यहाँ तो सर्वत्र इसके विपरीत दशा है।"

अब भी इस सुदूर पूर्व के देशों मे अफीम पीने के लिए अंग्रेज-सरकार ने चण्डूखाने खोल रक्खे है। मिस लामोटे सिंगापुर मे इसी प्रकार के एक चण्डूखाने मे गई थी और वहाँ की हालत देखकर चकित हो गई थी। वे लिखती है:—

We three got into the Rikshaws and went down to the Chinese quarters where there are several hundreds of these places all doing a flourishing bussiness. It was early in the afternoon but even then trade was brisk. The people purchased their opium on entering: each packet bears a red label "Monopoly Opium.'

हम रिक्शा मे सवार हुए और चीनी बस्ती की तरफ गये। वहाँ पर ऐसे चण्डूखाने सैकड़ो की संख्या मे है, और जहाँ व्यापार तेजी से चल रहा है। इत्यादि।

इसके बाद एक चण्डूखाने का प्रत्यक्ष वर्णन देकर मिस लामोटे लिखती है:—

So we went on down the street. There was a dreadful monotany about it. House after house of feeble emaciated wrecks, all smoking Monopoly opium, all contributing by their shame and degradation to the revenue of the mighty British Empire.

अर्थात् "इस तरह हम जब उस सड़क से गुजरे तो एक के बाद एक ऐसे हमे कई मकान मिले; हर एक मकान का वही

भीषण दृश्य था ! दुबले-पतले अभागे मोनोपोली (जिसके व्यापार का एकाधिकार ब्रिटिश सरकार के हाथो मे था) अफीम पी रहे थे और अपने पतन और लज्जा द्वारा शक्तिशाली ब्रिटिश साम्राज्य की आय को बढ़ा रहे थे।"

मारिशस की भारतीय मजदूर-जनता मे भी इसी तरह अफीम का प्रचार बढ़ाया जा रहा है। १९१२-१३ में दस पेटियाँ भेजी थीं, उसे बढ़ाते-बढ़ाते १९१६-१७ तक वहाँ प्रति वर्ष १२० पेटियां जाने लग गई।

एक ओर इंग्लैंड मे Dangerous Drugs Act जारी है और दूसरी ओर यही सरकार अपने अन्य जातीय प्रजाजनो मे इस तरह अफीम बेच रही है! यह है घृणित लोभ का परिणाम। जिस अपराध के लिए इङ्गलैंड मे वह अपने देश के निवासियो को सजा देती है, पूर्वीय देशों मे उसी पर वह टके कमाती है !

स्टेटिसटिक्स ऑफ ब्रिटिश इण्डिया से मिस ला मोटे नीचे लिखा महत्वपूर्ण उद्धरण पेश करती हैं:—

During the ten years, ending 1916-17 the receipts from opium consumed in India incresed at the rate of 44 per cent. The revenue from drugs consumed in India (excluding opium) has risen in ten years by 67 per cent.

भारत मे १८१६-१७ मे खतम होनेवाले १० वर्ष मे अफीम की खपत पर सरकार को पहले की अपेक्षा ४४ फी सैकड़ा अधिक आय हुई। और अफीम को छोड़कर दूसरी नशीली चीजो पर कुल ६७ फी सैकड़ा अधिक आय हुई।

संभव है बहुत दिन से गुलामी के आदी होने के कारण भारतवासियों को इसमें कुछ भी विशेषता न दिखाई दे। उन्हें पता नहीं कि स्वाधीन देश की सरकारें अपने प्रजाजनों के स्वास्थ्य और नीति की रक्षा करने में कितनी सावधान रहती हैं। इसीलिए आज हमारे देश में इन नशीली चीज़ों का ऐसा भीषण प्रचार होने पर भी देश के इने-गिने नेताओं को छोड़कर न कोई अपनी आवाज इसकी रोक-थाम के लिए उठाते हैं और न उस प्रश्न में कोई दिलचस्पी लेते हैं।

आज भी हम अफीम की बन्दी से कोसों दूर हैं, ऐसा मालूम होता है। जब स्वयं शिक्षित लोगों का यह हाल है तब नरेश और सरकार यदि इस बात में उदासीन हों तो कौन आश्चर्य की बात है? परन्तु मिस लामोटे जैसी स्वतन्त्र देश की रहने वाली महिला को तो यह परिस्थिति बड़ी भीषण मालूम हुई। उसने उपर्युक्त उद्धरण पर टीका करते हुए लिखा है:—

A nation that can subjugate 30,00,00,000 helpless Indian people and turn them into drug addicts for the sake of revenue is a nation, which commits a cold blooded atrocity unparalleled by any atrocity committed in the rage and heat of war.

युद्ध के आवेश और द्वेषपूर्ण वायुमण्डल में यदि किसी राष्ट्र से कोई पाप हो जाता है तो समझ में आ सकता है। परन्तु वह राष्ट्र, जो तीस करोड़ गरीब भारतीयों को जीतकर धन कमाने के लिए उन्हें नशीली चीजों का गुलाम बना देता है, ऐसा घृणित पाप करता है जिसकी तुलना में युद्ध में किये गये वे अत्याचार कुछ नहीं हैं।

मिस ला मोटे का यह धिःकार-वचन अंग्रेज़ राष्ट्र के लिए भले ही कहा गया हो, परन्तु उसमे भारतीयो के लिए व्यंग्य-रूप मे कही अधिक जोरदार धिःकार है। ऐसे लोगो को किस पशु की उपमा दी जाय जिनकी संख्या पैतीस करोड़ होने पर भी जो कुछ लाख विदेशियो की गुलामी मे इतने दीर्घ काल से सड़ रहे हैं, जिन्हे अपनी गुलामी पर लज्जा नही आती और जो मजे से नींद के खुर्राटे ले रहे है। यही नही बल्कि जो अनेक प्रकार के व्यसनो और व्यभिचार के शिकार हो अपने शरीर और आत्मा को और भी पतित कर रहे हैं।

भारतीयो के लिए यह दूनी शर्म और लज्जा की बात है। अफीम खाकर वे खुद केवल अपना स्वास्थ्यनाश ही नहीं कर रहे हैं परन्तु अफीम पैदा करके दूसरे देशो को भी अफीम का और विदेशियो का गुलाम बनाने मे सरकार की सहायता कर रहे हैं। आज भी भारत की अफीम से यह घृणित काम किया जा रहा है। पाठक ज़रा अफीम की पैदायश और व्यापार पर एक नजर डाले और देखे कि यद्यपि उसे पहले की अपेक्षा सरकार को बहुत घाटा देना पड़ा है; तथापि इस समय भी वह हमारे देश और हमारे पडोसियो और मित्रो के लिए बहुत खतरनाक है।

[४]

पैदायश और व्यापार

आरंभ मे कहा गया है, अफीम की पैदायश और बिक्री पर भारत-सरकार ने अपना एकाधिकार रक्खा है। अतः अफीम की खेती सिर्फ सरकार की आज्ञा से सरकार के ही लिए की जा सकती है। अफीम की खेती करनेवाले किसान को खर्चे के लिए पेशगी दाम सरकार से मिलते है। प्रतिवर्ष किसान सरकार से अफीम की खेती करने के अधिकार को प्राप्त करते हैं और पैदा की गई अफीम सरकार को सौंप देते हैं। उस समय पेशगी रकम काटकर किसान को अफीम की कीमत दे दी जाती है। कच्ची अफीम गाजीपुर के अफीम के कारखाने मे भेज दी जाती है। अफीम दो प्रकार की होती है। भारत के लिए और विदेशो के लिए। विदेशो के लिए जो अफीम तैयार की जाती है उसे 'प्रोवीजन' अफीम कहते हैं और उसे वाक़ायदा सन्दूको मे वन्द कर दिया जाता है। जो अफीम भारत मे वेचने के लिए तैयार की जाती है उसे 'एक्साइज़' अफीम कहते है।

इन तैयार पेटियो का बँटवारा सरकार यो करती है—

(अ) विदेशो मे भेजने के लिए—

(आ) कुछ अफीम इंग्लैंड को वतौर दवा के उपयोग करने के लिए भी दी जाती है।

(इ) और शेष भारत मे वेचने के लिए भारत के आब-कारी विभाग को दे दी जाती है।

भारत में वहुत समय से अफीम की पैदायश होती आई है। फिर उसकी वन्दी या रोक करनेवाला कोई क़ानून भी नही था। धर्मशास्त्रो मे भी कोई जोरदार निषेध नही था, इस-लिए मध्यकाल मे अफीम का व्यसन काफी फैला हुआ था। उसके वाद जव पश्चिम से सुधरी हुई अंग्रेज़ सरकार का आगमन हुआ तो इसने अफीम की पैदायश, व्यापार और प्रचार को भी पूर्णतया अपने हाथों मे ले लिया। जिस प्रकार वाहरी देशो को अफीम देकर सरकार ने धन कमाना शुरू किया, उसी तरह उसने हमारे देश मे भी किया। उन्नीसवीं सदी मे सरकार द्वारा वाकायदा चण्डूखाने चलाये जाते थे। ३० अप्रैल सन १८८९ के 'हॅनसार्ड' मे श्रीयुत केन ने लखनऊ के एक चण्डूखाने का वर्णन छपाया है। मिसाल के तौर पर हम उसीको यहाँ उद्धृत किये देते है। वर्णन जरा लम्बा तो है, परन्तु १८८९ मे हमारे देश की अवस्था का वह एक हूवहू चित्र कहा जा सकता है। उसमे हमे ज्ञात होता है कि देश मे अफीम का व्यसन किस हद तक फैला हुआ था और देश के शासक तथा समाज उसकी ओर मे कैसा उदासीन था। चित्र यों है·—

"हम दूसरो के साथ दरवाजे के अन्दर घुसते है और अपने आपको एक गंदे आंगन मे खड़ा हुआ पाते हैं। इस आगन के आस-पास चारो ओर मिलकर १५ छोटे-छोटे कमरे है। दुर्गन्धि वहुत भयंकर थी। मक्खियों की भिन-भिनाहट से जी घवड़ा रहा था। सड़क से इस दरवाजे के अन्दर घुसने

वालों के चेहरो पर एक प्रकार की विचित्र नारकीय अमानुषता दिखाई देती थी। अब मुझे मालूम हुआ कि एक दूसरी ही 'सरकार' के बाजार में मै आ गया और सो भी अपने जीवन मे पहली बार। मै एक 'चण्डूखाने' की चहारदिवारी के अन्दर था। फाटक पर एक चीनी सुंदरी बैठती है। उसका पति अपने ग्राहको से बाते करने मे तथा उन्हे ऐसे कमरो मे ले जाने मे लगा हुआ है जिनमे भीड़ नहीं है। उस सुंदरी के सामने एक मेज है जिस पर कई पैसे पड़े हुए हैं। सचमुच वह पूरी 'पेशावाज' प्रतीत होती है। इस दूकान की आय मे से आधी रकम तो कलकत्ता के सरकारी कोश मे जाती है और शेष आधी सरकारी कर उगाहने वाले—अर्थात् अफीम के कृषक के पास (क्योंकि वही तो सच्चा कृषक है)। इस स्थान को देखने की इजाजत लेकर मै उन कमरो मे से एक के अन्दर घुसा। कमरे मे कोई रोशनदान या खिड़की नहीं है। बिलकुल अँधेरा है। बीच मे कोयले जल रहे हैं। उनके धुँधले प्रकाश से मालूम होता था कि कमरे के अन्दर कोई नौ-दस व्यक्ति बैठे हुए हैं—नहीं, गोल बांधकर पड़े हुए हैं, मानो किसी गंदी गुफा मे सुवर पड़े हो। प्रत्येक कमरा एक पंद्रह-सोलह साल की लड़की के जिम्मे होता है। आग कहीं बुझ न जाय इसका वह खयाल रखती है। वह प्रत्येक आगन्तुक के मुँह मे चिलम देकर उसे जला देती है और चिलम को तब तक बराबर पकड़े रहती है जब तक कि धुँआ खींचते-खींचते वह आगन्तुक बेहोश होकर अपने से पहले आने वाले ग्राहक के बदन पर नहीं लुड़क जाता। उस समय हमने देखा कि कमरे के अन्दर २।३ आदमी इस स्थिति को

पहुंचने को थे। मैं शनिश्चर की रात को ईस्ट एण्ड जिन पैलेसेस पर भी गया था। मैंने इससे पहले कई प्रकार की सान्निपातिक बेहोशियों के मरीजों को देखा है. पागलखानों को भी देखा है। पर कहीं भी मनुष्य के रूप में परमात्मा की प्रतिमा का ऐसा भयंकर नाश मैंने नहीं देखा. जैसा कि लखनऊ में अफीम की इस 'सरकारी' दूकान पर देखा है। अफीम के शिकारों में एक १८।१९ वर्ष की सुन्दरी युवती भी थी। उसके दयनीय चेहरे को मैं मरणपर्यन्त नहीं भूल सकता। उस भयंकर विष के कारण वह कैसी बेहोश होती जा रही थी! उसकी नशीली आँखें कैसी मुँदती जा रही थीं—उन चमकीले सफेद दाँतों पर से उसके वे फीके होंठ कैसे खिंच रहे थे! उसी उम्र की एक दूसरी लड़की नये आगन्तुकों के झुंड में एक मस्त करुण गीत गा रही थी जब कि उस विष की चिलम बारी-बारी से एक दूसरे के हाथों में दी जा रही थी। उस सारी दुकान में मैंने चक्कर लगाया। पंद्रहों कमरों में गया। और गिन कर ९७ स्त्री-पुरुषों को बेहोशी की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में पाया। नौसिखिये अफीमची तो दो-चार पैसे से भी काम चला लेते थे। प्रतिदिन उन्हें अधिकाधिक अफीम की जरूरत पड़ती। इस दुष्ट दूकानदार ने तो मुझे ऐसे शख्स भी बताये, जिनकी तमाखू में तीव्र अफीम की १८० बूंदें डालने पर भी उन्हें नशा नहीं आता था। पर इस भयंकर विषैले स्थान में ठहरना मुश्किल था। ज्यों-त्यों करके मैं गिरता पड़ता इस विष-मंदिर से बाहर भागा।"

उन्नीसवीं सदी के अन्त में भारत की यह दशा थी। शहरों में अफीम का बेहद प्रचार था और जैसा कि इस उद्धरण में

वालों के चेहरों पर एक प्रकार की विचित्र नारकीय असानुपता दिखाई देती थी। अब मुझे मालूम हुआ कि एक दूसरी ही 'सरकार' के बाजार में मै आ गया और सो भी अपने जीवन में पहली बार। मै एक 'चण्डूखाने' की चहारदिवारी के अन्दर था। फाटक पर एक चीनी सुंदरी बैठती है। उसका पति अपने ग्राहको से बाते करने मे तथा उन्हे ऐसे कमरो मे ले जाने मे लगा हुआ है जिनमे भीड़ नही है। उस सुंदरी के सामने एक मेज है जिस पर कई पैसे पड़े हुए हैं। सचमुच वह पूरी 'पेशावाज' प्रतीत होती है। इस दूकान की आय मे से आधी रकम तो कलकत्ता के सरकारी कोश मे जाती है और शेष आधी सरकारी कर उगाहने वाले—अर्थात् अफीम के कृपक के पास (क्योंकि वही तो सच्चा कृषक है)। इस स्थान को देखने की इजाजत लेकर मै उन कमरो मे से एक के अन्दर घुसा। कमरे मे कोई रोशनदान या खिड़की नही है। बिलकुल अँधेरा है। बीच मे कोयले जल रहे हैं। उनके धुँधले प्रकाश से मालूम होता था कि कमरे के अन्दर कोई नौ-दस व्यक्ति बैठे हुए हैं—नहीं, गोल बांधकर पड़े हुए है, मानों किसी गंदी गुफा मे सुवर पड़े हो। प्रत्येक कमरा एक पंद्रह-सोलह साल की लड़की के जिम्मे होता है। आग कहीं बुझ न जाय इसका वह खयाल रखती है। वह प्रत्येक आगन्तुक के मुँह मे चिलम देकर उसे जला देती है और चिलम को तब तक बराबर पकड़े रहती है जब तक कि धुँआ खीचते-खीचते वह आगन्तुक बेहोश होकर अपने से पहले आने वाले ग्राहक के बदन पर नहीं लुड़क जाता। उस समय हमने देखा कि कमरे के अन्दर २।३ आदमी इस स्थिति को

पहुँचने को थे। मैं शनिश्चर की रात को ईस्ट एण्ड जिन पैलेसेस पर भी गया था। मैंने इससे पहले कई प्रकार की सान्निपातिक बेहोशियों के मरीजों को देखा है, पागलखानों को भी देखा है। पर कहीं भी मनुष्य के रूप में परमात्मा की प्रतिमा का ऐसा भयंकर नाश मैंने नहीं देखा, जैसा कि लखनऊ में अफीम की इस 'सरकारी' दूकान पर देखा है। अफीम के शिकारों में एक १८।१९ वर्ष की सुन्दरी युवती भी थी। उसके दयनीय चेहरे को मैं मरणपर्यन्त नहीं भूल सकता। उस भयंकर विष के कारण वह कैसी बेहोश होती जा रही थी! उसकी नशीली आँखे कैसी मुँदती जा रही थीं—उन चमकीले सफेद दाँतो पर से उसके वे फीके होंठ कैसे खिंच रहे थे! उसी उम्र की एक दूसरी लड़की नये आगन्तुकों के झुंड में एक मस्त करुण गीत गा रही थी जब कि इस विष की चिलम बारी-बारी से एक दूसरे के हाथों में दी जा रही थी। उस सारी दुकान में मैंने चक्कर लगाया। पंद्रहों कमरों में गया। और गिन कर ९७ स्त्री-पुरुषों को बेहोशी की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में पाया। नौसिखिये अफीमची तो दो-चार पैसे से भी काम चला लेते थे। प्रतिदिन उन्हें अधिकाधिक अफीम की जरूरत पड़ती। इस दुष्ट दूकानदार ने तो मुझे ऐसे शख्स भी बताये, जिनकी तमाखू में तीव्र अफीम की १८० बूँदें डालने पर भी उन्हें नशा नहीं आता था। पर इस भयंकर विषैले स्थान में ठहरना मुश्किल था। ज्यों-त्यों करके मैं गिरता पड़ता इस विष-मंदिर से बाहर भागा।"

उन्नीसवीं सदी के अन्त में भारत की यह दशा थी। शहरों में अफीम का बेहद प्रचार था और जैसा कि इस उद्धरण में

ज्ञात होता है सरकार स्वयं ऐसी भयंकर दूकानें चलाती थी। यह अवस्था हमारे समाज के लिए तथा सरकार के लिए भी निःसन्देह लज्जाजनक थी। जबतक हम किसी भी बुराई का सक्रिय प्रतीकार करना नहीं सीखेंगे तब तक हम अपनी वर्तमान अवस्था से कभी निकल नहीं सकते। श्रीयुत केन जैसे सज्जनो ने इग्लैड मे जाकर भारत की अवस्था का वर्णन किया। वहाँ बहुत भारी आन्दोलन हुआ। हमे पता नहीं कि भारतीय जनता ने इस बुराई को मिटाने के लिए क्या किया। अंग्रेज़ जनता के आन्दोलन के फल-स्वरूप भारत मे अफीम के प्रचार और व्यापार की दशा का अवलोकन और जाँच करने के लिए एक रॉयल कमिशन की नियुक्ति हुई (१८९३)। कमिशन ने जाँच की और उसकी रिपोर्ट सात जिल्दो में प्रकाशित की गई (१८९५)। उसने यह आविष्कार किया कि "अफीम हानिकर वस्तु नहीं है। और एक तो लोग उसका उपयोग अधिक परिमाण में करते ही नही और यदि कोई करता भी है तो समाज में उसकी बड़ी निन्दा होती है।" इत्यादि। परन्तु इसमें सब एकमत नही है। भिन्न मत रखनेवाले सदस्यों ने अपनी रिपोर्ट अलग प्रकाशित की थी। पर उसे अब भुला दिया गया है। आश्चर्य तो यह है कि आज भी इस १८९३ ई० के कमिशन की बातो को वेद-वाक्य के समान दोहराया जाता है। अधिकारियों के दृष्टिकोण में अभी अफीम की खेती और प्रचार को बन्द करने के विषय मे कोई विशेष परिवर्तन नहीं दिखाई देता। गत एक-दो साल से शिमला और दिल्ली में अफीम की बन्दी की सभाएँ जरूर होने लगी हैं। परन्तु उनका कोई ठोस फल अभी प्रकट नही हुआ है।

भारत-सरकार की सेंट्रलब्यूरो ऑव इन्फरमेशन के डाइरेक्टर श्रीयुत रशब्रुक विलियम्स लिखते हैं—"भारत की विशेष परिस्थिति पर बिना विचार किये भारत-सरकार की नीति को समझना असंभव है। ईसवी सन् १८९३ मे रॉयल कमिशन ने पाया कि *भारतीय जनता का बहुत भारी हिस्सा अफीम को बन्द करने के पूर्णतया विरोधी था। क्योंकि लोग इसे व्यक्तिगत स्वाधीनता पर अनावश्यक नियन्त्रण समझते थे, और वास्तव में यह तो सदियों की पुरानी आदतों और रिवाजों में हस्तक्षेप है भी। हमें यह याद रखना चाहिए कि भारत की जमीन अफीम तो पैदा करता ही रहेगी। भारत की जनता ने सदियों से अपने आपको अफीम का आदी बना* लिया है और उसका ख़याल है कि अफीम में कितने ही रोगों को मिटाने के गुण भी हैं। आदत पुरानी हो जाने के कारण सामाजिक रस्म-रिवाजों में भी वह जड़ पकड़ गई है।" यह सब लिखकर रायल कमिशन की दुहाई देते हुए श्रीयुत रशब्रुक विलियम्स फिर अफीम की बन्दी को खतरनाक बताते हैं।

रॉयल कमिशन की राय है—"दूर दृष्टि, विचार-शीलता तथा राजनीति के दृष्टिकोण से विचार करने पर यही साफ-साफ दिखाई देता है कि जब तक भारत ऐसी बात के पक्ष में अपना मत नहीं दे देता, भारत की शासक ब्रिटिश-सरकार की हैसियत से हम एक ऐसी बात के लिए, उन्तीस करोड़ जनता पर प्रयोग नहीं कर सकते, जिसका सम्बन्ध उसके गहनतम वैयक्तिक जीवन से है।"

एक महान देश का इससे अधिक उपहास और किन शब्दो में हो सकता है ? हाँ, भारत अभी सामूहिक विरोध की कला को नहीं सीख पाया है। पर उसने अफीम का इतने बड़े पैमाने पर चीन के साथ व्यापार करने को भी तो अंग्रेज सरकार से कब कहा था ? वह कब अंग्रेजो को सात समुद्र पार से यहाँ शासन करने का न्यौता देने के लिए इंग्लैड गया था ? उसने कब कहा था कि वे उसके जन्म-सिद्ध अधिकार को छीनकर इस देश के स्वामी बन बैठे। क्या स्वाधीनता मनुष्य के और देश के व्यक्तिगत जीवन में इस अफीम और शराब-बन्दी के प्रश्न की अपेक्षा कम महत्वपूर्ण स्थान रखती है ? भारत ने कब कहा था कि उस पर लंकाशायर का कपड़ा लादकर इस देश की कला-कौशल और आजीविका के साधन को निर्घृण दुष्टता-पूर्वक नष्ट कर दिया जाय ?

जिस समय रॉयल कमिशन भारत के लिए ऊपर लिखे अनुसार राय दे रहा था, इंग्लैड मे उसी समय नशीली चीजों की रोक करनेवाला कानून बना था। अफीम या उससे बननेवाली चीजो का खरीदना, खाना और पीना इंग्लैड मे रोक दिया गया। ब्रिटिश-साम्राज्य के कनाडा, ऑस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड आदि उपनिवेशो मे भी यही कानून हो गया। पर उसी साम्राज्य के अन्य देशो मे, जिनमे स्वायत्त शासन नहीं है, जिनका शासन ठेठ इंग्लैड से होता है, जो रक्षित संस्थान है, रॉयल कमिशन की वही पुरानी दलीले काम देती हैं।

सन् १९२२ मे इण्डिया ऑफिस से The Truth about Indian Opium (भारत की अफीम के बारे मे सच्ची बात)

नामक एक पुस्तक प्रकट हुई है। तब तक रायल कमीशन को पच्चीस वर्ष हो चुके थे। परन्तु शासको के दृष्टिकोण में इन पच्चीस वर्षों में भी कोई फर्क नहीं हुआ। अफीम-बन्दी पर इस पुस्तिका मे नीचे लिखे विचार हम देखते है—

"भारत में अफीम खाने की बन्दी को हम तो असभव समझते है। इसके लिए प्रयत्न करना भी सरकार तथा जनता के लिए खतरनाक है। हम यह बिना किसी हिच-किचाहट के रॉयल कमिशन के आधार पर कह रहे हैं जिसने १८९५ मे रिपोर्ट किया था कि—"व्यसन के तौर पर अफीम की आदत भारत मे नहीं के समान है। अफीम का भारत मे दवा के बतौर और वैसे भी बहुत बड़े पैमाने पर उपयोग किया जा रहा है। कई उदाहरण ऐसे है जिनमे यह फायदेमन्द पाई गई। उसका दवा के रूप में भी समान ही उपयोग होता है। देखते समय इस बात को ध्यान मे रखकर अफीम नहीं बेची जा सकती कि किसे दवा के लिए और किसे अपनी दूसरी आवश्य-कता की पूर्ति के लिए अफीम देनी चाहिए। यह आवश्यक नहीं कि ब्रिटिश भारत मे सिर्फ दवा के लिए ही अफीम पैदा की जाय और बेची जाय तथा अन्य सब प्रकार के उपयोगो के लिए उसकी बन्दी कर दी जाय। भारत के अधिकांश अफीम खानेवाले अपनी आदत के गुलाम नहीं है। वे थोड़ी मात्रा मे लेते हैं और जब उनकी जरूरत नहीं होती उसे छोड़ सकते है और छोड़ भी देते हैं। लोग अफीम को एक साधारण किन्तु गृहस्थ के लिए अत्यन्त कीमती दवा समझते हैं और देश भर मे इसका उपयोग करते है। लोग अपनी थकावट को दूर करने के लिए अफीम खाते

हैं और उदर रोगों पर भी उसका सेवन करते हैं। मलेरिया से बचने के लिए भी लोग अफीम खाते है। मधुमेह मे पेशाब में जानेवाली शक्कर को रोकने के लिए अफीम का लोग उपचार करते है। साधारणतया सभी उम्र के स्त्री-पुरुषों के दु:खों को दूर करने के लिए अफीम का उपयोग किया जाता है। यह याद रखने की वात है कि भारतीय जनता का अधिकांश हिस्सा सुशिक्षित डाक्टर की सेवाओं से लाभ उठाना भी नहीं जानता। वे प्राय: संपूर्णतया अपनी घरेलू दवाओ और जड़ी-बूटियो पर निर्भर रहते हैं। फासला और सहिष्णुता उन्हे कुशल और सुयोग्य डाक्टरो का इलाज करने से रोकते है। इस परिस्थिति मे थोड़े-थोड़े परिमाण मे वच्चो को वीमारी मे अफीम देना उनके लिए एक अत्यन्त फायदे की चीज है। बूढ़े अपाहिजो के लिए भी वह कम फायदेमन्द नहीं है। असाध्य वीमारियो में भी उसका उपयोग होता ही है। इस परिस्थिति मे अफीम को इतनी दुर्लभ बना देना कि वह केवल डाक्टर की आज्ञा से ही आदमी को मिल सके, एक हास्यास्पद वात होगी। और उन करोड़ो भारतीयो के प्रति तो वह शुद्ध अमानुपता होगी।"

यह भी जाने दीजिए। जव से लीग ऑव नेशन्स की स्थापना हुई है, अफीम के विरोध मे उसकी अधीनता मे वड़ा ज़वरदस्त आन्दोलन हुआ है। परन्तु भारत-सरकार ने अपनी मर्यादा के वाहर एक क़दम नहीं रक्खा। १९२६ मे प्रकाशित अपने निर्णय मे भी उसने स्पष्ट यही कहा है कि वैज्ञानिक और औपधि-प्रयोग को छोड़कर अफीम की पूर्ण वन्दी की नीति भारत में केवल अव्यवहार्य ही नहीं वल्कि अनिष्ट भी होगी।

इस बात से तो कोई इन्कार नहीं कर सकता कि अफीम में दर्द दबा देने के गुण हैं। परन्तु साथ ही उसमे आदत डालने के गुण भी तो हैं। और क्या अफीम की आदत हानिकर नहीं है ? युरोप के देशो मे तो उसके देने न देने का अधिकार डाक्टरो के अधीन रक्खा गया है और वह डाक्टरो की देख-भाल ही मे ली भी जाती है।

हम मानते हैं कि स्वर्गीय श्री केरहार्डी, श्रीयुत् स्टेड और इंग्लैण्ड की अफीम-विरोधी सभा के प्रयत्नों के फल-स्वरूप यहाँ पर अफीम का धुआँ पीने पर कठोर नियन्त्रण रख दिया गया है और उसके लिए सरकार देश के धन्यवाद की पात्र भी है। पर उसका कर्त्तव्य यहीं समाप्त नहीं होता। उसके लिए बहुत-कुछ करना बाकी है। अब भी भारत मे अफीम का काफी प्रचार है। ब्रिटिश-भारत के भिन्न-भिन्न प्रान्तो मे अफीम का प्रचार प्रति १०००० मनुष्य इस प्रकार है:—

(१९२७–२८)

प्रान्त	सेर	प्रान्त	सेर
युक्तप्रान्त	५	मदरास	८.२
बंगाल	८.५	सीमाप्रान्त	८.८
बिहार-उड़ीसा	७.२	बम्बई	१४
पंजाब	१९	ब्रह्मा	२१
बलुचिस्तान	१३	आसाम	३८
कुर्ग	१.७	मध्यप्रदेश	१८
अजमेर-मेरवाडा	६८		
कुल भारत की औसत	१२		

अन्तरराष्ट्रीय समझौते के अनुसार जितने की इजाजत है	६

पर पैदायश इससे भी कहीं ज्यादा की जाती है। ये है सन् १९१०-११ से १९२५-२६ तक अफीम की पैदायश के अंक.—

प्रान्त	१९१०-११	१९२५-२६
बम्बई	१०२९ मन	८९० मन
मदरास	१४३५	७१४
बंगाल	१६८६	९९९
ब्रह्मा	१४४४	७१८
बिहार-उड़ीसा	८८२	६२६
युक्तप्रान्त	१५४५	५५०
पंजाब	१५८४	९४१
मध्यप्रान्त	१३०७	७९४
आसाम	१५०९	८३८
सीमाप्रान्त	६९	४८
अजमेर मेरवाड़ा (कुछ अधिक) अंक नहीं		
समस्त भारत	१२५२७ मन	७५८२ मन
देशी राज्यों से प्राप्त		६५००

भारत-सरकार को इधर-इधर प्रतिवर्ष अफीम के व्यापार से इस प्रकार आय होती रही है।

सन्	विदेशों और दवा के लिए	भारत में खर्च के लिए	कुल आय	अफीम की कीमत	अन्य व्यय	असल नफा
१९–	लाख रु०	लाख रु०	लाख रु०	लाख रु०	लाख रु०	लाख रु०
२७–२८	३१६	७९	३९५	७४	१३	३०८
२८–२९	२५७	७०	३२७	४२	१३	२७२
२९–३०	२३१	७३	३०४	३७	१२	२५५
३०–३१	१९१	७१	२६२	६४	११	१८७
३१–३२	१५४	६१	२१६	६२	११	१४३ (बजट में)

पर ये अंक तो सिर्फ भारत-सरकार की आय के हैं। वह भारत में काम से आनेवाली अफीम प्रांतीय सरकारों को बाँट देती है जो उसे ठीकेदारों द्वारा दूकानें खुलवाकर बेचने का प्रबन्ध करती हैं जिससे वे उपर्युक्त आय के अलावा तीन करोड़ से अधिक रुपया कमा लेती हैं। सरकारी अंकों के अनुसार भारत में कुल २,६०००० सेर अफीम खपती है।

सरकारी अफीम केवल उन्हीं लोगों को बेचने के लिए दी जाती है जिनके पास परवाने होते हैं। सरकार इन परवानों

को प्रतिवर्ष नीलाम करती है। और जो सबसे अधिक बोली लगाकर ये परवाने ख़रीदते है उन्ही को निश्चित शहर या सीमा के अन्दर दूकान लगाने की इजाज़त देती है। परवाने थोक और फुटकर बेचने वालो के अलग अलग होते हैं। थोक बिक्री का ठीकेदार फुटकर बेचनेवालों को या अपने ही समान थोक के अन्य ठीकेदारो को अफीम बेचता है। और फुटकर बेचनेवाला जनता को। इस तरह अफीम के ग्राहक को अफीम की क़ीमत, भारत-सरकार का कर और नफा, प्रांतीय सरकार का नफा और ठीकेदार का नफा अदा करके अफीम खरीदनी पड़ती है।

सरकार की नीति यही है। खूब कर लगावेगे तो बिक्री अपने आप घटेगी। पर अक्सर यह नीति बहुत कम सफल होती है। लोग चुरा कर अफीम मँगाने लग जाते है। वास्तव मे सच्चा मार्ग तो वही है जो लीग ऑव नेशंस ने बताया है– अर्थात् अफीम का उपयोग केवल दवा के लिए होना चाहिए। पर भारत-सरकार अफीम के शामिल उपयोग के सम्बन्ध मे बिलकुल उदासीन है फिर खरीदने वाला चाहे जिस उद्देश से खरीदता हो। इंग्लैंड मे यह कभी नही चल सकता। हाँ, संग्रह की सीमा जरूर बाँध दी गई है। पर वह प्रत्येक आदमी के लिए ३६० ग्रेन से लेकर ५४० ग्रेन तक भिन्न-भिन्न है।

पिछले कुछ वर्षों में विदेशो के लिए नीचे लिखे अनुसार प्रोविजन अफीम तैयार की गई।

वर्ष	पेटियाँ
१९१७-१८	१४४९९
१८-१९	१२५००
१९-२०	७४००
२०-२१	५८००
२१-२२	७५००
२२-२३	९०००

प्रत्येक पेटी में १४० पौंड अफीम होती है। इस अफीम को इंग्लैंड, ब्रिटिश-साम्राज्य के पूर्वी उपनिवेशों तथा सीलोन, लंका, स्ट्रेट्स सेटलमेन्ट्स, हांगकांग, मकाओ, जापान, इन्डोचायना, जावा, श्याम, ब्रिटिश उत्तरी बोर्नियो, मारिशस, ब्रिटिश वेस्ट-इन्डीज़, न्यू साउथवेल्स, फीजी द्वीप-समूह और ब्राजिल आदि देशों को प्रतिवर्ष नीचे लिखे अनुसार, पेटियाँ जाती हैं।

	१९१७-१८	१८-१९	१९२०
विदेश और इंग्लैंड के उपनिवेशों की सरकारों को	७८६४	८७०१	७८१६
ग्रेट ब्रिटेन	३०५१$\frac{1}{3}$	२४००	९००
इन देशों के ख़ानगी व्यापारियों को	५७३८	६२२६	२६४३
विदेशों में कुल	१६६५२	१७३५८	११३५९

भारत से एक्स्ट्रा चायना मार्केट के लिए पहले प्रतिवर्ष १६००० पेटियाँ जाती थीं। एक समय यह संख्या १००००० पेटियों तक पहुँच गई थी। पर अब अफीम के निकास को

बहुत घटा दिया गया है। जिनेवा में लीग ऑव नेशन्स के अधिनेतृत्व मे एक अन्तर्राष्ट्रीय समझौता हो गया है जिसके अनुसार भारत-सरकार को भी सन् १९२६ से प्रतिवर्ष फी सैकड़ा १० अफीम का निकास घटाते घटाते १० वर्ष में अफीम के वैदेशिक व्यापार को बन्द कर देना पड़ेगा। अत. हम आशा कर सकते हैं कि १९३५ के लगभग यह लज्जाजनक व्यापार बिलकुल बन्द हो जायगा।

[५]

संसार-व्यापी विरोध

अफीम और अन्य भयंकर मादक द्रव्यों के उपयोग को नियन्त्रित करने के आन्दोलन का अन्तर्राष्ट्रीय ढंग पर ईसवी सन् १९०९ मे आरम्भ हुआ। प्रेसिडेण्ट टॅफ्ट ने शंघाई मे पहले-पहल १९०९ की फरवरी मे अफीम के प्रश्न पर विचार करने के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय सभा निमन्त्रित की। उसी वर्ष के सितम्बर मास मे युनाइटेड स्टेट्स ने ससार के उन सभी राष्ट्रो को हेग मे एकत्र होने के लिए निमन्त्रित किया जिन्होने शंघाई की सभा मे भाग लिया था। और उनसे प्रार्थना की कि "शंघाई की सभा मे, जो भूमिका के तौर पर काम हुआ था, उसके आधार पर सब मिलकर, एक अन्तर्राष्ट्रीय समझौता या सुलह कर ले।" यही वह प्रख्यात "हेग ओपियम कन्वेन्शन" है जिसका उद्देश संसार मे अफीम आदि नशीली चीजो के दुरुपयोग का अन्त कर देना था। इस कन्वेन्शन का अधिवेशन ईसवी सन् १९१२ की जनवरी मास मे हुआ था। और ग्रेट ब्रिटेन, जर्मनी, फ्रान्स, इटली, हालैण्ड, पुर्तगाल, रूस, चीन, श्याम, ईरान, और युनाइटेड स्टेट्स इन बारह देशो ने मिलकर अफीम तथा अन्य नशीली चीजो के उपयोग को बन्द करने के लिए आपस मे सलाह-मशविरा किया जिसके फल-स्वरूप एक लम्बा-चौड़ा समझौता हुआ। इसमे सभी राष्ट्रो ने

का विरोध करने के लिए जितनी कोशिशे हो सकी, की गई; जिस तरह हो सका बचाव की सूरतें भी हुई और हम देखते हैं कि इसके फलस्वरूप जो समझौता हुआ, वह भी बड़ा ढीला-ढाला है। एक मामूली (Formal) नैतिक कबूली के सिवा वह है ही क्या? हर एक राष्ट्र ने अपने बचाव के लिए, या उसमे से सटकने के लिए कहीं न कहीं छिद्र रख लिये है। बात यह थी कि यद्यपि कितने ही राष्ट्र इस समझौते को चाहते तो नहीं थे परन्तु वे ख्वाहमख्वाह यह शोर भी तो होने देना पसन्द नहीं करते थे कि फलां राष्ट्र ऐसे फायदेमन्द और संसार के हितकारी काम का भी विरोधी है। खैर बड़ी बात तो यही थी कि इस रूप मे ही सही समझौता हो तो गया। सब राष्ट्रो ने यह तो कबूल कर लिया कि फलां-फला चीजे मनुष्य जाति के लिए हानिकर हैं और उनके प्रचार को रोकना सरकारो का काम है।

पर उसका नतीजा कुछ न हुआ। अनिच्छुक राष्ट्रो के लिए छूटने के कई रास्ते थे। "अपने-अपने देश की परिस्थिति" और अफीम को "क्रमश:" बन्द करने के वे मनमाने अर्थ लगा सकते थे। फिर कन्वेन्शन की अन्तिम बैठक १९१४ मे हुई। जब कि चारो ओर से यूरोप के भीमकर्मा वृकोदर राष्ट्र पृथक्-पृथक अपने-अपने युद्ध-शंख बजा रहे थे। इस शंखनाद और तोपो की दनदनाहट मे अफीम को भी अपना मौका मिल गया। युद्ध के बाद जब वर्सेलिज की सुलह हुई तब उसमे यह तय हुआ—

"धारा २९५: जनवरी २३ सन् १९१२ के हेग कन्वेन्शन को उसमे भाग लेनेवाले जिन राष्ट्रो ने हस्ताक्षर नहीं किये हैं वे स्वीकार करते हैं। अब वे उसपर अमल करेगे और उसे न्याव-

हारिक रूप देने की ग़रज से इस सुलह के स्वीकृत होने के बाद बारह महीने के अन्दर आवश्यक क़ानून बनावेंगे।

वे राष्ट्र यह भी कबूल करते हैं कि जिन राष्ट्रों ने १९१२ के कन्वेन्शन पर हस्ताक्षर नहीं किये हैं, उनके लिए इस सुलह (वर्सेलिज की) पर हस्ताक्षर करना उस कन्वेन्शन को मानने तथा उसके बाद १९१४ मे नियन्त्रित तीसरी ओपियम कान्फ्रेंस मे स्वीकृत प्रस्तावों के अनुसार बनाये गये इक़रारनामे पर भी हस्ताक्षर करने के समान ही है।"

इसलिए फ्रांस की प्रजासत्ताक सरकार नेदरलैंड्स (हालैण्ड) सरकार को इस सुलह की प्रामाणिक प्रति भेजकर उसे अपने दफ्तर मे उसी प्रकार सुरक्षित रखने के लिए कहेगी, मानों वह ओपियम कन्वेशन की मन्जूरी और १९१४ मे तय हुए विशेष इकरारनामे पर किये गये हस्ताक्षरवाला महत्वपूर्ण दस्तावेज़ हो।"

इस तरह जब वर्सेलिज की सुलह हुई तब हेग कन्वेन्शन को राष्ट्र-संघ की शर्तों में शामिल कर दिया गया। और राष्ट्र-संघ को जिम्मेदार बना दिया कि वह ख़याल रक्खे कि उपर्युक्त राष्ट्र उस कन्वेन्शन की शर्तों का ठीक-ठीक पालन कर रहे हैं।

राष्ट्र-संघ के अधीन यह काम आते ही उसने इस विभाग की देख-माल के लिए एक सलाहकार समिति (Advisory Committee) बना दी और अपना काम आसान कर लिया। समित एक स्थायी संस्था है। निश्चित समय पर उसकी बैठकें होती रहती हैं। उसने सभी प्रकार की नशीली चीजों के सम्बन्ध मे अत्यंत महत्वपूर्ण और उपयोगी साहित्य भी खूब इकट्ठा कर लिया है। और यदि वह स्वतंत्र होती, उसके हाथों मे कुछ सत्ता

भी होती, तो वह संसार का बहुत उपकार कर सकती थी। पर वास्तव में वह तो केवल सलाहकार-समिति मात्र है। सिवा सूचनाएँ और सिफारिशें राष्ट्र-संघ की कौन्सिल मे विचारार्थ पेश करने के उसके हाथों में कुछ है ही नहीं। उन सूचनाओ का स्वीकार करना, उनपर अमल करना या उन्हे रद्दी की टोकरी मे डाल देना, उस कौन्सिल की मर्ज़ी की बात है।

और यह कौन्सिल क्या है? उन्हीं राष्ट्रों के प्रतिनिधियो की वह बनी है जो संसार में शक्तिशाली हैं। प्रत्येक प्रतिनिधि अपने देश के आदर्श, विचार और फायदे के अनुसार अपनी वृत्ति रखता है। फलतः कई उस कौन्सिल के कार्य को उदात्त बनाने की कोशिश करते हैं तो कुछ उसे खींचकर गिराने की (अर्थात् उनकी दृष्टि से सद्भावपूर्वक ही) कोशिश करते हैं। और हम देखते हैं कि जिन उच्च सिद्धान्तो को लेकर राष्ट्र-संघ की स्थापना हुई थी, उनमें से बहुत थोड़ी बातो का पालन हुआ है। बात यह है कि यह दोष उस भव्य इमारत मे लगी लकड़ी या पत्थर का नही है, वह उस वृक्ष का और पत्थर को खान का ही दोप है, जिससे लकड़ी-पत्थर लेकर यहाँ लगाये गये थे। अफीम के प्रश्न का भी लीग ऑफ नेशन्स की कौन्सिल मे यही हाल हुआ।

सन् १९२१ मे चीन के डेलीगेट श्रीयुत् वेलिगटन कू ने लीग की कौसिल के सामने यह प्रस्ताव पेश किया कि संसार मे अफीम की केवल उतनी ही खेती की जाय जितनी डॉक्टरी तथा वैज्ञानिक उपयोग के लिए आवश्यक हो। असेम्बली ने क्या किया? बड़ी खूबी के साथ इसके शब्दो को बदलकर प्रस्ताव की आत्मा को उसमें से निकालकर फेक दिया। *ब्रिटिश भारत* के प्रतिनिधि ने

यो सूचित किया कि अफीम संसार की 'उचित' आवश्यकताओं के अनुसार पैदा की जाय। इस छोटे-से परिवर्तन ने तो जमीं-आसमान का फर्क कर दिया। पूर्व मे तो अफीम खाना और पीना भी 'उचित आवश्यकता' मे ही शुमार किया जाता है। दुर्भाग्यवश असेम्बली ने इस परिवर्तन को कबूल भी कर लिया। और इस अशुभ परिवर्तन ने अभागे हेग-कन्वेशन के सारे काम को चौपट कर दिया। राष्ट्र-संघ जैसी महान्-संस्थाएँ नीति-च्युत होने पर संसार के लिए कितनी भयंकर साबित हो सकती हैं यह बताने के लिए यह छोटा-सा उदाहरण काफी होगा।

फिर समुद्र-मंथन शुरू हुआ। अमेरिका ने लीग की ओपियम-कमिटी के सामने हेग-कन्वेन्शन के असली अर्थ को रखने तथा उसके उद्देश्य को समझाने की आज्ञा चाही और उसके प्रतिनिधि फिर १९२३ मे जिनेवा पहुँचे। माननीय श्रीयुत स्टिफेन जो. पार्टर इस मण्डल के अध्यक्ष थे। उन्होंने नीचे लिखे प्रस्ताव कमेटी के सामने पेश किये।

(१) "यदि हेग के कन्वेन्शन के उद्देश्य को उसके ठीक अर्थ और भावों मे पूर्ण करना हमे मंजूर है तो हमें यह बात कबूल कर लेना चाहिए कि डॉक्टरी और वैज्ञानिक उपयोग को छोड़कर अफीम का अन्य प्रकार से व्यवहार करना अनुचित है, वह उसका दुरुपयोग है।

(२) और इन चीजों के दुरुपयोग को रोकने के लिए यह आवश्यक है कि अफीम की पैदायश इतनी थोड़ी कर दी जाय कि उपर्युक्त डॉक्टरी और वैज्ञानिक उपयोग के अलावा और तरह के व्यवहार के लिए अफीम बच ही न पाये।"

श्रीयुत् पोर्टर ने बड़े जोरो के साथ अपने पक्ष को कमेटी के सामने रक्खा और उससे अनुरोध किया कि वह हेग कन्वेन्शन के उद्देश्य के इस स्पष्टीकरण पर फिर अच्छी तरह विचार करे। उन्होंने कमेटी से यह भी साग्रह निवेदन किया कि यदि वह ठीक समझे तो इस प्रस्ताव को स्वीकार करने के लिए लोग को कौन्सिल से और असेम्वली से अनुरोध करे।

कमेटी मे इन अमेरिकन प्रस्तावों पर बड़ी जोरों की बहस हुई। पहले-पहल तो चीन को छोड़कर एक भी देश इन अर्थों को स्वीकार करने के लिए तैयार न हुआ। पर आगे चलकर विरोध का क़िला टूट गया। और एक को छोड़कर सब देशों ने अमेरिकन प्रस्ताव में बताये अर्थ को कुबूल कर लिया। और वह एक देश कौनसा था ? हमे कहते हुए लज्जा आती है कि वह था भारत। भारत से मतलब है भारत-सरकार का भेजा हुआ प्रतिनिधि। उसने इस बात को मानने से इन्कार किया कि हेग कन्वेन्शन की मन्शा के अनुसार अफीम खाना अनुचित है। बात मैदान मे आ गई। दलील यह थी—

"The use of raw opium according to the established practice in India, and its production for such use, are not illegitimate under the convention"

अर्थात् कच्ची अफीम का उपयोग भारत की रूढ़ि के अनुकूल है और इस उपयोग के लिए अफीम पैदा करना कन्वेन्शन की मन्शा के अनुसार अनुचित नहीं है। भारत सरकार के प्रतिनिधियों ने यह भी कहा कि *भारत मे अफीम का प्रचार या व्यवहार यह हमारे अपने घर की बात है। इसमें एक अन्तर-*

राष्ट्रीय संस्था को हस्तक्षेप करने या सवाल करने का भी कोई अधिकार नहीं है।

आश्चर्य की बात यह है कि भारत-सरकार इस बात को क़बूल करती है कि वह ऐसे देशो को अफीम नहीं भेजेगी जिन्होंने अपने प्रदेश मे अफीम की बन्दी कर रक्खी है। पर भारत में अफीम के प्रचार के विषय मे उसकी यह वृत्ति है। ब्रिटिश सरकार दूसरे देशों को अफीम की बन्दी मे सहायता करना चाहती है। इंग्लैंड मे भी ब्रिटिश-सरकार ने क़ानून बना रक्खा है, पर जब कोई उसे भारत मे अफीम के विषय मे ऐसा नियंत्रण करने को कहता है तो यह जवाब मिलता है।

इसके बाद लीग ऑव नेशन्स की कौन्सिल और एसेम्बली ने अमेरिका के प्रस्तावों को मान लिया। पर केवल मानने से काम नहीं चलता था। अन्त मे सन् १९२३ में श्रीयुत पोर्टर ने फिर लीग से प्रार्थना की कि एक सर्वराष्ट्रीय कान्फ्रेन्स करके उन प्रस्तावो पर एकबार पूरी बहस हो कर कुछ तय हो जाय। लीग ने यह क़बूल किया और सन् १९२४ मे जिनेवा मे फिर उन राष्ट्रो की एक महासमिति निमन्त्रित की गई। वहाँ प्रस्ताव रक्खे गये। चीन, जापान, और अमेरिका का कहना था कि केवल डॉक्टरी उपयोग ही अफीम का जायज़ उपयोग है। अन्य कितने ही छोटे-छोटे राष्ट्रो ने इस पक्ष मे अपनी सहानुभूति ज़ाहिर की। परन्तु सवाल था अफीम की पैदावार बन्द करने का। इसलिए ग्रेटब्रिटेन और भारत के प्रतिनिधियो ने इसका बड़े ज़ोरो से विरोध किया। इसके बदले उन्होंने अफीम की पैदावश को क्रमश. (gradually) कम करने का कहा लम्बा

और हर तरह की गुञ्जाइश वाला चौड़ा रास्ता फिर बताया। हां, मॉर्फिया तथा हिराइन आदि पर कठोर नियन्त्रण रखना कबूल कर लिया। सुधारक राष्ट्रों का कथन था कि यदि हम संसार को व्यसन-मुक्त करना चाहते है तो उसकी जड़ ही मे कुठाराघात करना चाहिए। अफीम पैदा होने पर आप उस पर चाहे कितना ही नियन्त्रण रखिए वह महंगे से महंगे बाजार मे चोरी से, छिपकर चली ही जायगी। अफीम पैदा हुई कि उसे खानेवाले मिल ही जावेंगे। अतः बार-बार अनुरोध-आग्रह करने पर भी जब ग्रेटब्रिटेन ने उनकी सूचनाओ को स्वीकार नही किया तब अमेरिकन डेलीगेट उठ खड़े हुए और कान्फ्रेंस को छोड़-कर चले गये। पर चीन ने दो-तीन महीने और शान्ति से काम लेते हुए प्रयत्न किया। पर जब वह भी विफल हुआ तो उसके प्रतिनिधि भी कान्फ्रेंस छोड़कर चले गये। पर ब्रिटेन अपनी सीमा को छोड़कर वह टस से मस नही हुआ।

अपने ३० मई सन् १९२८ के अंक मे 'हिन्दुस्तान टाइम्स' नीचे लिखे समाचार प्रकाशित करता है—

"डेली हेरल्ड का विशेष संवाददाता लिखता है कि अब की बार जेनेवा मे अंग्रेजों की प्रतिष्ठा को बड़ी भारी ठेस पहुँची—अंग्रेज प्रतिनिनिधियो को मुसोलिनी के प्रतिनिधि की खरी-खरी और पते की बाते सुननी पड़ी और राष्ट्रीय सन्मान और शिष्टता का नया पाठ पढ़ने पर उन्हे मजबूर होना पड़ा।"

प्रत्येक राज्य मे नशीली चीजो के व्यापार और उत्पादन की रोक के लिए अंतर-राष्ट्रीय ढंग से कई वर्षों से प्रयत्न हो रहा है। लीग की अफीम कमिटी कई दिनो से देख रही है कि अंग्रेज-

सरकार अपने अधीनस्थ प्रदेशों के व्यापारी हितों की रक्षा का प्रयत्न करते हुए इस अंतर-राष्ट्रीय उपयोगी समझौते का भंग करने का कुत्सित प्रयत्न कर रही है।

इटली के प्रतिनिधि सिगनर कावाशन ने इस बार मादक पदार्थों के व्यापार-सम्बन्धी कुछ आश्चर्य-जनक उद्घाटन किया है। वह इस बात को खास कर इसलिए प्रकट कर सके कि उनका देश इन चीजों के व्यापार में विशेष उलझा हुआ नहीं है।

सिगनर कावाशन का कथन है कि १९२१ में मॉर्फाइन की उत्पत्ति ३९ टन थी। परन्तु १९२६ तक वह बढ़कर ६० टन हो गई। और वृद्धि खासकर ऐसे समय में हुई जब कि सब राष्ट्र मिलकर इन चीजों के प्रचार को रोकने के काम में विशेष रूप से प्रयत्नशील थे।

अंको से पता चलता है कि संसार की औषधीय आवश्यकता के लिए साल भर में १५ टन मॉर्फाइन काफी है। इससे यह स्पष्ट है कि शेष ४५ टन मॉर्फाइन का दुरुपयोग हुआ है।

सिगनर कवाज़ोनी (दूसरे प्रतिनिनिधि) ने ब्रिटिश-सरकार पर मक्कारी का इलजाम लगाया और कहा कि वह नशीली चीजों के निर्यात के असली अंको को छिपाये रखती है। सिर्फ इंग्लैंड के निकास और अमेरिका के आयात के अंकों में २० टन का फर्क है। इससे यह स्पष्ट है कि इन चीजों का गुप्त व्यापार बहुत भारी पैमाने पर हो रहा है।

पर अंग्रेज प्रतिनिधियों की सूरत उस समय तो और भी देखने लायक हो गई थी जब इन्हीं में से एक ब्रिटिश मि० एल० ए० लायल नामक अंग्रेज ने, जो कि वर्षों तक चीन के

महकमा सायर में काम कर चुके है, और जो चीनियो की तारीफ करते है, चीन के प्रति गोरी जातियो के अन्याय की खुले शब्दो मे निन्दा की। मि० लायल ने अपना यह वक्तव्य कमेटी को स्वेच्छापूर्वक दिया था। अंग्रेजो के कानों ने अपने सम्बन्ध में इतनी अवमानना-जनक बाते शायद ही कभी सुनी हो।

मि० लायल ने कहा कि "यद्यपि चीन में नशीली चीजो के व्यापार की रोक के सम्बन्ध मे क़ानून है तथापि युरोपियन और जापानी व्यापारी चीन के गृह-युद्धो से अनुचित लाभ उठा रहे है। एक तरफ़ चीन इस लज्जा-जनक व्यापार के फन्दे से अपने आपको छुड़ाना चाहता है तब दूसरी ओर युरोपियन और जापानी व्यापारी उसे असफल करने मे लगे हुए है।"

इंग्लैड ने यह प्रस्ताव किया कि अफीम नियन्त्रक-संघ ("Opium Control Board") लीग के अधीन न रहे। और उसमें केवल उन्हीं सरकारो के प्रतिनिधि हो जिनका इस विषय से स्वार्थ सम्बन्ध (Interests) है। पर खास कर इटली के प्रयत्नों से उनका यह प्रस्ताव अस्वीकृत हुआ। अन्त मे लीग की अफीम कमेटी मे सिगनर कॅवाज़ोनी का यह प्रस्ताव छः मत से स्वीकृत हो गया कि अफीम का नियन्त्रण लीग के "समाज-शिष्ट-मंडल" (Social Commission) के अधीन रहे। विपक्ष मे ४ मत थे। और ये चार राष्ट्र थे ब्रिटेन, भारत (यहाँ भारत से मतलब है भारत-सरकार) हॉलैण्ड और जापान जिनका अफीम के व्यापार मे बहुत स्वार्थ है।

तम्बाकू

१. इतिहास

२. गुण-धर्म

३. द्रव्यनाश

[१]

इतिहास

संसार के इतिहास मे वह दिन खून के अक्षरो से लिखा जायगा, जब मानव-जाति ने इस विषैले पौदे का उपयोग बतौर शौक करना आरम्भ किया। कहते हैं तमाखू अज्ञात काल से अपने भयंकर विष से मानव-जाति का नाश करती आ रही थी। परन्तु सन् १४९२ तक उसका उपयोग अमेरिका के आदिम निवासियो तक ही सीमित रहा। सन् १४९२ में जब कोलम्बस भारत की खोज मे निकला और रास्ता भूल कर अमेरिका को जा निकला, तब इसके साथियो ने वेस्टइण्डीज के निवासियों को एक पौदे का धूआँ पीते देखा। यह बात इनके लिए बिलकुल नवीन थी। स्वभावतः वे चकित हो गये। उस स्थान का नाम क्यूबा था परन्तु इसमे थोड़ा-सा मतभेद है। कुछ इतिहासकारों का कथन है कि उस स्थान का नाम गुआनाहनी (आधुनिक सैन सल्वाडोर) था। सम्भव है, दोनो सच हो; क्योंकि बाद मे पाया गया कि तमाखू का व्यवहार तो सारे उत्तर अमेरिका मे फैला हुआ था। लॉवेल अपने वनस्पतियो के इतिहास मे लिखता है (१५७६) कि सैन सैलवाडोर के लोग ताड़ के पत्तो की बीड़ियां बनाकर उसमे तमाखू भर के पीते थे। वे लोग इसे कोहीबा कहते थे। और उस बीड़ी को टोबाको। करीब-करीब यही बात रोमानेपानो नामक एक इसाई ने सैन डोमिंगा के निवासियो के विषय मे भी लिखी है। यह व्यक्ति

सन १४९४--९६ मे कोलम्बस के साथ उसकी दूसरी अमेरिका-यात्रा मे गया था । सैन डोमिंगो का गवर्नर गोंजालो फर्नान्डिज अपनी Historia General de Las Indias नामक इतिहास मे १५३५ मे इस विषय मे और भी मनोरंजक बातें लिखता है । वह लिखता है कि इस बीड़ी का आकार अंग्रेजी Y वाय का-सा होता था । लोग इस चिलम के ऊपर के दो सिरों को तो नाक मे रखते और निचले सिरे को आग पर जलती हुई तमाखू के धुएँ मे रखते और नाक से खूब धुआँ पीते । गोंजालो यह भी लिखता है कि अमेरिका के आदिम निवासी तमाखू की बड़ी कद्र करते थे । क्योंकि उन्हे विश्वास था कि इसमे अनेक अद्भुत गुण भरे हैं । अब तक किसी ने उत्तर अमेरिका मे किसी भी आदिम निवासी को तमाखू खाते हुए नहीं देखा था । यह दृश्य पहले-पहल सन् १५०२ मे दक्षिण अमेरिका मे स्पेनिश लोगों को दिखाई दिया । इसके बाद तो यूरोप के साहसी यात्री ज्यों-ज्यों इस नवीन भूखण्ड के अंत प्रदेश मे प्रवेश करते गये त्यों-त्यों उन्होंने देखा कि सारे अमेरिका मे तमाखू का प्रचार है । सब जगह उसका उपयोग एक-सा नहीं होता था । दक्षिण अमेरिका मे खाई अधिक जाती थी, तो उत्तर अमेरिका मे लोग इसे पीना अधिक पसन्द करते थे । और वास्तव मे अमेरिका के निवासियों के लिए यह नई चीज न थी । पता नहीं कितने पहले से वे इस भयंकर विष के पंजे मे फँसे हुए थे । मेक्सिको की आजटो की कब्रों से कई प्रकार की पुरानी चिलमे मिली हैं । इन पर विचित्र पशुओं की आकृतियाँ बनी हुई है जो उत्तर अमेरिका की नहीं है । प्रत्येक प्रान्त मे तमाखू के नाम भी भिन्न-भिन्न है ।

यूरोप मे इस पौदे की खेती पहले-पहल स्पेन के दूसरे फिलिप द्वारा १५६० में कराई गई। उसने फ्रॉन्सिसको फरनान-डेज नामक एक वनस्पतिशास्त्रवेत्ता को अमेरिका की वनस्पतियाँ और खनिज सम्पति की खोज करने के लिए भेजा। फरनानडेज वहां से अन्त चीजो के साथ-साथ तमाखू का पौदा और उसके बीज भी लाया। अब स्पेन मे बाक़ायदा तमाखू की खेती होने लगी। परन्तु वहाँ इसका विशेष स्वागत नहीं हुआ। फिर भी कुछ लोग इसे पीने और सूँघने तो लग ही गये। यूरोप के अन्य देशों मे इसका प्रचार पुर्तगाल से हुआ। जीन निकोट नामक फ्रेंच सज्जन पुर्तगाल के दरबार मे फ्रान्स के राजदूत की हैसि-यत से रहता था। उसने एक डच से तमाखू के कुछ बीज लिये और अपने लिस्बन वाले भवन के बग़ीचे मे उन्हें बोया। कहा जाता है कि उसने इस पौदे की पत्तियो से कई लोगो के रोग भगा दिये थे। इससे उत्साहित हो जीन निकोट ने इस अद्भुत वनस्पति के बीज फ्रान्स के राजा के पास भेजे। तबतक यह वस्तु इटली भी पहुँच गई। वहाँ इसका काफी स्वागत हुआ। इटली से तमाखू यूरोप के अन्य देशो मे बड़ी तेजी से फैल गई। लोग इसके गुणो पर मुग्ध होकर इसे अमृतवल्ली कहने लगे।

इंग्लैंड मे इसका प्रवेश सन् १५८६ मे हुआ, जब कैप्टन राल्फ लेन सर फ्रान्सिस ड्रेक के साथ वर्जिनिया से लौटा। परन्तु वहाँ तमाखू पीने का प्रचार करने का श्रेय तो सर वाल्टर रैले को है। रैले साहब ने दो साल पहले वर्जिनिया मे लेन की अध्य-क्षता में एक उपनिवेश स्थापन कर तमाखू की खेती आरम्भ कर दी थी। कहा जाता है कि इंग्लैड में सबसे पहले तमाखू पीने वाले

यही रैले साहब थे। इनके नौकर की कथा बड़ी मशहूर है। एक दिन रैले साहब, अपने बाग़ मे बैठे-बैठे तमाखू पी रहे थे। इतने मे उनका आदमी चाय ले कर आया। उसने देखा कि साहब के मुँह से धुँए के बादल के बादल निकल रहे हैं। वह घबड़ाया। समझा. मालिक के पेट मे आग लगी है। वह दौड़ा, पानी की एक बालटी उठाई और अपने मालिक के सिर पर उँडेल दी!

शनैः-शनै. तमाखू का प्रचार इंग्लैंड मे काफी हो गया। वर्जिनिया से जहाजो मे लदकर तमाखू आने लगा। पहले-पहल इस पर फी पौंड दो पेन्स आयात-कर लिया जाता था। परन्तु शीघ्र ही लोगों पर तमाखू के असली गुण प्रकट हो गये। राजा जेम्स भी सचेत हो गया। उसने १६०३ में एक पौंड पर १० शिलिंग ६ पेन्स कर बैठा दिया। उसने तमाखू के गुण-धर्मों की जांच की और Counter Blast to Tobacco नामक एक पुस्तक की रचना करके लोगों को सचेत भी कर दिया।

यूरोप में वर्षों तक लोग तमाखू को सचमुच अमृतवल्ली समझते रहे। प्रत्येक रोग पर उसका उपचार किया जाने लगा। पर शीघ्र ही लोगो का भ्रम दूर हो गया और उसके असली गुण उनपर प्रकट हो गये। तब तो राजा, बादशाह और धर्माधिकारी आदि सभी इसका विरोध करने लगे।

भारत मे इसका प्रचार करने का श्रेय पुर्तगीज लोगों का है। ई० स० १६०५ के लगभग तमाखू उनके साथ-साथ यहां आई। उस समय अकबर राज्य कर रहा था। कुछ लोगों का कथन है कि एशिया मे तमाखू का प्रचार इसके कहीं पहले से चला आया

है। परन्तु यह ठीक नहीं प्रतीत होता। भारत और एशिया के समस्त प्राचीन साहित्य मे कही इस पौदे का उल्लेख नहीं मिलता। जहां कहीं है भी वहां उसका आधुनिक विदेशी नाम ही पाया जाता है। इससे प्रतीत होता है कि वह भाग पीछे से जोड़ दिया गया है। उस समय एशिया मे पुर्तगीज सत्ता का मध्यान्ह-काल था। और अरब, ईरान, भारत, चीन आदि देशों मे तमाखू का प्रचार इन्हींके द्वारा हुआ, यह तत्कालीन ग्रन्थ-साहित्य देखने पर सिद्ध हो जाता है। "वहार-इ-अजां" का निम्नलिखित उद्धरण जो ब्लोकमन ने Ind Antiq के १६४ पृष्ठ पर छापा है देखने लायक है। वह लिखता है—"मआसिरि रायिमि से ज्ञात होता है कि तमाखू यूरोप से दक्खिन मे आई और दक्खिन से अकबर शाह के राज में होते हुए उत्तर भारत को गई। तब से वहां उसका प्रचार बराबर बढ़ रहा है।" तमाखू के प्रचार के आरंभकाल के विषय में यले और बर्नेल अपनी ग्लॉसरी ऑफ एंग्लो-इंडिन वर्डस्" नामक ग्रन्थ में नीचे लिखा उदाहरण देते हैं।

"बीजापुर मे मुझे कुछ तमाखू दिखाई दी। भारत मे पहले और कहीं इस अनोखी चीज के दर्शन नहीं हुए थे, इसलिए मैं कुछ तमाखू अपने साथ ले आया। उसके लिए एक जड़ाऊ काम-दार चिलम भी बनवाई।" यही लेखक आगे चलकर लिखता है "शाह अकबर मेरी भेटो से प्रसन्न हुए और पूछते रहे कि इतने थोड़े समय में इतनी सारी अजीब-अजीब चीजे मैं कैसे इकट्ठी कर सका। जब उनकी नजर तमाखू की तश्तरी और उस सुन्दर चिलम पर पड़ी, तब वे बड़े चकित हुए और उन्हों ने पूछा कि "अरे, यह क्या है"? उन्होनेतमाखू को भी गौर से देखा और पूछा कि यह

चीज कहां से लाये हो। नवाब खाँ आज़ाम ने जवाब दिया, जहांपनाह, यह तमाखू है। मक्का और मदीना मे लोग इसे पीते है। डॉक्टर आपके लिए इसे बतौर औषधि के लाया है। बादशाह ने उसे फिर देखा और अपने लिए एक चिलम भर के देने के लिए कहा। मैने ऐसा ही किया और शाह अकबर चिलम पीने लगे। जब उनके हाकिम आये तो उन्होने शाह को तमाखू पीने से मना किया। मै तो काफी तमाखू और चिलमे लाया था। इसलिए मैने उसे कई अमीर-उमरावो के पास भेज दिया। कितने ही सरदारो ने अपने लिए तमाखू और चिलम भेजने को मुझसे कहा। धीरे-धीरे सभी तमाखू पीने लग गये। और अब तो व्यापारी लोग भी तमाखू मंगा-मंगाकर बेचने लगे। इस तरह सारी जनता में तमाखू फैल गई। पर शाह ने फिर कभी चिलम को हाथ मे न लिया।" (आसाद बेग इन ईलियट ६, १६५-७)

परन्तु क्या भारत मे और क्या यूरोप मे तमाखू जनता की आँखो मे अधिक दिन तक धूल न झोंक सकी। इसके असली गुण सब लोगो पर प्रकट हो गये। राजाओ, बादशाहों और धर्माधिकारियों ने इसके प्रचार का यथाशक्ति विरोध भी किया। तुर्किस्तान मे तमाखू पीने वाले के होट काट लिये जाते थे और सूंघने वालो की नाक कभी-कभी तमाखू के भक्तो को जान से मार भी डाला जाता था। एलिजाबेथ, पहला चार्ल्स और पहले जेम्स ने भी इसके प्रचार को रोकने की कोशिश की। जैसा कि हम ऊपर लिख चुके है पहले जेम्स ने एक पुस्तक द्वारा इसे बहुत घृणित और मस्तिष्क तथा फेफड़े के लिए अत्यन्त भयंकर बताया। रूस में पहली बार तमाखू पीनेवाले का कठोर शरीर-दण्ड दिया

जाता और दूसरी वार प्राण-दण्ड। जहांगीर ने इसे युवकों के लिए बहुत हानिकर बता कर तमाखू के भक्तों के लिए तशीर × नामक दण्ड तजवीज किया था। ईरान के शाह अब्बास ने भी इसके प्रचार को रोकने के लिए ऐसी कठोर राजाज्ञा जारी की थी कि तमाखू के अनन्य भक्तों को अपने बचाव के लिए जंगलों मे भागना पड़ता था। स्विट्ज़रलैण्ड मे तमाखू पीना एक अपराध क़रार दिया गया था।

बारहवें इन्नोसेण्ट पोप ने तमाखू पीनेवालों के बहिष्कार की आज्ञा जारी की थी। इस्लाम मे आलङ्कारिक ढंग से तमाखू की उत्पत्ति निषिद्ध बताकर उसको वर्जित बताया है। हिन्दूधर्म, पद्मपुराण और ब्रह्मपुराण मे इसकी साफ-साफ निन्दा है। सच तो यह है कि सभी महान धर्मों के आचार्यों ने इसकी निन्दा ही की है और इसके व्यवहार को निषिद्ध बताया है। आज भी कितने ही राज्यों में बालकों के लिए तमाखू पीना क़ानूनन मना है।

तमाखुः पितलस्तीक्ष्णा श्चोष्णा वस्ति विशोधन.,
मदकृत् भ्रामकस्तिक्तो दृष्टिमांद्यकरः परः।
वमनो रेचनश्चैव नेत्रघ्नो शुक्रनाशक ॥

× आदमी का काला मुँह करके उसे गधे की पूंछ की तरफ मुँह करके बैठाना और शहर मे घुमाना।

[२]

तमाखू के गुण धर्म

तमाखू के इस सार्वभौम निषेध का और उस निषेध के होते हुए भी उसकी सार्वभौम विजय का रहस्य क्या है? उसमे ऐसी कौन-सी बुराई है जिसके कारण लोग इस तरह उसकी निन्दा करते हैं? साथ ही उसमे ऐसी कौन-सी ज़बर्दस्त शक्ति है जिसकी सहायता से वह लोगो को अब भी तेज़ी से अपने वश में करती जाती है?

संक्षेप मे इन दोनो प्रश्नो का उत्तर यह है कि तमाखू एक महाभयंकर विष है और उसकी सम्मोहन शक्ति उसका बल है।

संसार के तमाम बड़े-बड़े डाक्टर, वैद्य, रसायन-शास्त्री और वैज्ञानिक अब इस बात पर एकमत हो गये हैं कि तमाखू संसार के अधिक से अधिक मारक विषो मे से एक है। प्रूसिक एसिड को छोड़कर प्राणियो का प्राण इतनी जल्दी हरण करने की शक्ति किसी अन्य विष मे नहीं है। तमाखू पौदो की एक जाति का (जिसे अंग्रेज़ी में Valaceoe कहते हैं) महा भयंकर विषैला पौदा है। संसार मे इसकी कोई ५० जातियाँ हैं और सभी न्यूनाधिक परिमाण मे विषैली होती हैं।

वह भयंकर विष जिसके कारण तमाखू को यह ज़बरदस्त सम्मोहन शक्ति प्राप्त है (Nicotine C. १० H. १४ N. २) निकोटाइन कहलाता है। निकोटाइन एक घन द्रव है। तमाखू की सूखी पत्तियो

का गाढ़ा अर्क निकालने से यह प्राप्त हो सकता है। तमाखू मे यह दो से लगाकर आठ प्रतिशत तक की मात्रा मे पाया जाता है। ज्यों-ज्यों तमाखू पुरानी होती जाती है उस मे इस विप की मात्रा वढ़ती जाती है। वर्जिनिया की उत्कृष्ट समझी जानेवाली तमाखू में वह प्रतिशत छः या सात के परिमाण मे होता है। डॉक्टर केलॉग का कथन है कि "एक पौंड (आधा सेर) तमाखू मे ३८० ग्रेन निकोटाइन विप होता है। यह इतना भयंकर होता है कि एक ग्रेन का दसवाँ हिस्सा कुत्ते को ३ मिनट मे मार सकता है। एक शख्स इस विष से ३० सेकन्ड के अन्दर मर गया था। आधा सेर तमाखू में इतना विप होता है जो ३०० आदमियों का प्राण ले सकता है। एक मामूली सिगरेट मे जितनी तमाखू होती है उसके विष से दो आदमियों की जान ली जा सकती है भयंकर से भयंकर विषधर साँप तमाखू के विप से इस तरह मर गये मानो उनपर विजली गिर पड़ी हो।"

तमाखू का विष इतना भयंकर और तेज होता है कि तमाखू की पत्तियो के वाहरी प्रयोग से भी मनुष्य के शरीर पर गंभीर परिणाम देखे गये हैं। आप एक चिलम तमाखू को पेट पर वाँध कर देखिए कि क्या-क्या परिणाम होता है। थोड़ी ही देर मे आपको क्षय होने जैसी स्थिति हो जायगी। युद्ध से डरनेवाले सिपाही कई वार तमाखू को पेट पर या वग़ल मे वाँधकर वीमारी को वुलाते हैं और लड़ाई से वच जाने की कोशिश करते पकड़े गये हैं।

डॉ० फूट अपने होम एन्सायक्लोपीडिया मे लिखते हैं कि निकोटाइन की एक वूंद से एक मामूली कुत्ता और दो वूंदो से

मज़बूत से मज़बूत कुत्ता मर जाता है। छोटे-छोटे पक्षी तो उसकी स्यूत्र की हवा से ही मरकर गिर पड़ते हैं।

"तमाखू की पत्तियो को पानी मे उबालने से एक (Empy-reumatic नामक) तेल निकलता है। इसका रंग गहरा मटिया होता है। दुर्गन्ध वही होती है जो हुक्के या बहुत पुरानी चिलम मे होती है। इसकी एक बूँद अगर बिल्ली के पेट मे चली जाय तो वह ५ मिनिट मे मर जायगी और दो बूंदो से वही हाल कुत्ते का होगा।

डॉ० मूसी अपने प्रयोगो का हाल यो लिखते हैं—"तमाखू के तेल की दो बूंदो से बिल्लियों को मरते देखा है। एक जवान बिल्ली की जबान पर मैंने २ बूँदे डाली और तीन मिनट मे वह मर गई। एक बूँद से एक नन्ही-सी बिल्ली पॉच मिनट मे मर गई। तीस ग्रेन तमाखू की चाय एक आदमी के दर्द को कम करने के लिए दी गई और वह फौरन मर गया।"

तमाखू के बाहरी प्रयोग से जब ऐसे भयंकर परिणाम होते हैं तो उसके धुंए से मनुष्य के हृदय और फेफड़ो की क्या हालत होती होगी ?

निकौटाइन के अलावा तमाखू के धुंए मे कई प्रकार के अन्य भयंकर विष भी होते हैं। ×

डॉ० केलॉग अपने (Hosue Book of Modern Medicine) मे लिखते हैं—"किसी भयंकर से भयंकर विष को अपने शरीर

× इनमे से कुछेक के नाम ये हैं—Pyridine Picoline, Sulphoreted Hydrogen, Carbon dioxide, Carbonous Oxide और Prussic Acid ये सभी महाभयंकर विष होते हैं।

में ग्रहण करने का सबसे सरल उपाय है उसका धूँआ लेना। इसका कारण स्पष्ट है। देखिए न। हमारे फेफड़ो के आस-पास एक कोमल आवरण है। वह इतना पतला है और इतनी तहों मे उनके आस-पास लपेटा हुआ है कि यदि उसे फैलाया जाय तो १४०० वर्ग फुट ज़मीन उससे ढाँकी जा सकती है। इसका प्रत्येक इंच धुँएदार पदार्थों को जज़्ब करने की क्षमता रखता है। यह आवरण इतना महीन और कोमल होता है कि उसके अंदर से वायु मजे मे छनती हुई फेंफड़े तक जा सकती है। शरीर का ख़ून इस कोमल आवरण के नीचे से होकर तीन मिनिट में एक बार जाता है। अब कोई यह न समझे कि तमाखू का धुँआ मुँह मे से ही लौट करके आ जाता है। वह बराबर ठेठ फेफड़े तक पहुँचता है और अपने भयंकर विष से ख़ून के सजीव परमाणुओ को मूर्च्छित कर देता है।

तमाखू पीने वाले का खून हर बार इस विषाक्त धुँए में स्नान करके शरीर की सैर करने के लिए निकल जाता है। सुंघनी सूंघने अथवा तमाखू खाने से भी यही असर होता है। सूंघने से नाक के द्वारा उसकी विषैली बू और परमाणु अन्दर पहुँचते हैं और खाने से लार के साथ वह पेट में पहुँचती है।"

डॉ० रिचर्डसन तमाखू पीने वाले की हालत का यों वर्णन करते हैं :—

"उसका मस्तिष्क सूखा हो जाता है, उसमे खून नहीं रहने पाता। पेट के कोमल त्वचात्मक भीतरी आवरण पर गोल-गोल दाग़ पड़ जाते हैं। खून बहुत पतला हो जाता है। फेफड़े कमजोर हो जाते हैं। हृदय में खून को साफ करने की शक्ति नहीं रह

जाती। आवरण के कोमल परमाणु तमाखू के विषैले धुएँ से सो जाते हैं। इसलिए उसमे फैलने-सिकुड़ने की शक्ति नहीं रहती। ऐसी हालत मे खून का प्रवाह जब आता है तो हृदय फैलने के बजाय काँपता है। मानो एक सदाचारी मनुष्य से कोई बुरा काम हो गया हो और वह कॉपता हो। इसे हृदय की धड़कन नहीं कहा जा सकता। यह तो एक छटपटाते हुए प्राणी का कम्पन है। यंत्र तो ज्यों का त्यों है परन्तु एक शैतान उसपर अपना अधिकार किये बैठा है।"

अपनी आत्मकथा से महात्माजी लिखते हैं:—

"मैं सदा इस टेव को जंगली, हानिकारक और गन्दी मानता आया हूँ। अबतक मै यह न समझ पाया कि सिगरेट पीने का इतना जबर्दस्त शौक़ दुनियॉ को क्यो है? रेल के जिस डिब्बे मे बहुतेरी बीड़ियॉ फूँकी जाती हों, वहॉ बैठना मेरे लिए मुश्किल हो पड़ता है और उसके धुँए से दम घुटने लगता है।"

'दक्षिण अफ्रिका का सत्याग्रह' × नामक पुस्तक में महात्मा जी एक पुराने दमे के बीमार का जिक्र करते हुए लिखते हैं कि जिस समय यह बूढ़ा, जिसका नाम लुटावन था, मेरे पास आया, तब उसकी उम्र ७० वर्ष से ऊपर ही होगी। उसे बड़ी पुरानी दमे और खाँसी की व्याधि थी। अनेक वैद्यो के काथ-पुड़ियों और कई डाक्टरों की बोतलो को वह हजम कर चुका था। मैंने उससे कहा कि यदि तुम मेरी तमाम शर्तों को स्वीकार करो और यहीं पर रहो तो मैं अपने उपचारों का प्रयोग तुम पर कर सकूंगा।

× यह पुस्तक सस्ता-साहित्य-मण्डल, अजमेर मे प्रकाशित हुई है।

उस समय मुझे अपने इन उपचारो पर असीम विश्वास था। उसने मेरी शर्त्तों को कबूल किया। लुटावन को तमाखू का बहुत व्यसन था। मेरी शर्त्तों मे तमाखू छोड़ने की भी एक शर्त्त थी। मेरे बताये उपचार तथा धूप मे दिये क्यूनी बाथ से उसे लाभ हुआ पर रात को उसे खाँसी बहुत सताती। मुझे तमाखू पर शक हुआ। मैंने उससे पूछा पर उसने कहा कि मै नहीं पीता। इसी प्रकार कितने ही दिन और बीत गये परन्तु ।लुटावन की खाँसी मे फर्क न पड़ा। इसलिए मैंने लुटावन पर छिपकर नजर रखने का निश्चय किया। हम सब लोग जमीन पर ही सोते थे, इसलिए सर्पादि के भय के कारण मि० कैलनबेक ने मुझे बिजली की एक बत्ती दे रक्खी थी। मै इस बत्ती को लिए हुए दरवाजे से बाहर बरामदे मे बिस्तर लगाये हुए था। और दरवाजे के नजदीक ही लुटावन लेटा हुआ था। क़रीब आधी रात के लुटावन को खाँसी आई। दियासलाई सुलगाकर उसने बीड़ी पीना शुरू किया, मै चुपचाप उसके बिस्तर पर जाकर खड़ा हो गया और बिजली की बत्ती का बटन दबाया। लुटावन घबड़ाया। वह समझ गया। बीड़ी बुझा-कर वह उठ खड़ा हुआ और मेरे पैर पकड़कर बोला:—

"मैने बड़ा गुनाह किया। अब मै कभी तमाखू नहीं पीऊंगा। आपको मैंने धोखा दिया, आप मुझे क्षमा करे।" यह कहकर वह गिड़गिड़ाने लगा। मैंने उसे आश्वासन देते हुए समझाया कि बीड़ी छोड़ने मे उसीका हित है। मेरे बताये अनुमान के अनुसार तुम्हारी खाँसी मिट जानी चाहिए थी, परन्तु वह न मिटी इसी-लिए मुझे शक हुआ। लुटावन की बीड़ी छूटी और उसके दो-

तीन दिन बाद ही उसकी खाँसी और दमा कम हो गया। इसके बाद एक मास में लुटावन पूर्ण नीरोग हो गया।"

जब तमाखू का विष इतना मारक है तो स्वभावत. यह प्रश्न उठता है कि आदमी मर क्यो नहीं जाता ? वह इतने भीषण विषो का प्रयोग करने पर भी जी कैसे सकता है ? इसका एक मात्र उत्तर यही है मानव-शरीर एक असंगठित राष्ट्र के समान दुर्बल नहीं है। वह सहसा अपने किले शत्रु के हाथो मे सौपने के लिए तैयार नहीं हो सकता। मनुष्य को ईश्वर-दत्त प्राण-शक्ति और विष की मारक-शक्ति मे भीषण युद्ध छिड़ जाता है। जबतक यह विष मनुष्य के मस्तिष्क पर विजय प्राप्त नहीं कर लेता, शरीर के रक्षक सिपाही बराबर युद्ध करते रहते हैं। मस्तिष्क के आक्रान्त होने पर भी युद्ध तो जारी रहता है परन्तु तब प्राणशक्ति के विजय की इतनी सम्भावना नहीं रह जाती। आखिर परमात्मा का बनाया हुआ वह राष्ट्र इतना दीन और निर्बल नहीं है जो यो ही आसानी से शत्रु के हाथो मे चला जाय। हाँ, एक बात जरूरी है। एक निर्व्यसनी मनुष्य और व्यसनाधीन पामर के शरीर मे वही अन्तर होगा जो एक शान्तिशील समृद्ध राष्ट्र मे और ऐसे राष्ट्र मे होता है जहाँ शत्रु बार-बार आक्रमण करते रहते हैं, जिसका सारा बल, सारी सम्पत्ति, सारी बुद्धि अपनी रक्षा करने ही में बरबाद हो जाती है। एक व्यसनी और निर्व्यसनी पुरुष में वही अन्तर होगा जो भारत और अमेरिका के बीच है, जो चीन और जापान के बीच है, जो मिश्र और तुर्किस्तान के बीच है; जो अफगानिस्तान और निजाम के राज्य के बीच है। व्यसनो से अपने आपको

छुड़ाते ही दुर्बल से दुर्बल मनुष्य भी उसी तरह बात की बात में बलवान और समृद्ध हो सकता है जैसे तुर्किस्तान।

हमने देखा कि तमाखू के विषैले परमाणु फेफड़े और हृदय तक पहुँचकर मनुष्य के खून को भी अशुद्ध, रोगी और कमजोर बना देते हैं। और आखिर मानव-शरीर मे खून ही तो सब-कुछ है। खून प्राणियों की जीवन-शक्ति का सजीव प्रवाह है। यही शरीर के कोने-कोने तक पहुँचकर हमारे अंग-प्रत्यंग को नवजीवन अर्पित करता रहता है, उनकी थकावट को दूर करता है और जीर्ण भागो को मरम्मत करता है। पर निर्बल और बीमार खून प्राणियो के अंगो को क्या जीवन देगा? शरीर के सैनिक परमाणु भी असंगठित और कमजोर हो जाते हैं। ऐसी अवस्था में जरा-सा मौक़ा मिलते ही हर कोई रोग उस शरीर पर अपना अधिकार कर लेता है।

इसलिए इस बात का यहाँ पर विस्तृत वर्णन देना व्यर्थ है कि तमाखू से कौन-कौन से रोग मनुष्य को होते हैं। मादक चीजो के सेवन करनेवाले सभी लोग रोगो के बहुत जल्दी शिकार होते हैं, बहुत दिन तक बीमार रहते हैं और अधिक संख्या में मरते हैं।

तमाखू और क्षय

क्षय फेफड़ों का रोग है, अतः इसका सब से गहरा सम्बन्ध वायु की स्वच्छता से है। दूषित वायु को अन्दर लेने से क्षय होता है। स्वयं हम अपने श्वासोच्छ्वास द्वारा जो वायु छोड़ते हैं वही इतनी विषैली होती है कि उसका पुनः ग्रहण करना बड़ा खतरनाक है। इसीलिए मुँह ढककर सोना आरोग्यशास्त्र के

अनुसार मना है। अगर ऐसा है तो निकोटाइन जैसे भयंकर विष के परमाणुओ को धारण करनेवाले धुँए को प्रतिदिन घण्टो पीते रहना तो स्पष्ट ही महाभयंकर है। उससे अगर फेफड़ा सड़ जाय तो इसमे आश्चर्य ही क्या ?

तमाखू और हृद्रोग

क्षय और हृद्रोग तमाखू की खास देन है। क्योंकि इसका विष पहले इन्हीं दो अंगो पर आक्रमण करता है। हम ऊपर पढ़ चुके हैं कि किस प्रकार हृदय की आवरणात्मक त्वचा सुन्न हो जाती है और हृदय की गति को विषम बना देती है। यही हृदय का रोग है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण तमाखू-सेवक की नाड़ी की गति को देखने से ही मिल सकता है।

उदर-रोग

खून के अशुद्ध होते ही उसकी गरमी और इसीलिए आँतो में, आवश्यक सत्त्वो को आकर्षण करने की जो शक्ति होती है वह भी स्वभावतः घट जाती है। इसीका दूसरा नाम है अपचन। पेट में अपक अन्न के पड़े रहने से और भी अनेक प्रकार के उदर-रोग होते हैं।

नेत्र-रोग

तमाखू यों तो अपने भक्तो के सारे शरीर में एक प्रकार की शून्यता उत्पन्न कर देती है परन्तु नेत्रो पर उसका सब से अधिक असर होता है। तमाखू के भक्तो की दृष्टि बड़ी कमजोर हो जाती है। इसका प्रमाण आँखो के तमाम वैद्य-डाक्टर दे सकते हैं। आयर्लैंड के लोग तमाखू के कट्टर भक्त हैं! उनमें यह रोग बहुता-

यत से पाया जाता है। जर्मनी और वेल्जियम में भी इसकी अधिकता है। तमाखू के भक्तों में रंगो के लिए अन्धापन आ जाता है। वे भिन्न-भिन्न रंगो, को ठीक तरह नहीं पहचान सकते।

तमाखू और चरित्र-हीनता

इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं कि तमाखू अनेक भारी-भारी पापो की जननी है। इसका प्रवेश होते ही पापों की सेना आती है। तमाखू के सेवन से मनुष्य का चरित्र शिथिल हो जाता है। शराबखोरी और व्यभिचार की तरफ़ वह वहुत जल्दी झुक जाता है। सत्यासत्य नीति-अनीति का विवेक न रहना तो तमाखू-भक्त के लिए एक बिलकुल मामूली बात है।

तमाखू केवल उसके भक्त की ही जान नहीं लेती, वह उसकी सन्तति पर भी हाथ साफ करती है। पिता के तमाखू-रोग पुत्र को विरासत मे मिलते है।

नपुंसकता

डॉ० फूट लिखते है—"मैने देखा है कि तमाखू नपुंसकता के कारणो में से एक मुख्य कारण है। और जब मेरे पास ऐसे लोग इलाज के लिए आते है तो मै उनसे कहता हूँ तुम्हे दो में से एक वात पसन्द करनी होगी। विषय-सुख या तमाखू। तमाखू से प्यार हो तो विषय-सुख से निराश हो जाओ। वास्तव में तमाखू से शरीर की सारी नसे ढीली पड़ जाती है। पर कभी-कभी सारे शरीर पर इसका दुष्परिणाम देर से प्रकट होता है। सब से पहले उसका असर शरीर के सब से अधिक कमजोर अंग पर ही होता है। और चूँकि पुरुप अपनी जननेन्द्रिय का वहुत दुरुपयोग

करता है, तमाखू का विष इस दुर्बल और दलित अग को सब से पहले धर दबाता है।

पागलपन

तमाखू का धुँआ गैस के रूप मे सीधा मस्तिष्क को पहुँच जाता है और वहाँ के ज्ञान-केन्द्रो को सुन्न कर देता है। यह आदत बढ़ जानेपर मनुष्य बहुत जल्दी पागल भी हो जाता है। संसार के पागलो की जाँच करने पर तमाखू पीनेवाले निःसन्देह अधिक पाये जाते है।

ससार के तमाम गरायमान्य डॉक्टरो और वैद्यो ने एवं धार्मिक नेताओ ने तमाखू की निन्दा की है। और समाज को बचाने की कोशिश की है। उनमे से कुछ मुख्य-मुख्य राये इस प्रकार है:—

तमालं भक्षितं येन सगच्छेन्नरकार्णवे ॥—ब्रह्मपुराण

धूम्रपानरतं विप्रं दानं कुर्वन्ति ये नराः।
दातारो नरकं यान्ति ब्राह्मणो ग्रामशूकर ॥—पद्मपुराण

डॉ० रश वारन आदि—तमाखू का जहर दाँतों को हानि पहुँचाता है।

डॉ० कैलन—हमने जितने अजीर्ण के रोगी देखे वे सब तमाखू का सेवन करनेवाले थे।

डॉ० हॉसेक—तमाखू मंदाग्नि का मुख्य कारण है।

डॉ० रगलेस्टर—"तमाखू से पाचन-यंत्रो की शुद्ध रक्त उत्पन्न करने की शक्ति कम होकर सब प्रकार के अजीर्ण-सम्बन्धी रोग हो जाते हैं।"

तमाखू-विरोधिनी-सभा न्यूयार्क—"तमाखू से प्यास बहुत लगती है।

तमाखू के सेवन से जिव्हा के रुचि-परमाणु अपनी संज्ञा-शक्ति खोकर मूर्च्छित हो जाते हैं। इसी प्रकार पाचन-यंत्र के परमाणुओ को मारकर तमाखू मनुष्य के अन्दर मन्दाग्नि की बीमारी उत्पन्न करती है।"

प्रोफेसर सीलीमेन—"तमाखू के दुर्व्यसन से अनेक हृष्ट-पुष्ट और बलवान नवयुवक क्षय के शिकार होकर मर जाते हैं।" (यह हमारे नित्य के अनुभव की बात है।) तमाखू के धुएँ से श्वास-नली और फेफड़े सड़ जाते हैं। इसलिए वहाँ क्षय रोग के जन्तु फौरन अपना अड्डा जमा लेते हैं।"

डॉ० रश—"तमाखू के सूँघने से श्वास की गति मे रुकावट होकर स्वर-यंत्र बिगड़ जाता है।" उत्तम आवाज़ होना भी एक वरदान है। परन्तु मनुष्य इसी वरदान को ख़राब वस्तुओ के सेवन से खो देता है।

विलियम अलकाट—"तमाखू को सूँघने, खाने और पीने से आँखो को भारी नुकसान पहुँचता है।"

डॉ० ऐलिन्सन्—"तमाखू का व्यसन मनुष्य को अन्धा, बहरा एवं जिह्वा और नासिका की शक्ति से हीन बना देता है।"

डॉ० एलिन्सन्—"तमाखू जिन अवयवों को अधिक हानि पहुँचाती हैं उनमे हृदय मुख्य है। तमाखू से उसमे असाधारण गति उत्पन्न हो जाती है और वह विकृत हो जाता है। पहली बार तमाखू पीने से ही हृदय की गति अनियमित और लगभग दुगुनी तेज हो जाती है। आगे चलकर उसकी गति मे इतना अन्तर

पड़ जाता है कि पाँच-छः धड़कनों के बाद एक धड़कन नहीं होती। यदि कहीं ऐसी पाँच-छः धड़कनें न हों तो मनुष्य फौरन मर जावे।" लकड़ी के धुँए से जो दशा रसोई-घर की होती है वही निःसन्देह तमाखू के धुँए से हृदय की भी होती है।

तमाखू से आदमी का खून विषाक्त हो जाता है और उसकी निद्रा नष्ट हो जाती है।

डॉ० निकोलस—"तमाखू का असर जननेन्द्रिय पर भी बहुत बुरा होता है। इससे सन्तानोत्पत्ति में रुकावट आती है। जहाँ स्त्री और पुरुष दोनों को तमाखू का व्यसन होता है वहाँ प्रायः सन्तान का अभाव ही रहता है। व्यसन की अधिकता से स्त्रियाँ वन्ध्या और पुरुष नपुंसक बन जाते हैं।"

अमेरिका में तमाखू के कारखानों में काम करनेवाली अधिकांश स्त्रियाँ वन्ध्या होती हैं।

डॉ० फुटका—"नपुंसकता का एक मुख्य कारण तमाखू का व्यसन भी है।"

डॉ० कावन—"मेरी पवित्र बहनो! रोगोत्पादक अत्यन्त गंदे और निन्द्य तमाखू और शराब के दुर्व्यसनों में फँसे हुए पामरों से हमेशा दूर रहने की मैं तुमको सलाह देता हूँ क्योंकि वे बहुत ही विषयान्ध होते हैं। तमाखू और शराब का सम्बन्ध दिन-रात का-सा है। ये दोनों मनुष्य को दरिद्री, रोगी, शीघ्रकोपी–चिड़चिड़ा और अल्पायु बना देते हैं। इसलिए बहनो, मेरी अनुभवी वाणी को ध्यान देकर सुनो। आज ही से तुम निश्चय करलो कि तमाखू और शराब पीनेवालों से तुम कोई सरोकार न रक्खोगी। निर्व्यसनी पुरुष से ही तुम अपना विवाह करना। कुमारी रहना बेहतर है

परन्तु कभी व्यसनी पुरुष को अपना पति न बनाओ। क्योंकि व्यसनी पुरुष पिता और पति बनने के अयोग्य होता है।" ×

प्रो० नेलसन—"आज-कल बहुत-से बलवान मनुष्य युवावस्था में ही मर जाते है। हृदय और दिमाग की ख़राबी से उनकी मौत बतलाई जाती है। किन्तु खोज से पता लगा है कि उनमें सौ में से ९५ मनुष्य अवश्य ही तमाखू आदि गर्म चीजों के व्यसनी थे। जर्मनी के वैद्यों ने प्रकाशित किया है कि वहाँ १८ से ३५ वर्ष की उम्र मे मरनेवाले मनुष्यो में आधे से अधिक आदमी तमाखू के व्यसन और उससे होने वाले रोगो से मरते है।

चिलम, हुक्का, चुरट और बीड़ी के कारण कई बार एक मनुष्य का रोग दूसरे को लग जाता है।

मानसिक शक्तियों की बरबादी

डॉ० अलकाट—"तमाखू का सूँघना मस्तिष्क के लिए बहुत ही बुरा है।"

डॉ० इर्स्टवेन्स—"तमाखू से धारणा, ध्यान और स्मरणशक्ति दुर्बल हो जाती है।"

डॉ० कैलन—"मेरे अनुभव में कई ऐसे उदाहरण हैं कि तमाखू के कारण वृद्धावस्था के पूर्व ही मनुष्य स्मरणशक्ति और ज्ञान से शून्य हो गये है।।"

तमाखू के दुर्व्यसन के साथ ही संसार मे पागलों की संख्या भी बढ़ रही है।

× The Science of New Life.

गवर्नर सैलिवान—"तमाखू मुझे कभी जड़ और सुस्त किये बिना न रही। उसमे मेरी विषयो के पृथक्करण और सुविचारो के प्रकट करने की शक्ति लुप्त हो जाती थी।"

प्रो० हिचकाक—"अन्य मादक पदार्थों की अपेक्षा तमाखू से बुद्धि की अधिक हानि होती है ; इसके समान इन्द्रियदौर्बल्य, बुद्धिनाश, स्मरणशक्ति की हानि, चित्त की चंचलता, और मस्तिष्क के रोग पैदा करनेवाली वस्तु और नहीं है। मादक पदार्थ बृहस्पति के समान असाधारण बुद्धिमान मनुष्य की बुद्धि को भी नष्ट करके उसे अपना दास बनाकर नचाते है।"

डॉ० फाउलर—"तमाखू से ईसाई प्रजा के बुद्धि-बल को आज तक जो नुकसान पहुँचा है, वह अपार है। ऐसे अनेक मनुष्य, जो संसार मे उपयोगी और कीर्ति-शाली होते, तमाखू के व्यसन से निकम्मे हो गये हैं। उनकी बुद्धि ग़ायब हो गई है।"

डॉ० फोर्बस विन्सलो—(पागलपन के रोगों के विशेषज्ञ) "मै पागलपन के कारणो को इस क्रम से रक्खूँगा—मद्य, तमाखू, और परम्परागत।"

रस्किन—"आधुनिक सभ्यता मे तमाखू सब से खराब राष्ट्रीय ख़तरा है।"

लूथर बरबैंक—(अमेरिका के वाटिका विज्ञान के वेत्ता)-"मैं यह सिद्ध कर सकता हूँ कि मादक द्रव्यो का थोड़ा भी व्यवहार उस कार्य का विरोधक है जिसमे एकाग्रता की आवश्यकता होती है।"

डॉ० चुन्नीलाल बोस—शारीरिक हानियों का वर्णन करने के बाद लिखते है—"लड़को और नवयुवकों के ज्ञान-तन्तुओ और

शरीर के दूसरे भागो में उसके विष के कारण परिवर्तन हो जाता है। मानसिक कार्य करने की शक्ति कम हो जाती है। स्मरण-शक्ति कमज़ोर हो जाती है और वे आलसी हो जाते हैं।"

पं० ठाकुरदत्त शर्म्मा—"अजीर्णता, कास, फेफड़ो के तमाम रोग, त्वचारोग, निद्रानाश, दुःस्वप्न, चक्कर, नेत्ररोग, हृदय और मस्तिष्क की निर्वलता और उन्माद आदि तमाखू से होनेवाले सामान्य रोग हैं।"

[३]

द्रव्यनाश

तमाखू के पीछे जो अपरिमित द्रव्यनाश हो रहा है उसका ठीक-ठीक हिसाब लगाना कठिन है। "पान-बीड़ी-माचीस-सिगरेट" की पुकार हर स्टेशन पर अवश्य सुनाई देती है। वहाँ एक पैसे के चने चाहे नहीं मिलेगे पर बीड़ी और माचीस तो व्यसनी बेवकूफो की सूरतो मे आग लगाने के लिए अवश्य तैयार रहती है। मज़दूर जब मजूरी पर जाता है, तब वह एक पैसे के चने नही लेगा; दो पैसे की तमाखू ज़रूर अपने पास रख लेगा। बाबूसाहब जब दफ्तर मे या घूमने के लिए जाते है तब और कोई खाने-पीने की चीज़ साथ मे नहीं ले सकते; पर सीज़र या पेडरो का एक बक्स जरूर रख लेगे। कुछ हज़रत घर और अकेले मे तो 'खाकी' (बीड़ी) से काम चला लेते हैं पर मित्र-समुदाय मे उन्हे 'मलमल' (सिगरेट) ही चाहिए। ग़रीब आदमी मजूरी पर जाते समय अगर मुट्ठी-भर चने ले जाय और ये बड़े-बड़े बाबू लोग अपनी शान बघारने के लिए सिगरेट या बीड़ी ले जाने के बजाय काम पर अथवा दफ्तर मे जाते समय उतनी ही क़ीमत की कोई पौष्टिक चीज़ रख ले तो उनका दिमाग कितना ताज़ा और शरीर कितना हृष्ट-पुष्ट और नीरोग रह सकता है? परन्तु उन्हे यह सुबुद्धि नहीं होती। कुछ भोले-भाले लोग तो अच्छी सोसायटी मे शामिल होने के लिए इन चीजो का इस्तेमाल शुरू कर देते हैं। और ये अच्छे लोग कौन होते हैं? पतित अफ़सर

और विलासी धनिक। दोनों निकम्मों के राजा! इस जमाने में अच्छेपन की परिभाषा भी बदल गई है। आलसी और चरित्रभ्रष्ट किन्तु साफ-सुथरे कपड़े पहननेवाले पठित मूर्ख अच्छे आदमी और अच्छी सोसायटी कहलाते हैं। उनका मुख्य व्यवसाय होता है दिन भर दफ्तरों और बाज़ारो मे लोगो को लूटकर शाम को क्लब में जाना और वहाँ ताश खेलना, सिगरेट के धुंए के बादलो से वायुमण्डल को दूषित करना और भगवती मदिरा का पान करके अपने मित्रों, गुरुजनो, गृहिणी और पड़ोसी को सुललित शब्दो में आशीर्वाद देना।

आजकल दूध, निर्मल जल और सात्विक भोज्य-पदार्थों से अतिथि और अभ्यागतों का स्वागत करने के बदले उन्हे चबाने के लिए दी जाती हैं सुपारी की सूखी लकड़ी और पीने के लिए बीड़ी या सिगरेट। हुक्का और चिलम आदर-सत्कार की वस्तुएँ समझी जाती हैं।

परन्तु सबसे अधिक दुर्दैव की बात तो यह है कि जिनसे हम ज्ञान-प्रचार की आशा रखते हैं वही साधु, संन्यासी, वैरागी और ब्रह्मचारी लोग इन व्यसनो मे फँसे हुए है। बाबाजी का अखाड़ा व्यसनी और चरित्र-भ्रष्टों का ख़ासा अड्डा समझा जाता है। वहाँ जो-जो बुराई न हो वही ग़नीमत समझिए। भांग, गांजा और तमाखू तो वहाॅ की त्रिपथ-गा भागीरथी है। बाबा जी की धूनी तो मानों स्वयं गंगोत्री या मानसरोवर, और चिमटा शंकर का अवतार। उसका मुख्य उपयोग होता है धूनी मे से आग उठाकर चिलम में रखने के लिए। इनके अखाड़े पर बातें तो ऐसी होती हैं मानो सभी जीवन्-मुक्त जीव हैं। परन्तु यह सब

क्षणभर के लिए। अपने और समाज के कल्याण के लिए घरबार छोड़कर साधुवृत्ति का अवलम्बन करनेवाले, इन साधु कहलानेवाले लोगो के पतन को देखकर मस्तक लज्जा से नीचे झुक जाता है। पर वास्तव मे यह साधु-जीवन नही है और न ये साधु कहलानेवाले सभी साधु हैं। वास्तव मे ये रण-भीरु और कायर गृहस्थ है। गृहस्थी मे असफल होने पर या होने के डर-मात्र से भाग खड़े होनेवाले कायरो का यह समुदाय है। कही स्त्री से लड़ाई हुई, लड़के से निराशा हुई, भाई-बन्दों ने सताया, रोजी-रोजगार से छूटे, किसी प्रियजन की मृत्यु हुई, घर मे आग लगी या चोरी हुई, परीक्षा मे असफल हुए कि हुए बाबाजी। सच्चा वैराग्य और आत्म-साक्षात्कार का प्रेम तो कही ढूँढ़े भी नही मिलता। अन्यथा जिस देशमे छप्पन लाख साधु हों उसके उद्धार मे क्या विलम्ब लग सकता है? पर आज तो ये साधु हमारे गरीब समाज के सिर पर भार-रूप हो रहे हैं। यदि वे अपने अकर्मण्य जीवन को सुधारकर व्यसनो के पंजे से अपने-आपको मुक्त कर ले तो भारत का उद्धार दो दिन मे हो जाय। साधु-समुदाय एक दुर्दमनीय शक्ति है। भारत के साढ़े सात लाख गाँवो मे, यदि वे निर्व्यसनी होकर फैल जायँ और खुद सदाचार पर आरूढ़ होकर समाज-सुधार का बीड़ा उठा ले तो कल ही अंग्रेजों को बोरिया-बिस्तर लेकर भारत से विदा होना पड़े। एक-एक गाँव मे सात-सात, आठ-आठ तेजस्वी साधु वह आग लगा सकते हैं, जो किसी बड़ी से बड़ी सल्तनत के बुझाये नही बुझ सकती।

पर अब तो साधु अकर्मण्यता की खान समझे जाते हैं। हट्टे-कट्टे मजबूत होने पर भी उन्हे भीख माँगते शरम नहीं

आती। और यहां अकर्मण्यता के रोग को फैलानेवाले अड्डे होते है। जो कोई भी उनके अड्डो में जा फँसता है उसे गाँजा, भाँग, चरस आदि मन्त्रौषधियो के प्रयोग के साथ-साथ अकर्मण्यता की दीक्षा दी जाती है। ये साधु छोटे-छोटे बच्चो को भी जो प्रायः उन्हीके पापो की मूर्ति होते है, इसी अकर्मण्यता और नशाबाजी की दीक्षा देते है। वीतराग, इन्द्रिय-निग्रही समझे जाने वाले साधु नशे को अपना विश्वस्त मित्र समझते हैं। एक बार भोजन के बिना वे रह सकते हैं परन्तु गाँजे के बिना नहीं। कई ऐसे भावुक भक्त भी देखे गये हैं जो अन्न के दान के बदले उन्हे गाँजे का ही दान देते हैं।

जो समाज इस क़दर आत्म-हत्या करने पर तुला हुआ है उसका निर्वाह कैसे हो सकता है ? यहाँ तो राजा से ग़रीब तक इस विष के चक्कर में फँसे हुए है। तमाखू मानो अमृत समझी जाती है और उसका खुले आम ज़ोरों से प्रचार हो रहा है। शायद ही कोई ऐसा अख़बार आपको दिखे जिसमे तमाखू का विज्ञापन न हो। अंग्रेज़ी अख़बारो मे तो वर्जिनिया, एलिफेंट महल्ला, लिगेशन आदि सिगरेट-कम्पनियो के विज्ञापनो से पूरे पृष्ठ रंगे हुए होते हैं। और जहाँ नीचे से ले कर ऊपर तक सभी अधिकारी इसके गुलाम है, वहाँ इसे बंद कौन करे ? संसार में बेरोक-टोक इसकी खेती होती है। लाखो-करोड़ो आदमी इसको व्यवहार मे लाने योग्य बनाने के लिए प्रयत्न और और मजूरी करते है और अरबो की संख्या मे इसपर रुपया बरबाद होता है।

'हमे ठीक-ठीक पता नहीं कि संसार मे तमाखू कि कितनी पैदावार होती है, और उसपर कितना रुपया व्यय होता है। यहाँ

तो हमे सिर्फ यही देखना है कि हमारे देश मे तमाखू के नामपर कितने रुपयो की होली होती है।

भारत के भिन्न-भिन्न प्रान्तो मे नीचे लिखे अनुसार तमाखू बोई जाती है। अंक सन् १९२६-२७ के है।

प्रान्त	एकड़
मदरास	२,६५,४०२
बम्बई	१,२२,३९९
बंगाल	२,८०,३००
युक्तप्रान्त	७३,३९४
पंजाब	५४,४०७
ब्रह्मा	१,१८,६०५
बिहार और उड़ीसा	१,१३,०००
मध्यप्रान्त और बरार	१७,५३३
आसाम	८,९९४
उ. प. सीमाप्रान्त	११,०५१
अजमेर-मेरवाड़ा	६३
कुर्ग	२५
दिल्ली	४८३
	१०,६५,६५६

सन् १९२१-२२ मे १२,८६,९७९ एकड़ मे तमाखू बोई गई थी। परन्तु उपर्युक्त संख्या में देशी राज्यो के अंक सम्मिलित नहीं हैं। इसलिए यदि उन्हे भी जोड़ लिया जाय तो शायद तेरह लाख से अधिक एकड़ हो जायँ।

अतः हम मध्यम मार्ग को धारण करके यह माने लेते हैं कि भारत में प्रतिवर्ष १२०००० एकड़ मे तमाखू की खेती होती है।

प्रत्येक एकड़ में तमाखू २०० पौंड से लेकर ३००० पौंड तक होती है। तथापि इसमे भी मध्यम मार्ग १५०० पौंड फी एकड़ उत्पत्ति मान ली जाय तो कुल १,८७,५०,००,००० पौंड तमाखू भारत में होती है। यदि रुपये की दो सेर के भाव से इसकी क़ीमत लगाई जाय तो ४६,८७,५०,००० रुपये की तमाखू प्रति वर्ष यहाँ पैदा होती है।

इसके अतिरिक्त बाहर से नीचे लिखे अनुसार तमाखू आती है :—

वर्ष	आय रु०	पौंड
१९२६–२७	२,५६,११,०००	
१९२७–२८	२,९१,३२,०००	
१९२८–२९	२,७४,६०,०००	७०,००,०००
१९२९–३०	२,६९,७१,०००	४५,००,०००
१९३०–३१	१,५१,११,०००	१५,००,०००

(सत्याग्रह और वहिष्कार का असर)

इसमे से अधिकांश तमाख—लगभग ९२ प्रतिशत संयुक्त-राज्य अमेरिका से आती है। १९२९-३० मे यह परिमाण ९७ प्रतिशत था। तमाखू के अलावा सिगरेट भी आते हैं। विदेशी सिगरेट की आयात इस तरह है:—

	पौंड	कीमत
१९२९-३०	५२५०००० (इंग्लैंड से)	२१३०००००
१९३०–३१	३०,०००० (इंग्लैंड से)	१२२५००००
	१४४००० (चीन से)	२०००००

(वहिष्कार का असर)

और भारतीय तमाखू जो विदेशो में जाती है उसके निकास के अंक ये हैं—

	कीमत	पौंड
१९२६–२७	१०४१५०००	
१९२७–२८	१०६१३०००	
१९२८–२९	१२९४७०००	
१९२९–३०	१०६४२०००	२६००००००
१९३०–३१	१०३६५०००	२८००००००

इस तरह भारतवर्ष मे प्रतिवर्ष लगभग ५० करोड़ रुपये की तमाखू लोग खा, पी, या सूंघ जाते है। फिर भी—यह मूल्य केवल कच्चे माल का है। इसके बाद तो तमाखू पर कई संस्कार होते हैं। देश मे लाखो आदमी इसका व्यवसाय कर रहे है, कोई बीड़ी बनाते है तो कोई नस्य बनाते हैं। सिगरेट के कई कारखाने बने हुए है। हुक्का, चिलम, आदि का बनाना तो एक खास उद्यम बन बैठा है इन सबका हिसाब लगाया जाय तो तमाखू और उसमे आवश्यक अन्य चीजो पर होनेवाला द्रव्य-नाश एक अरब से भी ऊपर बढ़ जायगा।

हमारा देश स्वाधीन नही है। इसलिए सरकार ने न कोई ऐसे अंक एकत्र किये हैं और न प्रयोग ही कि जिससे हमे इन दुर्व्यसनो की भयंकरता का कुछ अनुमान हो सके। इस समय तो हम दोनो तरह से नुकसान मे हैं। एक तो सरकार कुछ ऐसी चीजें हम पर लादती है, जिनसे यद्यपि हमें तो नुकसान है, पर उसे फायदा है। हमारे नुकसान की उसे कोई परवा ही नही। दूसरे ऐसी बुराई को भी वह दूर नहीं करती जिससे उसे

कोई नुकसान तो नहीं पर उसके लिए प्रयत्न करने में व्यर्थ की परेशानी उठानी पड़ती है। तमाखू इन्हीं चीजों मे से है।

प्रतिवर्ष ५०,००,००,०००) की आर्थिक हानि के अतिरिक्त इसके भयंकर विष से न जाने कितने करोड़ मनुष्य प्राणियों की जीवन-शक्ति नष्ट होती है। क्या इस राष्ट्रीय हानि का ठीक-ठीक हिसाब लगाकर उसे दूर करने का बीड़ा उठानेवाला कोई वीर भारत मे है? यह एक ऐसा प्रश्न है जिसमे राजनीतिक, सामाजिक, या धार्मिक कोई रुकावट नहीं है। भारत अपने युवकों की ओर इस दृढ़व्रत के लिए आंखे लगाये हुए हैं।

चाय और काफ़ी

चाय और काफ़ी

आधुनिक सभ्यता में चाय और काफी का बड़ा ऊँचा स्थान है। देहातियो के लिए जिस प्रकार तमाखू है, वैसे ही शहर वालो के लिए चाय और काफी है। हम दीवालो पर लिखा हुआ पाते हैं "चाय गरमी के दिनो मे ठंडक पहुँचाती है और सर्दी में गरमी। चाय थकावट को दूर करती है। एक पैसा चा—पाकिट मे तीन पियाला चाय। लिपटन की चाय पीओ" इत्यादि। स्टेशनो पर "चा गरैम" की आवाज जरूर सुनाई देती है। वैशाख-ज्येष्ठ की कड़ी धूप मे मैने अपने कई सभ्य कहलानेवाले मित्रो को चाय पीते देखा है। अहमदाबाद और बम्बई की सड़के बारहो महीने चाय के प्यालों और रक़ाबियो की खन-खनाहट से संगीत-मय रहती हैं। धनिक लोग इसे अंग्रेजी सभ्यता का एक चिन्ह समझकर अपनाते है, मध्यमवर्ग के लोग कुछ फैशन और कुछ भोज्य पदार्थ के रूप मे इसका श्रीगणेश करते हैं, और ग़रीब लोग इसे नशा समझकर पीते हैं। ग़रीब लोगोमे आजकल इसका प्रचार बहुत बढ़ गया है। बढ़ई-कारीगर, राज-मजदूर से लेकर मेहतर तक नियमपूर्वक इसका प्रातःस्मरण और सेवन करते हैं। प्रसन्नता का विषय है कि उत्तर भारत में चाय और कहवे का उतना भीषण प्रचार नहीं, जितना दक्षिण भारत में है। फिर भी उत्तर भारत के निवासियो को इससे

होनेवाले हानि-लाभ को जान लेना जरूरी है, जिससे कोई इसके चक्कर मे न पड़ने पावे।

चाय एक पौधे की पत्तियो का चूरा है। यह पौधा चीन की चीज़ है। पर अब तो यह भारत और संसार के अनेक भागो मे होता है। चाय मे "थीन" (Theinn) नामक एक ज़हर होता है। वह प्रतिशत तीन से लेकर छ. तक की मात्रा में उन चायों मे पाया जाता है, जिन्हे हम पीते हैं। दूसरी वस्तु जो इसमे होती है, टैनिन (tannin) कहलाती है। टैनिन चाय मे प्राय. प्रतिशत २६ तक की मात्रा मे पाई जाती है।

कॉफी अरवस्तान के एक पौधे का भूना हुआ फल है। यह उस पेसवियन वोली के पौधे से वहुत-कुछ मिलता-जुलता है, जिससे कि कुनाइन प्राप्त होती है।

कॉफी मे कैफिन (caffeine) नामक द्रव्य होता है, जो थीन का ही भाई-वन्द है। इसमे टैनिन भी होता है। परन्तु चाय की अपेक्षा इसमे ये दोनो कही कम मात्रा मे होते है।

कोको मैक्सिको का पौदा है। चोकोलेट (chocolate) इसी-से वनते हैं। कोको मे भी वही जहर प्रतिशत पॉच मात्रा मे होता है। कोको फल को पीस कर, उसमें चीनी आदि मिलाकर, रोटियॉ वनाकर सुखा लिया जाता है। इसीको छोटे-छोटे डिब्बो मे भर कर भेजा जाता है, जिसे हम पीते हैं।

सभ्य समझे जानेवाले राष्ट्रों मे चाय और काफी का प्रचार हुए वहुत दिन नही हुए। कहा जाता है कि अरवस्तान के लोग एक हज़ार वर्ष से कॉफी पी रहे हैं। चीन और जापान में चाय का उपयोग शुरू हुए भी लगभग इतने ही वर्ष हुए। सोलहवो

सदी के मध्य मे कुस्तुंतुनिया मे एक कॉफी की दूकान खोलकर यूरोप में इसका पहले-पहल प्रचार हुआ। वहाँ से इंग्लैंड तक जाने को इसे पूरी एक सदी लग गई। कुस्तुन्तुनिया मे जब यह दूकान खुली तो वहाँ के मुल्ला-मौलानाओ ने इसका जबर्दस्त विरोध किया। वे कहते थे कि कॉफी पीना पैगम्बर साहब की शिक्षाओ के विपरीत है। पर नशो का प्रचार इस तरह नहीं रोका जा सकता। आज तुर्कस्तान कॉफी के कट्टर मे कट्टर भक्तो मे गिना जाता है।

सभ्य संसार में भी शुरू-शुरू में इसका विरोध तो जरूर हुआ, पर उस तरह नहीं, जैसा कि तमाखू का हुआ था। इसलिए इसका प्रचार तेजी से बढ़ने लगा। एक विश्वसनीय अर्थ-शास्त्री का कथन है कि उन्नीसवीं सदी के अन्त तक संसार मे इन चीजो की खपत नीचे लिखे अंको तक बढ़ गई थी—

चाय	३,००,००,००,०००	पौंड
कॉफी	१,००,००,००,०००	पौंड
कोको और चोकोलेट	१०,००,००,०००	पौंड

रूस और हालैंड को भी चाय ही प्रिय है। परन्तु तुर्किस्तान, स्वीडन, फ्रांस और जर्मनी मे काफी का प्रचार अधिक है। भारत मे नीचे लिखे अनुसार चाय की खपत हुई:—

सन्	पौंड
१९१०	१,२४,७७,२९७
१९१५-१६	४,१३,११,९००
१९२१-२२	१६,००,००,०००

इनके दुष्परिणाम

चाय और काफी के रासायनिक गुण-दोष जॉचने के लिए कई प्रयोग किये गये है। डॉ० स्मिथ और डा० रिचर्डसन के प्रयोगो से पता चलता है कि थोड़ी मात्रा मे चाय पीने से हृदय की गति बढ़ जाती है। फेफड़े अधिक मात्रा में कारबोलिक एसिड छोड़ते है। शरीर की गरमी कम हो जाती है, और गुर्दे की भी गति गढ़ जाती है। अधिक मात्रा मे चाय पीने से जी मिचलाता है, आदमी वेहोश हो जाता है और अन्त मे उसकी मृत्यु हो जाती है। डॉ० एडवर्ड स्मिथ ने दो औंस काफी जिसमे ७ ग्रेन कैफिन का जहर होता है क्वाथ पिया तो वे वेहोश हो कर जमीन पर गिर पड़े थे।

डॉ० केलॉग, चाय से एक घोड़े की मृत्यु किस तरह हुई, इसका हाल यो लिखते है—

"ब्रिटिश फौज के एक ऊँचे अफ़सर का प्यारा घोड़ा बड़ी विचित्र प्रकार से मर गया। उनके रसोइये की गलती से एक चाय के वोरे के अन्दर कुछ पौंड चाय रह गई। सईस आया और उसने उसी वोरे मे चने भरे और घुड़सवार फ़ौज के और घोड़ो को चने वॉटता-वांटता आया और जब उसमे थोड़े-से रह गये,तो वह वोरा इस अफ़सर के घोड़े के सामने रख दिया। स्वभावतः इसके हिस्से सब से ज्यादा चाय आई। घोड़ा तो चनो के साथ मे चाय भी खा गया, पर उसका नतीजा यह हुआ कि वह जानवर नशे मे चूर हो गया, अपने पिछले पैर उछाल-उछालकर खूब कूद-फॉद मचाने लगा और अन्त में एक खाई मे गिरकर मर गया!"

जीवन-शक्ति का ह्रास

डा० स्मिथ, डा० गाजू और कई बड़े-बड़े डाक्टर खोज के बाद इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि चाय और काफी पीने पर शरीर का क्षय तेजी से बढ़ जाता है। कारण कि इसके सेवन से शरीर के अन्दर से निकलनेवाले 'कारबोलिक एसिड' का परिमाण बढ़ जाता है। फेफड़ों के भीतर से निकलनेवाली "कारबोनिक एसिड" की मात्रा शरीर के क्षय का परिमाण जानने का सर्वोत्तम साधन है।

शरीर-क्षय की यह मात्रा सारे शरीर-क्षय के १० वे भाग से लेकर $\frac{1}{4}$ भाग तक पहुँच जाती है। नतीजा यह होता है कि जो लोग अधिक पौष्टिक अन्न और वह भी अधिक मात्रा मे खाते है, वही इस व्यर्थ के क्षय को बरदाश्त कर सकते है। इसके मानी कम से कम यह तो जरूर हुए कि श्रीमान् लोगो के लिए यह व्यसन उतना बुरा चाहे न हो परन्तु मामूली लोगो के लिए तो अवश्य ही नुकसानदेह है।

पाचन-शक्ति का बिगड़ना

अनेक तजुर्बेकार डॉक्टरो का निश्चित मत है कि चाय और काफ़ी से पाचन-शक्ति तो बिगड़ती ही है, अनावश्यक मात्रा मे और बहुत गरम-गरम द्रव शरीर के अन्दर पहुँच जाने से सारी पाचन-क्रिया अव्यवस्थित हो जाती है। आस्ट्रेलिया के एक प्रसिद्ध डाक्टर ने ब्रिटिश मेडिकल असोसियेशन के एक अधिवेशन मे कहा था कि चाय और काफी निश्चित रूप से आदमी के शरीर मे बदहज़मी का रोग पैदा करते हैं। सर विलियम रॉबर्ट का कथन है कि थोड़ी-थोड़ी मात्रा मे चाय और काफी का सेवन

करने से भी हमारे शरीर के पाचक क्षार कमजोर हो जाते हैं, जिससे अन्न के पौष्टिक तत्त्वो के सत्त्वो को हमारा शरीर नही खीच सकता, दूसरे शब्दो मे यही अग्निमांद्य अथवा अजीर्ण होता है।

दन्त रोग

चाय और काफी बहुत गरम-गरम पी जाती है। इतनी अधिक गरमी से दांतो की जड़े कमजोर हो जाती हैं। इसी कारण हम देखते है कि चाय और बरफ का अधिक उपयोग करने वाले लोगो के दॉत अक्सर कमजोर रहते हैं। बहुत ज्यादा गरम और बहुत ज्यादा ठंडी चीजे दॉतो के लिए हानिकारक होती हैं।

चाय और काफी से स्नायुओ को क्षणिक उत्तेजना तो मिलती है, परन्तु उनसे मनुष्य की यथार्थ शक्ति या खून नही बढ़ने पाता। इसलिए चाय का प्रभाव कम होते ही शरीर पर प्रतिक्रिया आरम्भ होती है और शीघ्र ही शरीर सुस्त हो जाता है।

नैतिक प्रभाव

जो लोग चाय पीने के बहुत अधिक अभ्यस्त होते हैं, उनके आचरण पर भी इसका स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। एक प्रसिद्ध स्नायु-विशेषज्ञ (Neurologist) ने (Journal of Mental and Nervous Diseases में) उपर्युक्त सत्य के विषय मे इस प्रकार लिखा है—"बहुत दिनो तक चाय का सेवन करने से जैसे बदहजमी की शिकायत होती है वैसे ही आदमी का स्वभाव भी चिड़-चिड़ा हो जाता है।" प्रत्येक दातव्य संस्था में, खास-

कर वृद्धो की मे, चाय पीनेवालो की अधिकांश संख्या होती है; इसका परिणाम यह होता है उन लोगो में चिड़चिड़ापन, शारीरिक दौर्बल्य, और नींद न आना आदि दोप पाये जाते है।"

न्यूयार्क (अमेरिका) के प्रसिद्ध डॉक्टर मार्टन ने चाय और काफी के दुष्परिणामो की बड़ी सावधानी के साथ जॉच की है। हम उनकी इस जॉच के परिणामो मे से कुछ महत्वपूर्ण अंश नीचे देते हैं।

"चाय और काफी के सेवको का स्वास्थ्य बहुत जल्दी गिर जाता है। यहाँ तक कि वे अपने काम-काज को भी भली-भाँति नही सम्हाल सकते। अगर कुछ करते भी है तो उससे उनके स्वास्थ्य को बड़ी हानि पहुँचती है। अपने लम्बे अनुभव से मुझे तो कहना पड़ता है कि जिन लोगो को वर्षों से चाय पीने का अभ्यास पड़ गया है उनके स्वास्थ्य को तात्कालिक और हमेशा टिकनेवाली हानि पहुँचती है। अमेरिका के एक बहुत बड़े धनिक व्यापारी ने कहा था—"मुझे एक लाख डॉलर की हानि हो जाय तो परवा नही, पर मै यह कभी पसन्द नही करूँगा कि मेरा लड़का चाय पीने लग जाय।"

हम जितनी चाय पीते हैं उसकी मात्रा देखते हुए हमे पहले-पहल यही खयाल होता है कि इतनी-सी चाय से क्या हानि होती होगी! परन्तु जब उसकी चाट हमे लग जाती है,तभी हमे उसकी शक्ति और बुराई का खयाल होता है। एक शराबी, अफीमची और तमाखू-भक्त की तरह चाय भी आदमी को लाचार बना देती है। कई भले आदमी चाय की आदत लग जाने पर उसके इस तरह गुलाम बन जाते हैं कि यदि किसी दिन ठीक

समय पर चाय नहीं मिल पाती तो उनका सिर घूमने लग जाता है, बुखार हो आता है, हाथ-पैर दुखते है, और सारा बदन टूटने लगता है। काम-काज मे दिल नही लगता ! ऐसा मालूम होता है, मानो शरीर मे कोई बल नही रहा।

चाय के दुष्परिणामो को जॉचने के लिए डॉ० मार्टन एक ऐसे आदमी का उदाहरण पेश करते हैं, जिसे बेहद चाय पीने की आदत थी। ऐसे मामलो मे जो परिणाम पाये जाते है, उनसे कम परिमाण मे चाय पीने के असर का भी अनुमान भली-भॉति किया जा सकता है। चाय के एक मरीज़ का वे यो वर्णन करते हैं.—

"चाय पीने पर दस ही मिनट मे उसका चेहरा तमतमा उठता है। सारे शरीर मे गरमी मालूम होती है, और मस्तिष्क कुछ हलका मालूम होता है। ऐसा अनुभव होता है, मानो एका-एक कहीं से बहुत-सी बुद्धि आकर दिमाग़ में घुस गई। उसे प्रसन्नता मालूम होती है, मारे आनन्द के हृदय नाचने लगता है, चिन्ताऍ और कष्ट अदृश्य हो जाते हैं। सारा विश्व आनन्दमय और आशामय मालूम होता है। शरीर हलका और फुर्तीला मालूम होता है। विचार सुलझे हुए और खूब आते हैं, वाणी खिल उठती है, पहले की अपेक्षा बुद्धि अधिक तेज़ और चपल मालूम होती है। और यह सब भ्रम नही। आप उससे बाते कीजिए और वह आपको थका देगा। ऐसी-ऐसी गप्पे लगायेगा कि आप चकित हो जावेगे।'

क़रीब एक घण्टे के बाद प्रतिक्रिया का आरम्भ होता है। कहीं थोड़ा-सा सिर-दर्द मालूम होता है। चेहरे पर शिकने पड़ने

लगती हैं, वह सूख जाता है, आँखें निस्तेज-सी हो जाती हैं। पलकों के नीचे के हिस्से पर स्याही छा जाती है।

दो घंटे के बाद तो प्रतिक्रिया पूर्ण रूपेण आ जाती है। वह गरमी न जाने कहाँ चली जाती है। चेहरे की सुर्खी नदारद। हाथ-पाँव ठंडे। सारे शरीर मे कँपकँपी-सी आ जाती है। वह प्रसन्नता न जाने कहाँ रफू-चक्कर हो जाती है। मानसिक निराशा धर दबाती है।

इस समय वह ऐसा चिड़चिड़ा हो जाता है कि बात-बात पर तनक उठता है। कही जरा-सा खटका होते ही वह चौंक पड़ता है, बेचैनी बढ़ जाती है और थकावट के मारे वह चूर-चूर हो जाता है। अब कोई काम करने की हिम्मत उसमे नहीं रह जाती। न चल सकता है, न बैठने को जी चाहता है।

यह तो एक बार चाय लेने का परिणाम है। इस समय शराब वगैरा नशीली चीजे पीने की बहुत इच्छा होती है। पेशाब की हाजत बार-बार और खूब होती है। कुछ बदहजमी भी मालूम होती है।

चाय की आदत बढ़ जाने पर सिर-दर्द की शिकायत बार-बार होती है। आंखो को घुमेरे आती हैं, कानो मे सन-सन सी सुनाई देती है ऐसा मालूम होता है, मानो अपने आस-पास की सारी चीजे घूम रही हैं। नींद कम आती है, नींद मे आदमी उठ-उठ कर भागता हैं। खूब सपने आते है। बदहज़मी की शिकायत बढ़ जाती है। भूख का कोई ठिकाना नही रहता। खट्टी-मीठी डकारे आती रहती है। परन्तु डकार के समय कुछ कष्ट होता है।

ऐसे कट्टर चाय-भक्त की मनोदशा विचित्र होजाती है। उसे हमेशा किसी न किसी चीज़ का डर बना रहता है। अगर कहीं मोटर मे बैठता है तो यह डर लगता है कि यह कहीं किसी दूसरी मोटर से टकरा न जाय। रेल मे पुलो और पहाड़ो के टूटने का डर रहता है। रास्ते मे चलते वक्त मोटर और गाड़ियो के नीचे कुचल जाने का भय रहता है। यह भी डर लगता है कि कहीं कोई मकान का हिस्सा या छप्पर का कोई खपरैल उसके ऊपर गिर न पड़े। कुत्तो को देखते ही उसे उनके काटने का भय होता है।"

डा० मार्टन ने जितने चाय-बाजो की जाँच की सबके अन्दर यही लक्षण उन्हे मिले। तब उन्होंने खुद चाय पीकर देखा और अपनी जाँच का फल बिलकुल ठीक पाया। इसके बाद उन्होंने अपने ये सारे अनुभव प्रकाशित कर दिये। उनके आविष्कारो का खण्डन करने का खूब प्रयत्न किया गया। पर इसका कोई असर न हुआ। उल्टे दूसरे डाक्टरों ने भी डा० मार्टन की जाँच को ही सत्य पाया।

इंग्लैड के सुविख्यात डॉक्टर सर बी० डब्ल्यू० रिचर्डसन लिखते हैं:—

"चाय से बदहज़मी की शिकायत शुरू हो जाती है; शरीर के स्नायु कमज़ोर हो जाते है और मानसिक दुर्बलता बढ़ जाती है। लोग इस शिकायत को दूर करने के लिए शराब का सहारा लेते है। इस तरह एक से दूसरी बुराई बढ़ती है।"

काफ़ी तो चाय की बहिन है। उससे भी बदहज़मी होती है। इस कारण यह चाय से भी भयंकर है। नींद कम हो जाती है। जब आदमी को गहरी नींद मे सोकर थकावट को मिटाना

चाहिए उस समय ये दोनो बहने—चाय और काफी—आदमी के दिमाग़ को बेचैन किये डालती हैं।

इसके बाद जो वैज्ञानिक आविष्कार हुए हैं उनसे तो पता चलता है कि चाय और काफी का थीन नामक द्रव्य यूरिक एसिड से बहुत-कुछ मिलता-जुलता है। यूरिक एसिड वही भयंकर द्रव्य है, जो प्राणियो के पेशाब मे पाया जाता है। × इसलिए चाय या काफी का मनुष्य के शरीर पर वही असर होगा, जो मूत्र के उत्पन्न होने वाली एसिड की दवा पीने से हो सकता है।

पर यह होने पर भी चाय के भक्त इसकी प्रशंसा करते-करते नहीं थकते। बात यह है कि इन विषैले द्रव्यो के नशे ने बड़े-बड़ो और बुद्धिमान लोगो तक को भ्रम मे डाल रक्खा है। ऐसे लोग प्रत्येक नशीली चीजो के गुणो को गिनाते है। पर वे नशे के आवश्यक धर्म को नहीं जानते इसलिए एक भ्रम मे पड़ जाते है।

चाय के भक्त कहते हैं—

"चाय से शक्ति बनी रहती है, थकावट दूर होती है। हाजमे को सहायता मिलती है, सिर दर्द अच्छा हो जाता है। क्षुधा की शान्ति होती है। मनोबल बढ़ता है! भिन्न-भिन्न जगहो का पानी नहीं लगता, और चित्त की प्रसन्नता बढ़ती है।"

परन्तु वास्तव मे देखा जाय तो यह सब भ्रम है। प्रत्येक प्रकार के विष का थोड़ी मात्रा मे सेवन करने से वही परिणाम होता हुआ जान पड़ता है। परन्तु वास्तव मे उसका असर भयंकर ही होता है। विष जब संज्ञा और चिंतन के ऊंचे केन्द्रो को मूर्छित कर देता है तो निम्न केन्द्रो पर से मस्तिष्क का अधि-

× URIN यूरिन—पेशाब और रक्त—पेशाब का—पेशाब-सम्बन्धी।

कार उठ जाता है। शरीर बिना ब्रेक की गाड़ी और ड्राइवर के इंजन की तरह मन-माना दौड़ने लग जाता है। उसमे विचार और चेतन-शक्ति नहीं होती। मस्तिष्क के निम्न केन्द्रो के विचार और भाव उच्छृंखल हो जाते हैं और हमे मालूम होता है कि हमारी विचार-शक्ति उत्तेजित अथवा जागृत हो उठी है। जिन बातों को दूसरो पर प्रकट करने मे मामूली अवस्था मे हमे संकोच और लज्जा मालूम होती है, नशे मे हम बेधड़क उन्हे बोलते और लिखते चले जाते है।

चाय, तमाखू, काफी अथवा दूसरा कोई नशा आपकी थकावट को मिटाता नहीं। थोड़ी देर के लिए आपको उत्तेजित कर देता है। एक दुबले-पतले भूखे बैल को मार-मार कर कितनी देर तक काम ले सकते हैं? किराये के इक्केवाले अपने घोड़े को शराब पिलाकर उसकी थकावट को भुला देते है और उससे खूब काम लेते हैं। पर यह कबतक हो सकता है? चाय के कारण बद-हजमी के शिकार बने हुए लोग भी अपने दुर्बल पाक-यन्त्र को चाय की ओर लगाकर उससे कुछ दिन अन्न हजम करवा लेगे। परन्तु आगे चलकर के ऐसा प्रसंग कभी आ सकता है, जब चाय के मनमाने प्याले पीने पर भी पाक-यन्त्र अन्न को हजम करने से इन्कार कर देगा। सिर दर्द को रोकने, बुखार भगाने, मनो-बल को बढ़ाने आदि बाते भी इसी श्रेणी की हैं। आसन्न-मृत्यु प्राणी की छटपटाहट को जिस तरह कितने ही लोग स्वास्थ्य और नीरोग होने के आशाप्रद लक्षण समझते हैं, वही हाल नशीली चीजों से बीमारियाँ अच्छी होनेवाली बातों का भी है।

तमाखू, भांग, गांजा, काफी जैसे हानिकर पदार्थों की खेती और पैदायश एक गुनाह समझी जानी चाहिए। इसका पीना

और पिलाना दोनों पाप समझे जाने चाहिएँ। पर हमारे यहाँ तो जुदी बात है। आजकल वही आदर और आतिथ्य की प्रधान वस्तु हो गई है। जहाँ सारा संसार बावला हो रहा है, तहाँ निन्दा भी किस-किस की की जाय ? भारत केवल अपने पीने के लिए ही चाय नही पैदा करता।

भारत मे आसाम, बंगाल और दक्षिण भारत की पहाड़ियो पर चाय के बाग़ है। भारत में चाय की खेती प्रायः पूर्ण-रूपेण गोरो के हाथों में ही है और वे भारतीय मजदूरो से काम लेकर इस खेती से बेहद फायदा उठाते है। चाय के खेतो पर मजदूरो को बड़ी बुरी तरह रक्खा जाता है! गुलामों की अपेक्षा भी बद-तर सलूक उनके साथ होता है। गुण्डे गोरो के भारतीय मज-दूरो की स्त्रियो पर बलात्कार की हम कई खबरे पढ़ते है। फिर न जाने कितनी कहानियाँ तो वहीं दब जाती होंगी? इस तरह चाय की खेती भारत के लिए एक तरह से दुगुनी शर्म की चीज़ है। एक तो चाय जैसी अनावश्यक और हानिकर चीज़ को पैदा करके विदेशों पर लादने मे हम भाग लेते है, और दूसरे वहाँ जानेवाले भारतीय मजदूरो के सम्मान की हत्या के कारण बनते है।

चाय पहले-पहल आसाम मे जंगली पौदे के बतौर उग रही थी। सन् १८२० मे इसका पता चला। शीघ्र ही ईस्ट-इंडिया कम्पनी का ध्यान उसने आकर्पित किया और सन् १८३५ में उसने एक प्रयोग-क्षेत्र कायम किया। पाँच साल तक उसे चलाकर उसने इस बाग़ को आसाम कम्पनी के सुपुर्द कर दिया उसने कुछ वर्ष प्रयोग किये। पर चाय की खेती की व्यापारिक ढंग से शुरूआत तो सन् १८५६ और १८५९ के बीच हुई तब

से एक सौ वर्ष के भीतर ही भीतर इसने इतनी अद्भुत उन्नति की कि आज हिन्दुस्तान संसार मे सबसे अधिक चाय उत्पन्न करनेवाले देशो मे गिना जाता है। १८७५ के बाद चाय की खेती का नीचे लिखे अनुसार विकास हुआ:—

वर्ष	एकड़ हजारो मे	पैदायश लाख पौडो में
१८७५-७९	१७३	३४
१८८५-८९	३०७	९०
१९००-१९०४	५००	१९५
१९१०	५३३	२४९
१९१५	५९४	३५२
१९२०	६५४	३२२
१९२५	६७२	३३५
१९२९	७१२	४०१
१९३०-३१	८०५	×

भारतीय चाय–व्यवसाय मे ६८६ जाइण्ट स्टॉक कम्पनियॉं काम कर रही हैं। १९३०-३१ मे उसमें ५३,४३,८६,००० की पूँजी लगी हुई थी। शेअर होल्डरो को २१ से लेकर २०० प्रतिशत तक नफा बॉटा गया था। १०० रुपये के शेअर के भाव सन् १९२९ मे ३०३ था, सन् ३० मे २७८ और सन् ३१ मे २४८ था।

प्रान्तवार वर्गीकरण इस प्रकार है।

प्रान्त	एकड़ (हज़ार)	हजार पौंड	प्रतिदिन मज़दूर
आसाम–			
सरमावेली	१४५	७३७८४	१५६४८९
आसाम वेली	२८५	१८५१५७	४००९९५
कुल	४३०	२५८९४१	५५७४८४
बंगाल–			
दार्जिलिंग	६१	२३००९	६५५२२
जलपाइगुडी	१२८	८५४२७	१२५६३२
चटगॉव	६	१५१७	५७४५
	१९५	१०९९५३	१९६८९९
मदरास–			
निलगिरी	३२	११४०७	३०७५९
मलावार	१३	६४९३	१२८३२
कोइंवतूर	२२	९७००	२७२१७
अन्य	×	३४	४४
	६७	२७६३०	७०८५२
कुर्ग	×	१६९	६२०
पंजाव	१०	१९३०	१०९९५
युक्तप्रान्त	६	१४८९	३८७१
विहार-उडीसा	४	८५३	२९०२
ब्रिटिश-भारत मे कुल	७१२	४००९६५	८४३६२३
देशी राज्य	७७	३२०३३	८६८४९
समस्त भारत कुल वगीचे ४७४२ भारतीयों की मालिकी की ५२१	७८९	४३२९९८	९३०४७२

× पॉच सौ एकड़ से कम

यद्यपि भारत मे इतनी चाय पैदा होती है तथापि इसमे से यहां बहुत कम अर्थात् ५,७०,००,००० पौंड खपती है। फी आदमी खपत .१८ पौंड है तहां इंग्लैंड मे ९.२० है। अधिकांश चाय यहॉ से इंग्लैंड को ही जाती है। संसार मे जितनी चाय लगती है उसमे से प्रतिशत ४० चाय हिन्दुस्तान देता है। इधर तीन-चार वर्षों मे नीचे लिखे अनुसार चाय का निकास हुआ.-

वर्ष	वजन, लाख पौंड	कीमत, लाख रुपये
१९२६—२७	३४९०	२९०४
१९२७—२८	३६२०	३२४८
१९२८—२९	३६००	२६६०
१९२९—३०	३७७०	२६०१
१९३०—३१	३५७०	×

भारत की चाय के ग्राहक प्रतिशत————

देश	२८—२९	२९—३०
ग्रेट-ब्रिटेन	८३ ०	८४.२
शेष युरोप	२ ०	२ २
एशिया	५ ८	३ ८
अमेरिका	५ ७	५ ८
आस्ट्रेलिया	१ ६	१.३
आफ्रिका	१ ९	२ ७

ग्रेट-ब्रिटेन मे जानेवाली चाय मे से बहुत अधिक तादाद वहॉ से दूसरे देशो को पुनः भेज दी जाती है।

सन् १९३१ वर्ष का भारत के चाय के व्यापार के लिए बड़ा ही नुकसान-देह रहा है। १९२३ से २७ तक तो चाय की क़ीमत ठीक रही। पर २८ से बहुत गिरने लगी। सारी चायों

की कीमत प्रतिशत २५ गिरी। भारत की चाय के भाव तो प्रतिशत ५० गिर गये।

बाहर जानेवाली चाय का थोक नीलाम होता है।

पिछले वर्षों के भावो का औसत देखिए:—

	रु० आ० पा० फी पौंड
१९०१–२ से १९१०–११ तक	०— ६— ०
१९२४–२५	०—१५—११
१९२७–२८	०—१४—१०
१९२८–२९	०—११— ४
१९२९–३०	०— ९—११
१९३१–३२	०— ६— ५

भारत की ६५ कम्पनियो के लाभ-हानि
का व्यौरा इस तरह है

	१९१३	१९२४	१९२८	१९२९
२ फी एकड़ नफा पौंडो मे	६–१०–७	१५–२–०	१०–०–०	६–९–०
३ फी पौंड नफा पेन्सों मे	२ ६	६.४	३.८४	२.२६
१ फी एकड़ पैदायश पौंडों मे	५९९	५६०	६२५	६८४

इन अंकों से साफ ज्ञात होता है कि यद्यपि पैदायश खूब बढ़ गई है, व्यापारियो का नफा उतना नहीं बढ़ा। इसका कारण है संसार मे—खास कर सुमात्रा और जावा में चाय की अत्यधिक उपज।

भारत के मजदूरो की अवस्था की जांच करने के लिए जो रॉयल कमीशन आया था उसने अपनी रिपोर्ट सन १९३१ में

प्रकाशित की है। जिसमे मजदूरो के लिए कुछ सुविधाएँ करने के लिए सिफारिशे की है।

बाजार मे चाय की पौंड लगभग १) के भाव से मिलती है। इस हिसाब से भारत मे—लगभग पांच करोड़ रुपये की चाय प्रति वर्ष खपती है।

काफी का इतिहास जरा अन्धकार-पूर्ण है। ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता कि भारत मे इस देवी का आगमन कब हुआ। पर दक्षिण भारत में यह कहानी बहुत प्रचलित है कि बाबा बुदन नामक एक मुसलमान यात्री मक्का से लौटते समय दो सदियो पूर्व मैसूर मे इसके सात बीज लाया था। सम्भव है यह सच हो। परन्तु अंग्रेजी इतिहासकार कहते हैं कि उन्नीसवीं सदी के आरम्भ मे काफ़ी भारत मे आ चुकी थी। सन् १८२३ मे फोर्ट ग्लास्टर को एक परवाना दिया गया था, जिसमे कलकत्ता मे उसे कपड़े की मिल, काफ़ी की खेती और शराब की डिस्टिलरी खोलने के लिए आज्ञा दी गई थी। पर उत्तर भारत मे कही उसके पैर न जमे। आखिर काफ़ी ठेठ वही जा पहुँची, जहाँ दो सदियो पहले उसके आगमन की कहानी प्रचलित थी। आज नीलगिरी पहाड़ की घाटियाँ काफ़ी से लहलहा रही हैं।

वर्ष	पैदायश हजार कार्टरो मे
१९२५	२७२.१
१९२८	३१७.५
१९२९	२४७.८
१९३०	३५०.०

नीचे लिखे अनुसार प्रतिवर्ष काफी विदेशो में जाती रही है:—

सन्	कार्टर	सन्	कार्टर
१९०२-३	२६९१६५	१९२४-२५	२४२०००
१९१०-११	२७२२४९	१९२५-२६	२०५०००
१९१९-२०	२७२६००	१९२६-२७	१५००००
१९२१-२२	२३५०००	१९२७-२८	२७७०००
१९२२-२३	१६९०००	१९२८-२९	१९८०००
१९२३-२४	२१८०००		

जब से संसार मे ब्राजिल की सस्ती काफी का प्रचार हुआ है, भारत के काफी के व्यापार को बड़ी हानि उठानी पड़ रही है।

पर भारत मे दिन-ब-दिन काफी का प्रचार बढ़ रहा है। देखिए अंक क्या कहते है। संख्या कार्टरो मे है।

१९२५	२०२००	१९२९	१०५२००
१९२६	५६५००	१९३०	१०९०००

काफी की खेती मे प्रतिदिन १९२९-३० मे औसतन ९२५०४ मजदूर काम करते थे।

भांग, गांजा इत्यादि

भांग, गांजा इत्यादि

चाय और तम्बाकू जिस तरह आजकल की सभ्यता के अनुगामी और सेवकों की प्रिय चीजे हैं, उसी प्रकार भांग, गांजा और चरस प्राचोनता-प्रेमी व्यसनियो की प्रिय वस्तु है। आज चाय तो शहरो और क़स्बो मे आपको मिलेगी। पर भांग का प्रचार छोटे से छोटे देहात तक मे है। यह भारतीयों का प्रिय पेय है। जहाँ-कहीं साधु-संत वैरागी और राम, कृष्ण और खासकर शंकर के मंदिर हैं, (और भारत मे ये सर्वत्र हैं) वहाँ-वहाँ जरूर भाँग और गाँजे का निवास है। यह नियम इतना सत्य है, जैसा कि न्यायशास्त्र का "यत्रयत्र धूम्रस्तत्र तत्रवन्हि:" वाला प्रमेय। वल्कि मै तो इससे भी आगे वढ़कर यह कहूँगा कि ये भाँग, गाँजे और चरस का समाज मे प्रचार करनेवाले जीते-जागते प्रचारक है। चाय, काफी और कोको का प्रचार हमारे देश मे इतनी तेजी से इसलिए वढ़ा कि वह हमारे शासको का व्यसन था। [और गुलाम तो अपने शासको की वुरी आदतो का सव से पहले अनुकरण करते हैं, चाहे उनके गुण आवे या न आवें। गुणो का अनुकरण करने मे आत्म-संयम और काफी प्रयास की जरूरत भी तो होती है। अ.र आदमी गुलाम तो तव होता है जव वह आरामतलव हो जाना है। इसलिए एक जाति की हैसियत से गुलाम राष्ट्र दुर्गणो का ही अनुकरण करता है। जिस क्षण ही वह सद्‌गुणों का अनुकरण या अवलम्वन करने लग जायगा हमें समझ लेना चाहिए कि उसकी गुलामी का जाना

अब नज़दीक है] पर भॉग-गॉजा तो यहीं की चीजे हैं, इनके प्रचारक तो ५६ लाख उत्साही साधु और गॉव-गॉव मे मंदिर हैं। मंदिरो और साधुओ द्वारा भक्ति का प्रचार कितना होता है सो तो भगवान ही जाने। पर वे प्राय. भंगेड़ियो के अड्डे तो ज़रूर होते हैं। शाम-सुबह गॉव के लोग बाबाजी की धूनी पर और शहरो के सेठिया तथा गुंडे वग़ैरा अपने बाग़-बगीचो या शहर के बाहरवाले मन्दिरो मे भांग छानने अथवा गॉजे का दम लगाने के लिए नियम और एकनिष्ठापूर्वक एकत्र होते हैं। नाना प्रकार के व्यापार, उद्यम, कला-कौशल आदि की बातें और सलाह-मशविरा करके अपने जीवन-संघर्ष को सौम्य बनाने एवं देश को लाभ पहुँचाने वाली बातें सोचने के बजाय, आज ये लाखो स्थान दुर्गुणो को बढ़ाने का काम कर रहे हैं। तीर्थ-स्थानो में तो यह बुराई और भी अधिक परिमाण मे पाई जाती है। प्रत्येक घाट और मंदिर निश्चित रूप से भॉग का अड्डा होता है। ब्राह्मणो को प्राय. सिवा दान मॉगने और खाने के कोई काम नहीं रहता! यात्री लोग वहॉं पहुँचते ही रहते है; इनको वे मूँड़ते हैं और फिर दिन भर अपना समय इन्हीं व्यसनों मे और व्यभिचार मे बरबाद करते हैं। तीर्थ-स्थानो मे जानेवाले या तो भावुक लोग होते हैं या लापरवाह धनिक। भावुक-जन धर्म समझ कर इन लोगो को धन दान करते हैं और लापरवाह धनिक लोग शौक़ के लिए, मनोरंजन के लिए। जैसे चार दूसरे भिखमंगो को टुकड़ा डाल देते हैं वैसे ही इन्हे भी वे कुछ न कुछ दे ही देते हैं। ऐसे भक्त जनो को और धनिकों को भी अब से सावधान हो जाना चाहिए। भक्तो को चाहिए कि वे कुपात्रो को दान न दें। और धनिको को ऐसे शौक़ और मनोरं-

जनों से दूर रहना चाहिए जो दूसरे को गिराने वाले हो। ऐसे शौक और मनोरंजन निर्दोप चीजे नहीं प्रत्यक्ष पाप हैं। अस्तु।

मालूम होता है, भाँग हमारे देश की वहुत पुरानी चीज है। "इसका सबसे पहला उल्लेख अथर्ववेद मे × मिलता है? वेदो मे सोम के साथ-साथ भॉग की भी उन पॉच पेयो मे गणना की है जिनको पाप-मोचन पेय बताते है। इससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि वैदिक ऋपि जानते थे कि भॉग एक नशीली चीज़ है। ऋग्वेद के कौशीतकि ब्राह्मण मे भी इसका उल्लेख पाया जाता है। सुश्रुत ने इसे कफ-वर्द्धक बताया है।"

भॉग के पौदे की दो जातियाँ है। एक नर और दूसरी मादा। नशीले पौदे को नर (गॉजा) कहा जाता है और मामूली पौदे को मादा। पर वास्तव मे वनस्पति-शास्त्र के अनुसार यह वर्गीकरण ठीक विपरीत है। क्योकि जो नर पौदा होता है वह नशीला नहीं होता। इसलिए लोग उसे उखाड़ कर अलग कर देते हैं और मादा पौदा जिसमे फल और बीज नहीं होते, रहने दिया जाता है। इसीलिए शायद इस मादा पौदे को यहाँ नर कहने की चाल पड़ गई है। केवल इस पौदे का वर्गीकरण चाहे गलत हो, पर चीन और भारत के प्राचीन साहित्य को देखते हुए हम यह अच्छी तरह जान सकते है कि पौदो की नर मादा इस तरह दो जातियो का पश्चिम ने आविष्कार किया उससे कहीं, पहले से हम लोग उसे जानते थे।

× D. Watts Dictionary of the Economic Products of India

भाग का पौदा तमाखू की ही तरह पूरा विष का पौदा है। इससे भी भाग, गाजा और चरस तीन चीजें पैदा होती है। सुश्रुत ने भांग या गांजे के पौदे का स्थावर विषो मे उल्लेख किया है और इसकी जड़ मे विष माना है। (सुश्रुत कल्प, २ अध्याय)

यूरोपियनो ने गाँजे और सन के पौदे को एक-जातीय माना है वे उसे Cannabis ı emp कहते हैं। परन्तु हमारे देश मे गॉजा और सन का पौदा अलग-अलग माने गये हैं।

भॉग के पौदे का फूल गॉजा, पत्ती भॉंग, और उसका गोंद चरस कहलाता है। सभी चीजे नशीली है। भॉग खाते हैं। उसका पेय बना करके पिया भी जाता है, भांग की माजूम भी बनती है। लोग भोजन को रंगतदार बनाने के लिए मिठाइयो में भी भाग डाल देते है।

गॉजा तमाखू की तरह पिया जाता है। भॉग से गांजे का नशा कही तीव्र होता है और गाँजे की अपेक्षा चरस बहुत ज्यादा तीव्र होता है। लोग चरस को तमाखू के साथ पीते हैं। चरस भांग की पत्तियो और फूलो पर लगा रहता है। इसके निकालने की तरकीब बड़ी अजीब होती है। आदमी को नंगे बदन या चमड़े का कोट पहनाकर भांग के खेतो मे दौड़ाते हैं। तब वह चरस अपने-आप उसके बदन में लग जाता है। चरस भारत मे बहुत कम पैदा होता है। भारत मे भांग के फूलों मे बहुत कम मात्रा मे लगा रहता है। चरस के कारण गॉजे का (फूलो का) नशा बढ़ जाता है। भारत मे तो मध्य-एशिया से चरस आता है। इसे बोखारी तथा यारकन्दी चरस कहते हैं। नेपाल में बोखारी चरस अच्छा समझा जाता है। दिल्ली प्रान्त में गढ-

बहादुर नामक स्थान चरस की ख़ास जगह है।

गाँजा पीने से बात की बात मे नशा आता है। आंख का रंग सुर्ख पड़ जाता है और सिर चक्कर खाने लगता है! हमारे देश में लोग भांग पीने से वैसे ही मतवाले हो जाते है। गांजा पीनेवालो का -दिमाग़ बहुत जल्दी बिगड़ जाता है। भाँग पीने से भी चित्त की स्थिरता चली जाती है और अत्यधिक भाग पीने से आदमी पागल हो जाता है।

पहले सब लोग बिना रोक-टोक गांजे-भांग की खेती किया करते थे। परन्तु १८७६ ई० मे सरकार ने फी लेने का कानून चलाया। गांजा तैयार करने पर सरकारी गोदाम को भेज दिया जाता है। इस कर से सरकार को बहुत फायदा होता है।

गांजे भांग चरस के विषय मे सरकार की नीति "हेम्पड्रग्स कमिशन" की सिफारिशों पर आधार रखती है। गॉजे की खेती करने के लिए सरकार से पहले आज्ञा लेनी पड़ती है। नियत समय के बाद फसल की जाँच होती है। फसल का अन्दाजा लगाया जाता है। व्यापारी या किसान अपने माल को बेच भी सकता है परन्तु बेचने पर भी माल को तो सरकारी गोदाम मे ही रखना पड़ता है। गोदाम से माल ले जाते समय उसपर सरकार को कर देना पड़ता है। थोक और फुटकर बिक्री के लिए सरकार से आज्ञा लेनी पड़ती है।

बाहर से आनेवाली चरस पर फी मन ८०) आयात कर देना पड़ता है। चरस भी सरकारी गोदाम मे ही रखनी पड़ती है। वहाँ से ले जाते समय फिर दोबारा कर देना पड़ता है। प्राय. भांग पर भी कर लिया जाता है! इन तीनो चीजो को

बेचने के हक नीलाम किये जाते है। इसमे भी साधारण नीति वही है जो अफीम के विषय मे सरकार ने क़ायम कर रक्खी है।

सरकार तो अपनी तरफ से भांग, गांजा, चरस आदि को बहुत उपयोगी बतलाती है। हमे पता नहीं कि इस उपयोग के मानी क्या हैं? यदि वे सचमुच उपयोगी हो तो उन्हे बतौर औषधि के भले ही डाक्टर या वैद्य के द्वारा मरीज़ों को दिया जा सकता है। परन्तु देश मे इतने बड़े पैमाने पर उनकी खेती करके उनके बेचने के हक नीलाम करना और इस तरह इन चीजो के व्यवहार को एक टके कमाने का साधन बना देना, किसी अच्छी सरकार को शोभा नही देता।

सन् १८६० से लेकर १९०० तक सरकार ने भांग, गांजा, वग़ैरा की आय ११ लाख से बढ़ाकर ५९ लाख तक कर ली थी।

सन् १९०१ से तफ़सीलवार अङ्क यो है—

वर्ष	रुपये	वर्ष	रुपये
१९०१	६१,८३,८७३	१९१३	१,३६,५९,१६३
१९०४	६८,०३,०९८	१७१७	१,४९,२४,४४८
१९०७	८८,४९,५०३	१९१८-१९	१,५९,२१,३७९
१९१०	१,०६,९५,७८९	१९२८-२९	२,५०,००,०००

परन्तु आय के साथ-साथ इन चीजो के व्यवहार मे भी निस्सन्देह वृद्धि हुई। हम पीछे शराब और अफीम के अध्याय में भी बता चुके हैं कि सरकार ने जान-बूझकर यह ग़लत नीति अख़्त्यार कर रक्खी है कि ज्यो-ज्यो कर बढ़ते जावेगे, नशीली चीजो का व्यवहार घटता जायगा परन्तु वास्तव मे ऐसा होता नही। सरकार ने भांग-गांजा आदि के विषय मे निश्चित नीति नहीं रक्खी है। प्रत्येक प्रान्त में भिन्न-भिन्न कर रक्खे गये हैं

यहां तक कि एक ही प्रान्त में कहीं-कहीं भिन्न-भिन्न जिलो में भी अलग-अलग कर लगाये गये हैं।

मालूम होता है इस विषय मे सरकार ने अपनी नीति बिलकुल व्यापाराना ढंग पर रक्खी है। "जिन चीजो का लोगो को बहुत भारी व्यसन है, उनपर अधिक कर लगाया गया है। हाँ यह सावधानी जरूर रक्खी जाती है कि कहीं आय घटने न पावे। जिन चीजो की मांग बहुत ज्यादा नहीं होती उनपर कर कुछ कम कर दिया जाता है।" × जहां बिक्री निश्चित है वहां अगर कुछ अधिक क़ीमत बढ़ा दी जाय तो भी ग्राहक आते ही हैं। और जहां प्रतिस्पर्धा का डर रहता है, या यह खयाल रहता है कि लोग उस चीज के बिना भी काम चला लेंगे, वहाँ पर व्यापारी कीमतें कम कर लेता है जिससे ग्राहको को ख्वाहमख़्वाह उन चीजो को खरीदने का प्रलोभन हो।

इस नीति का क्या फल हुआ है सो देखिए:—

भांग-गांजा-चरस की खपत

फी १०,००० लोगो मे। अंक सेरो के है।

	वर्ष १९०१	वर्ष १९११-१२
मद्रास	१०.६	११.७
बम्बई	२०.	३८.५
बंगाल	३२.९	३५.१
आसाम	३९.	५२.३
युक्तप्रान्त	९३.५	६४.७
पंजाब	६०.८	६०.७
मध्यप्रदेश-बरार	२५.४	३६.७
सिंध	३३७.८	३६७.३

× The Drink & Drug Evil by Badrul Husein

युक्तप्रान्त को छोड़ सारे प्रान्तो में इन चीजों की खपत हम बढ़ी हुई देखते है। सन् १९११ से लेकर १९१८–१९ तक प्रत्येक प्रान्त मे इस प्रकार इन मादक चीजो की खपत थी। अंक सेर के है.—

प्रान्त	११-१२	१६-१७	१७-१८	१८-१९
बम्बई	×	१७८०००	१५८०००	१६७०००
मदरास	४७०००	४८०००	४७०००	४५०००
पंजाब	१२०००	× ×	११८०००	११३०००
मध्यप्रदेश बरार	५८०००	४५०००	४५०००	३९०००
आसाम	३४.००	२९०००	२३०००	२५०००
विहार-उड़ीसा	१२५०००	९३०००	९१०००	९३०००
बंगाल	१५९०००	१०८०००	१०१०००	१०६०००

इस तरह सन् १९११–१२ मे जहाँ इन मादक द्रव्यो की खपत समस्त भारत मे २३५००० सेर थी वहाँ ७-८ ही वर्षों मे १९१८-१९ मे वह बढ़कर दूनी से भी ज्यादा अर्थात् ५,८८,००० सेर हो गई और अब सन् १९२८-२९ के अंको से पता चलता है कि वह पूरे ६००००० सेर पर पहुँच गई है। आसाम, सिंध, पंजाब और युक्त प्रान्त इसके विशेष प्रीतिपात्र नजर आते हैं।

श्रीयुत अब्दुलहुसेन अपनी The Drink and the Drug Evil in India नामक पुस्तक मे लिखते है—

"In a word the Government is not above profitting from the sins of the people and trafficking with their weakness. If a tithe of that thoroughness which has marked the executing of the drug policy had been given to a better cause the course of the Indian History would have been different. The Drug policy has tempted the strong and demoralised the weak. It has exploited the rich and the poor and it has ruined both young and old, the strong and the infirm of all classes of creeds and races".

अर्थात् मादक पदार्थों के विषय मे सरकार की नीति ऐसी नहीं रही जैसी कि होनी चाहिए। लोगो के पापो से फायदा उठाने और उनकी कमजोरियो को अपने व्यापार के साधन बनाने मे वह कोई बुराई नहीं देखती। मादक द्रव्यो के सम्बन्ध मे उसने जो नीति धारण कर रक्खी है और उसपर जिस दक्षता के साथ अमल कर रही है अगर उसका दसवां हिस्सा दक्षता वह किसी अच्छे काम मे बताती तो आज वह भारतवर्ष के इतिहास को ही बदल देती। सरकार की आबकारी नीति ने सच्चरित्र लोगो के सामने प्रलोभन उपस्थित किया है और कमजोर आदमियो को गिरा दिया है। उसने गरीब और अमीर सबको एक-सा लूटा और उनको धोखा दिया है और उसने सभी वर्ग, धर्म और जाति के बूढ़े और जवान तथा कमज़ोर और ताकतवर स्त्री-पुरुषों का सर्वनाश किया है।

कोकेन

कोकेन

कोका नाम का एक पौदा होता है। उसके अन्दर अन्य द्रव्यो के साथ-साथ, कोकीन नाम का द्रव्य भी होता है। सबसे पहले सन् १८५९ मे नीमन नाम के विज्ञानवेत्ता ने इसका पता लगाया था। यह एक बड़ा भयानक जहर है और इसका असर थीन, केफीन, गारेनीन तथा ब्योत्रोमीन नामक घातक विषो के समान ही होता है जो डॉ० वेनेट के मतानुसार अँतड़ियाँ, स्वांस-प्रणाली, ग्रंथि-प्रणाली और रक्त-प्रवाह-प्रणाली के ऊपर बहुत ही घातक असर डालता है।

कोका के पौदे की कुल पचास जातियाँ है। ये वृक्ष ऊष्ण प्रदेश में ही होते है। भारतवर्ष मे इसकी छ जातियाँ है। इसका मूलस्थान पेरू बोलिविया (दक्षिण अमेरिका) है। "भारतवर्ष मे अभी उसकी खेती बतौर प्रयोग के सीलोन, दक्षिण-भारत और बंगाल-आसाम के चाय-बाग़ान मे की जा रही है। कोकेन नामक अतीव मादक पदार्थ इसी के रस से बनता है। इसकी पत्तियां भी इतनी उत्तेजक होती है कि उनके सेवन से आदमी की नींद उड़ जाती है। पर अभी यहाँ इससे कोकेन बनाना शुरू नहीं हुआ है। इसलिए इसकी पैदायश पर कोई रोक-टोक नहीं है।

भारतवर्ष मे कोकेन का व्यापार दिन-ब-दिन बढ़ता जा रहा है। सन् १९०३ में बम्बई की सरकार ने इसे पहले पहल अपने मादक द्रव्यो की फेहरिस्त मे शुमार किया। और प्रान्तो मे भी अब तो इसकी बिक्री और व्यवहार पर नियंत्रण है; परन्तु यो

छिपे तौर पर इसका प्रचार भारत मे बहुत भारी परिमाण मे है। इसके भक्त-जन ऊँचे वर्ग के लोगो मे से ही प्राय: होते है जो सामाजिक बन्धनो के कारण शराब या अफीम का खुले तौर पर व्यवहार नही कर सकते। ब्रह्मदेश मे तो स्कूल के लड़को तक मे यह बुराई फैल गई है। भारत मे वेश्याओ के यहाँ इसकी अधिक खपत है। व्यभिचारी लोग क्षणिक उत्तेजना के लिए इसका उपयोग अक्सर करते है।

भारत मे कोकेन पैदा नही होती। कहा जाता है कि यहाँ वह प्राय: जर्मनी और जापान से आती है। औषधीय उपयोग के लिए इसकी आयात नियमित है। परन्तु व्यसनी लोग और धन के लोभी व्यापारी उसे चुरा-चुराकर मँगाते है। यद्यपि कानून से इसकी बिक्री की मुमानियत है तथापि बहुत भारी परिमाण मे यह भारत मे खपती है। बम्बई, कराची, कलकत्ता, मद्रास मारमागोआ और पांडीचेरी की राह से यह छिपे-छिपे कभी अखबारो की पार्सल मे तो कभी संदूको मे, कभी कपड़ो के गट्ठड़ों मे तो कभी किताबो के बक्सो मे, आती है, और चुपचाप भारत के प्राय: तमाम बड़े-बड़े शहरो मे फैल जाती है। देहली लखनऊ, मेरठ, लाहौर, मुलतान, सूरत, अहमदाबाद इसके खास अड्डे बताये जाते हैं।

इस समय इंग्लैड मे इसकी कीमत ३० से लेकर चालीस शिलिंग फी औंस तक है। भारत मे अधिकतर दवा बेचनेवालो के यहाँ वह २७ से लेकर ३१ रुपये फी औंस के भाव से बिकती है। परन्तु मौका पड़ने पर व्यसनी लोग एक-एक औंस के ४००) रुपये तक दे कर ले जाते हैं।

प्रत्येक प्रान्त मे इसके व्यवहार पर भिन्न-भिन्न क़ानून हैं। बम्बई में इसके विषय मे यो प्रतिवन्ध है। "वही आदमी विदेशो से कोकेन मॅगा सकता है जिसने परवाना हासिल कर लिया है। डाक से कोकेन मंगाना विलकुल मना है। कलेक्टर की आज्ञा विना कोकेन की कोई विक्री नहीं कर सकता। पास रखना, देश से वाहर भेजना तथा एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना भी मना है। डॉक्टरी नुसखा मिलने पर भी मामूली आदमी ६ ग्रेन से अधिक कोकेन अपने पास नहीं रख सकता और सुशिक्षाप्राप्त डॉक्टर २० ग्रेन से अधिक नहीं। इन नियमो के भङ्ग करनेवालो को अधिक से अधिक एक वर्ष की क़ैद या २००० रुपये तक का दण्ड हो सकता है। बार-बार यही अपराध करनेवाले की सजा वढ़ती जाती है। कोकेन के व्यौपारी को मकान किराये पर देनेवाले को भी सजा दी जाती है।"

इस भयंकर विष की आयात और खपत के अंक नहीं मिल सके।

उपसंहार

अब जरा हिसाव लगाले कि हम इन बुराइयो के पीछे कितनी बलि चढ़ाते है। भारतवर्ष मे प्रतिवर्ष व्यसनो पर हम लगभग इस तरह रुपये बरबाद करते हैं—

(प्रत्यक्ष करो-द्वारा)

देशी शराव	१७००००००
विदेशी शराव	३५००००००
अफ़ीम	२०००००००
भांग-गांजा आदि	२५००००००
	२५०००००००

लगभग २५ करोड़ रुपये हम सिर्फ करो द्वारा देते है। पर जनता की वास्तविक हानि तो इससे कई गुना अधिक है। शराबी या नशाबाज इन करो के अलावा इनके बनाने पैदा करने मे लानेवाले श्रम, साधन, देखभाल, और दूकानदार का नफा इतनी चीजे और अधिक देता है। इसलिए विशेषज्ञो ने अनुमान लगाया है कि केवल मादक द्रव्यो के पीछे भारत १००,००,००,००० से ऊपर स्वाहा कर देता है।

शराब या दूसरा नशा करने पर वेहोशी या नशे की हालत मे उसकी जो अन्य आर्थिक हानि होती है— घर धुल जाता है उसका यहाँ हिसाव नही लगाया है।

इसके अतिरिक्त लगभग

७५,००,००,०००	तमाखू पर
५,००,००,०००	चाय में
१,००,००,०००	काफी मे
८१,००,००,०००	
१००,००,००,०००	शराब गांजा, भांग, अफीम
१८१,००,००,०००	कोकेन और जूए मे जो रुपये नष्ट होते है उसका हिसाब नहीं है।

लगभग सवादो अरब रुपये हम केवल व्यसनो मे बरबाद कर देते हैं। (अधिकांश चाय बाहर जाती है। उसकी पैदायश और व्यापार मे जो धन लगता है वह भी भारत के लिए तो प्रत्यक्ष हानि हो है। इसलिए अगर उसे भी जोड़ लिया जाय तो सारी हानि सवादो अरब के लगभग जा पहुँचती है।)

दूसरी जबर्दस्त बुराई है व्यभिचार। कौन ठीक-ठीक अनुमान लगा सकता है कि यह राक्षस कितनो के गृह-सौख्य को नष्ट करता होगा, कितनो को महाभयंकर गुप्त-रोगो का शिकार बनाता होगा, और उसके कारण प्रतिवर्ष कितने बालको की हत्या होती होगी !

शराब आदि मादक द्रव्यो की पूर्ण बन्दी की आशा वर्तमान सरकार से करना मूर्खता होगी। क्योकि एक तो वह उसकी आय का एक प्रधान साधन है,और दूसरे इस देश के बारे मे उसे इतनी आत्मीयता नहीं हो सकती जितनी स्वराज्य-सरकार को हो सकती है। जिन लोगो को सरकार से इस विषय मे आशाएँ थीं उन सबकी आँखे उन स्वयंसेवको की गिरफ्तारियों और उन

पर किये गये लाठी चार्जों ने खोल दी जो शराब की दूकानों के सामने खड़े रहकर शराबियो को समझाते थे और उनके सामने नम्रतापूर्वक लेट-लेटकर उन्हे रोकते थे। इसके लिए तो प्रजा की तरफ से ही पूरा प्रयत्न होना चाहिए तभी काम चलेगा।

लोक-सेवा का यह विशाल क्षेत्र उन सार्वजनिक सेवको और सार्वजनिक कल्याण की भावना रखनेवालो को निमन्त्रित कर रहा है। वास्तव मे समाज के अन्दर फैली हुई बुराइयो को खानगी प्रयत्नो से दूर करने के लिए ही दान-संस्था का जन्म हुआ है। परन्तु हमारे देश मे कई स्थानो पर इन्हीं को अमर बनाने के लिए दानो का दुरुपयोग हो रहा है। व्यसनो और व्यभिचार से बचने के लिए बच्चो के चित्त पर शुरू से अच्छा संस्कार डालना चाहिए। पाठशालाओ मे उनकी शिक्षा ही इस ढंग से होनी चाहिए, जिससे इन बातो के प्रति उनके दिल मे पूरी घृणा हो जाय। पुराणो का और कथाओ का उपयोग सिर्फ पुरानी कहानियाँ सुनाने तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए। वे कहानियाँ या पुराण ऐसे हो जिससे जनता का जीवन ऊंचा उठे। नाटक, सिनेमा आदि लोकशिक्षण के लिए बड़े उपयोगी है। इनसे भी काम लिया जाना चाहिए। पर सवाल यह उठता है कि इतना धन कहां से लावे ? इसका उत्तर है अपनी दान-संस्था को शुद्ध करो। चक्कियो मे केसर-कस्तूरी पीसकर देव-प्रतिमा को उसका दिन मे छ: बार लेप करने, ४ बार भोग लगाने या नौ बार वस्त्र बदलने से परमात्मा खुश नहीं होगे। यह अंध भक्ति है। परमात्मा के असंख्य पुत्रो को नारकीय जीवन व्यतीत करते हुए छोड़कर यदि हम उसके दरबार मे उत्तमोत्तम

.भेंट भी लेकर उपस्थित होंगे तो वे स्वीकृत नहीं, हो सकतीं। दानो का उपयोग इस व्यथित मानवता—अज्ञान मे पड़ी हुई मानवता को उबारने के लिए हो। पश्चिम के अन्य देशों की भाँति इनके लोकोपकारक ट्रस्ट बन जाने चाहिए जो जनता की आवश्यकताओं को देखकर अपनी शक्ति और समय के अनुसार पाठशालाएँ, व्यायाम-शालाएँ, दुग्ध-शालाएँ, नाटक कम्पनियाँ, सीनेमा की फिल्म कम्पनियाँ आदि खोलकर स्वावलम्बन के सिद्धान्त पर लोक-शिक्षा का काम करे।

हमारे देश के धनिक एवं पढ़े-लिखो के अन्दर जिस दिन अपनी जिम्मेवारी का यह भाव जागृत हो जावेगा उस दिन भारतवर्ष का सारा रूप ही बदल जायगा।

भारत में

व्यसन और व्यभिचार

व्यभिचार

कथापि खलु पापानामलमश्रेयसे —माघ

पापियों की कथाएँ भी बड़ी अकल्याणकर होती हैं।

Vice is a monster of so frightful mien
As, to be hated, needs but to be seen
Yet seen too oft, familier with her face,
We first endure, then pity, then embrace

Alexander Pope

पाप, भयानक शकलवाला एक ऐसा दैत्य है कि इससे घृणा करने के लिए इसकी सूरत-भर देख लेना काफी है। लेकिन बार-बार देखने से आदमी उसकी घृणित सूरत से कुछ अभ्यस्त-सा हो जाता है। अभ्यस्त होने के बाद हृदय में उसके प्रति सहन-शीलता बढ़ती है, सहन-शीलता बढ़ी नहीं कि आदमी को उस पर दया आ जाती है। जहाँ एक बार दया आई नहीं कि मनुष्य ने उसका आलिंगन किया नहीं। अतः ईश्वर न करे कि इस राक्षस के कभी दर्शन हों!

[१]

प्रास्ताविक

अब मै एक ऐसे विषय पर कुछ लिखने का साहस कर रहा हूँ जो अत्यन्त नाजुक है। इस विषय पर लिखते हुए मेरी लेखनी काँप रही है। हर एक बात हर एक मनुष्य के मुख से शोभा नही देती। प्रत्येक विषय पर कुछ कहने के लिए अधिकार की जरूरत है, अनुभव की आवश्यकता है। मेरे पास न तो अनुभव है और न अध्ययन से प्राप्त होनेवाला अधिकार। पर हमारे समाज मे यह भीषण पाप जिस तरह फैल रहा है, उसे देखकर मुझे बड़ा दुःख हो रहा है। अपनी आँखो के सामने भयंकर से भयंकर प्रकरणो को देख-कर चुपचाप बैठे रहना मेरे लिए असम्भव हो रहा है। फिर भी परमात्मा की दया से मुझे ऐसे सत्संग का लाभ प्राप्त हुआ है, जिससे समाज के पूर्ण पतन की कहानी, मै समझता हूँ, मेरे कानो तक नही पहुँच पाई है। पर मै यह जरूर कहूँगा कि जो-कुछ भी मैने सुना है या देखा है, वह मेरे हृदय को दहला देने के लिए, मेरे विचारों में क्रान्ति कर देने के लिए काफी था। हवा किस ओर बह रही है यह जान लेने के लिए दूर से किसी पेड़ की पत्तियो को या तिनको और धूल को देख लेना भी काफी है। उसमें स्वयं उड़ जाने की आवश्यकता नही। मुझे इस विषय में संदेह नही है कि समाज की दशा क्या है। हाँ, समाज को उसकी

भयङ्कर अवस्था का ज्ञान कराके मैं सचेत कर सकूंगा या नहीं इसमे मुझे जरूर संदेह है। इसलिए ऐसे काम के लिए जरूरत थी किसी वुजुर्ग अनुभवी वैद्य या डाक्टर की, जिन्होने इस विपय का शास्त्रीय ढंग से अध्ययन किया हो। जिन्हे अपने दैनिक अनुभव से यह ज्ञात हो कि समाज मे यह बुराई कितनी फैली हुई है, उसमें मुख्य कारण क्या है, तथा उसे कैसे दूर किया जा सकता है। वड़ा अच्छा होता अगर कोई ऐसे सज्जन इस विपय पर लेखनी उठाते और हमारा उपकार करते। सौभाग्य वश हमारे देश मे एक-से-एक प्रतिभाशाली वैद्य और डाक्टर भी हैं। परन्तु दुर्भाग्य की वात तो यह है कि उन्हे अपने व्यवसाय से ही अवकाश नहीं मिलता। जिसे भोजन करने और सोने को भी समय न मिले वह वेचारा हजार इच्छा होने पर भी पुस्तक-लेखन-जैसा शांति-युक्त काम कैसे कर सकता है?

दूसरे वैद्य और डाक्टर हैं उनमे या तो ऐसा उत्साह ही नहीं या वे यह आवश्यक ही नहीं समझते कि इन विपयो का ज्ञान जनता को कराया जाय।

हॉ, कहने-भर को हिन्दी में इस विपय पर कुछ साहित्य प्रकाशित हुआ है। एक-दो मासिक पत्र भी स्त्री-पुरुपो से सम्बन्ध रखनेवाले विपयो पर समय-समय पर कुछ लिखते रहते है और व्यभिचार से जनता को सावधान करने का कुछ प्रयत्न करते है। परन्तु उनका ढंग ऐसा विचित्र है कि कुछ समझ मे नहीं आता कि उनका वास्तविक उद्देश्य क्या है? जिन वातो से जनता को वचाना चाहिए उन्हें वे ऐसे ढंग से उनके सामने रखते है कि इन पापों से सावधान होकर दूर रहने के वजाय लोग पापों की

तरफ ललचाने लगते हैं। जिन पापो का पाठकों को खयाल भी नही होता उनके नये-नये संस्करण अनजान पाठक जान जाते हैं और जानकर उनमें लुभा जाते हैं। कुछ लोगो ने समाज का असली स्वरूप प्रकट करने के उद्देश से इन पाप-कथाओ को प्रकाशित करना शुरू किया है। मेरे ख्याल से समाज-सुधार का यह तरीका बड़ा ही खतरनाक है। पर मै देखता हूँ कि मूढ़ जनता उस प्रवाह में बराबर वही जा रही है। जीवन को सात्विक और शुद्ध बनानेवाले साहित्य को पढ़ने का कष्ट बहुत कम लोग उठाते है, और ऐसी पतित अभिरुचि उत्पन्न करनेवाली चीजों की तरफ़ वे बड़ी बुरी तरह आकर्षित होते रहते है। इसमे जनता का उतना दोष नही जितना लोक-मत को बनानेवाले—उसका नेतृत्व करने वाले साहित्य-सेवियो का है। क्या वे अपनी महान् जिम्मेवारी को समझेंगे ? आजकल समाज मे जो विषय-लोलुपता दिखाई देती है—विद्यार्थियो मे जो बुरी तरह से पापाचार फैला हुआ है, उसका कारण मुझे बहुत बड़ी हद तक हमारी यह असावधानी ही मालूम होती है ! और भी कारण हैं, जो हमारे भावी राष्ट्र के नागरिको को पतन की ओर ले जा रहे हैं। परन्तु साहित्य सुविचार का स्रोत है। लोक-मत पर उसका बहुत भारी प्रभाव पड़ता है। इसलिए उसका पवित्र होना बहुत जरूरी है। साहित्य-क्षेत्र इतना गन्दा हो जाने पर भी लोगों की अभी बहुत-कुछ श्रद्धा उस पर बनी हुई है। अतः वह अच्छे उदाहरण सुरुचि को बढ़ानेवाली अच्छी चीजे जनता के सामने रक्खेगा तो समाज की अन्य अनेक बुराइयो को भी हम शनैः-शनैः दूर कर सकेंगे। पर आज तो हमारा साहित्य अनेक स्थान पर

कुपथ्य का काम कर रहा है। सद्भाव-पूर्वक और जनता को व्यभिचार से बचाने के शुद्ध हेतु से लिखे हुए साहित्य में भी ऐसे कई स्थान हैं जिनके द्वारा व्यभिचार घटने के बजाय बढ़ने ही की सम्भावना है। यह सब देखते हुए यदि इस विषय पर कुछ लिखते समय अपनी जिम्मेवारी का भान मुझे दबाये तो आश्चर्य नहीं। मैं नहीं कह सकता कि अपने आपको इस दोष से कैसे बचा सकूंगा। मै प्रयत्न करता हूँ। पाठक अपने दिल को हाथ मे लेकर अपनी तथा अपने समाज की कमजोरियो की गहराई को देखें और उससे ऊपर उठने की कोशिश करे। अपने आपको और अपने बालको को इन बुराइयो से बचाने के ख़याल को मद्दे नजर रखकर ही वे इस हिस्से को पढें।

[२]

एकान्त का पाप

पराधीनता परमात्मा का निष्कारण शाप नहीं है। मानवजाति के कर्म-चक्र में उसका एक निश्चित स्थान है। उसकी पूर्व-स्थिति धार्मिक, राजनैतिक और सामाजिक दुर्बलता होती है। यदि आक्रामक राष्ट्र असाधारणतया शक्तिशाली न हो तो कोई नीरोग राष्ट्र पराधीन नहीं बनाया जा सकता। भारतवर्ष की वर्तमान दुरवस्था केवल पराधीनता का प्रसाद नहीं है। पहले वह पतित हुआ, असंगठित हुआ तभी विदेशियो की यहाँ बन आई। पहले उसने अपनी शक्ति को गंदे क्षेत्रों मे बहाकर दुर्बल होने का पाप किया, तभी पराधीनता रूपी दण्ड परमात्मा ने उसे दिया। अब अगर उसे फिर उठना है तो वह अपनी बुराइयो को दूर करे, नीरोग हो जावे। दुर्बलता अपने आप भाग जायगी। ज्योही उसके शरीर मे नवीन खून दौड़ने लगेगा, पराधीनता को इसकी ओर आँख उठाकर देखने की हिम्मत तक न होगी।

हम नैतिक दृष्टि से अपने आपको उन्नत मानते हैं। परन्तु केवल ऊँचा नैतिक साहित्य होने-भर से कोई देश उन्नत नहीं कहा जा सकता। जबतक हम उस नीति को आचार में परिणत नहीं करेंगे तबतक वह व्यर्थ है। वह धनी कैसा जिसे

अपने धन का उपयोग करने की स्वतंत्रता नहीं है—शक्ति नहीं है ?

व्यभिचार एक ऐसी सामाजिक बुराई है जो प्रत्येक राष्ट्र के लिए अत्यन्त हानिकर है। फिर भारत की इस विशिष्ट परिस्थिति मे यह बनिस्बत अन्य राष्ट्रों के उसके लिए अधिक कष्ट-कर है। परन्तु स्वयं इस बुराई के परिणाम ही इतने भयंकर हैं कि उन्हे देखकर दिल थर्रा जाता है।

संसार में और हमारे देश में यह अनेक रूपों मे फैली हुई है। स्त्री-पुरुषो के जीवन-सत्व को नष्ट करने के जितने भी तरीके हैं, सभी ऐकान्तिक पाप है। और चूंकि *इस जीवन-सत्व का दुरुपयोग करना प्रकृति और परमात्मा के प्रति अपराध है, मनुष्य को इस पाप के फलस्वरूप कड़ा से कड़ा दण्ड भी प्रकृति देती है।* मनुष्य इस संसार की सरकारो के दण्ड से भले ही एक-आध वार या पूरी तरह बच जाय परन्तु प्रकृति बड़ी न्याय-कठोर है। वह उसे कदापि नहीं छोड़ती।

और क्या आप को पता है कि हमारे समाज मे यह पाप किस कदर फैला हुआ है? स्त्रियो ने अपनी तपस्या से पातिव्रत को तो जीवित रक्खा है। परन्तु एक पत्नी-व्रत शब्द तो केवल साहित्य मे ही रह गया है। यदि दो-चार मित्रो का गुट कहीं इकट्ठा होता है, तब जरा इस बात पर ध्यान दीजिए कि किस प्रकार के विनोद का रस सभी अच्छी तरह ले सकते हैं। किस विषय पर बात-चीत छिड़ते ही उनके हृदय मे गुदगुदी होने लगती है। वहाँ आपको समाज की नीति-शीलता का पता

लग जायगा। जिन बातो की कल्पना-मात्र से साधारण-तया स्त्रियो का शरीर रोमांचित हो जाता है, घृणा से हृदय काँप उठता है, और दिल दहल जाता है उन्हीं का उच्चारण पुरुष अपने इष्ट-मित्रो मे एक दूसरे के प्रति करने मे तनिक भी नही शरमाते वल्कि आनन्द मानते हैं और उसी विनोद पर सब से अधिक कहकहा उठता है।

यह बुराई समाज की, राष्ट्र की, हमारे गार्हस्थ्य जीवन की, और भारत के उज्जवल भविष्य की जड़ खोखली कर रही है; वह हमारे सुख-स्रोत को सुखा रही है, हमारे हरे-भरे जीवनोद्यान को वीरान बनाते जा रही है।

वह अब इस दर्जे तक पहुँच चुकी है कि उसकी उपेक्षा करना, उसकी ओर ध्यान न देना हमारा महान अपराध होगा। पहले पुरुषो और विद्यार्थियो मे फैली हुई बुराई को ही लीजिए।

हमारे बच्चे, जो आज १०, १५ या २० वर्ष के हैं, कल ही राष्ट्र के नागरिक बनेंगे। उनके चरित्र का एकीकरण, उनके बल का योग, उनकी तेजस्विता की मीजान राष्ट्र-समस्त का चारित्र्य, बल और तेजस्विता होगा। उनके निर्म्माण मे हम जितना ध्यान देंगे, उतना ही हम अपने देश के भावी निर्माण में सहायक होंगे।

कभी आपने देखा है कि पाठशालाओ, हाईस्कूलो, या कालेजो के दिवालो पर लिखे हुए कुवाक्यो से लड़को के पारस्परिक सम्बन्ध पर क्या प्रकाश पड़ता है ?

व्यापार, सुधार तथा सभ्यता के केन्द्र माने जानेवाले बड़े-बड़े शहरो मे घूमते हुए वहाँ की सफेद, पुती हुई दीवालो पर लिखे हुए अपशब्दो को आपने कभी पढ़ा है ?

अपने धन का उपयोग करने की स्वतंत्रता नहीं है—शक्ति नहीं है ?

व्यभिचार एक ऐसी सामाजिक बुराई है जो प्रत्येक राष्ट्र के लिए अत्यन्त हानिकर है। फिर भारत की इस विशिष्ट परिस्थिति मे यह बनिस्बत अन्य राष्ट्रो के उसके लिए अधिक कष्ट-कर है। परन्तु स्वयं इस बुराई के परिणाम ही इतने भयंकर हैं कि उन्हे देखकर दिल थर्रा जाता है।

संसार मे और हमारे देश मे यह अनेक रूपो में फैली हुई है। स्त्री-पुरुषो के जीवन-सत्व को नष्ट करने के जितने भी तरीक़े हैं, सभी ऐकान्तिक पाप हैं। और चूंकि *इस जीवन-सत्व का दुरुपयोग करना प्रकृति और परमात्मा के प्रति अपराध है, मनुष्य को इस पाप के फलस्वरूप कड़ा से कड़ा दण्ड भी प्रकृति देती है।* मनुष्य इस संसार की सरकारो के दण्ड से भले ही एक-आध वार या पूरी तरह बच जाय परन्तु प्रकृति बड़ी न्याय-कठोर है। वह उसे कदापि नही छोड़ती।

और क्या आप को पता है कि हमारे समाज मे यह पाप किस कदर फैला हुआ है? स्त्रियो ने अपनी तपस्या से पातिव्रत को तो जीवित रक्खा है। परन्तु एक पत्नी-व्रत शब्द तो केवल साहित्य मे ही रह गया है। यदि दो-चार मित्रो का गुट कहीं इकट्ठा होता है, तब जरा इस बात पर ध्यान दीजिए कि किस प्रकार के विनोद का रस सभी अच्छी तरह ले सकते है। किस विषय पर बात-चीत छिड़ते ही उनके हृदय मे गुदगुदी होने लगती है। वहाँ आपको समाज की नीति-शीलता का पता

लग जायगा। जिन बातो की कल्पना-मात्र से साधारण-तया स्त्रियो का शरीर रोमांचित हो जाता है, घृणा से हृदय काँप उठता है, और दिल दहल जाता है उन्ही का उच्चारण पुरुष अपने इष्ट-मित्रो मे एक दूसरे के प्रति करने मे तनिक भी नही शरमाते वल्कि आनन्द मानते हैं और उसी विनोद पर सब से अधिक कहकहा उठता है।

यह बुराई समाज की, राष्ट्र की, हमारे गार्हस्थ्य जीवन की, और भारत के उज्जवल भविष्य की जड़ खोखली कर रही है; वह हमारे सुख-स्रोत को सुखा रही है, हमारे हरे-भरे जीवनोद्यान को वीरान वनाते जा रही है।

वह अव इस दर्जे तक पहुँच चुकी है कि उसकी उपेक्षा करना, उसकी ओर ध्यान न देना हमारा महान अपराध होगा। पहले पुरुषो और विद्यार्थियो मे फैली हुई बुराई को ही लीजिए।

हमारे वच्चे, जो आज १०, १५ या २० वर्ष के हैं, कल ही राष्ट्र के नागरिक वनेगे। उनके चरित्र का एकीकरण, उनके वल का योग, उनकी तेजस्विता की मीज़ान राष्ट्र-समस्त का चारित्र्य, वल और तेजस्विता होगा। उनके निर्म्माण मे हम जितना ध्यान देंगे, उतना ही हम अपने देश के भावी निर्माण मे सहायक होगे।

कभी आपने देखा है कि पाठशालाओ, हाईस्कूलो, या कालेजो के दिवालो पर लिखे हुए कुवाक्यो से लड़को के पारम्परिक सम्बन्ध पर क्या प्रकाश पड़ता है ?

व्यापार, सुधार तथा सभ्यता के केन्द्र माने जानेवाले वड़े-वड़े शहरो मे घूमते हुए वहाँ की सफेद, पुती हुई दीवालो पर लखे हुए अपशब्दो को आपने कभी पढ़ा है ?

क्या आप किसी प्रसिद्ध वैद्य या डाक्टर के मित्र हैं ? उनके यहाँ बिकनेवाले नपुंसकत्वारितैल, तिला या घृत के ग्राहकों की सूची की कभी तलाश की है ? प्रतिदिन हज़ारों की संख्या में बिकनेवाले अख़बारों में नामर्दी की दवा आदि के विज्ञापन आपने पढ़े हैं ?

बड़े-बड़े शहरों के चौराहों पर खड़े रहकर अपनी जड़ी बूटी और 'अव्यर्थ' दवाइयों की दूकान फैलाकर, धन्वन्तरि अथवा लुकमान हकीम की तरह नपुंसकता को दूर करने का दावा करनेवाले धूर्त और बदमाश हकीम तथा वैद्यों की उल्टी-सीधी बातों में आकर फँसे हुए भोले भाले युवकों से आप कभी मिले हैं ?

दूर जाने की ज़रूरत नहीं, आपने कभी हाईस्कूलों में— नहीं, प्राथमिक पाठशालाओं में जाकर भी अपनी आँखों यह देखा है कि आपका लड़का, भाई या भतीजा कैसे वायु-मंडल में पढ़ता है ? वहाँ के लड़के—उसके साथी आपस में कैसे गाली-गलौज करते हैं ? कभी आपको यह जानने की इच्छा भी हुई है कि आपका बच्चा अपना समय किस तरह व्यतीत करता है, एकान्त में क्या करता है ? कभी आपके दिल में यह सवाल भी खड़ा हुआ है कि अच्छा खाना मिलने पर भी तथा अविवाहित होने पर भी वह इतना दुर्बल क्यों है ? वह सूखता क्यों जा रहा है, उसका चेहरा, जिसे इस अवस्था में खिले हुए कमल को भी लज्जित करना चाहिए, इतना निस्तेज और मलिन क्यों है ? उसकी स्मरण-शक्ति इस तरह नष्ट-सी क्यों होती जा रही है ? ये सब वही लक्षण हैं जो उस भयंकर बीमारी को प्रगट करते

हैं ? ये वे लक्षण हैं जो हमारी घातक लापरवाही को प्रकट करते हैं ?

हम अपने बच्चे को पाठशाला मे भेजकर यों निश्चिन्त हो जाते हैं मानो कृतार्थ हो गये; बच्चा यदि इम्तिहान मे पास हो गया तब तो हमे वह धन्यता मालूम होती है, मानो सभी पुरखो को अनायास ही स्वर्ग प्राप्त हो गया। प्रत्येक गृहस्थ अपने बच्चे को मुहब्बत और प्यार करता है, उसकी प्रत्येक हठ को पूरी करता है उसके पहनने के लिए नित्य नये सूट-बूट खरीदने मे कभी देरी या ग़फ़लत नहीं होती। किन्तु क्या यही सच्चा प्यार है, यही सच्चा दुलार है, यही सच्ची मुहब्बत है ?

अपनी सन्तति के लिए यदि मनुष्य के दिल मे सच्चा प्यार होगा तो वह क्या करेगा ? वह उसके शारीरिक स्वास्थ्य के साथ-साथ उसके मानसिक स्वास्थ्य की भी चिन्ता रक्खेगा, बारीकी से इस बात की ओर भी ध्यान देगा कि उसके विचार कैसे है ? उसे कैसी कहानियाँ अधिक प्रिय हैं। कैसे बच्चो मे खेलना उसे ज्यादा पसंद है। अपने बच्चे को सच्चा प्यार करनेवाला पालक या पिता उसकी बौद्धिक शिक्षा के साथ-साथ उसके नैतिक सुधार पर भी सूक्ष्म दृष्टि रक्खेगा। उसके लिए बच्चे का केवल इम्तिहानो मे पास हो जाना काफी न होगा। वह अपने बच्चे की पढ़ाई को, उसकी बौद्धिक प्रगति को, सचाई, सदाचार, ईमानदारी, श्रद्धा और विवेक की कसौटी पर भी कसेगा। वह अपने बच्चे के लौकिक और तात्कालिक अभ्युदय के साथ-साथ उसके शाश्वत कल्याण की भी चिता करेगा। वह यह जरूर चाहेगा कि उसका पुत्र प्रत्येक सभा में प्रथम पंक्ति मे बैठने योग्य हो,

वाद-विवाद और शास्त्रार्थ में अपने प्रतिपक्षी पर विजय प्राप्त करे, कुश्ती और मल्ल-विद्या मे अपने से भिड़नेवाले को परास्त कर दे। किन्तु वह अपने लड़के की प्रगति, वैभव और उन्नति से सच्चे दिल से तभी प्रसन्न होगा जब वह उसके हृदय को भगवद्भक्ति के अमर दीप के प्रकाश से आलोकित देखेगा।

अब हम सोचें कि इस कर्तव्य को हम कहाँ तक पूर्ण कर रहे है। हमे इस बात की तो चिन्ता होती है कि बच्चा कही दुबला न हो जाय, कही बीमार न हो जाय, कही वह अपने इम्तिहान मे "फेल" न हो जाय। परन्तु हम इस बात की ओर कितना ध्यान देते है कि वह सदाचार से पतित न हो, वह बुरे लड़कों की सोहबत मे बिगड़ न जाय ?

आज हज़ारो नहीं, लाखो लड़के इस तरह बुरी सोहबत मे पड़कर बिगड़ रहे है। किन्तु हमे अपने व्यापार-व्यवसाय या नौकरी से इतना समय कहाँ मिलता है जो हम उनपर कुछ ध्यान दे सके। प्रत्येक पाठशाला, हाईस्कूल, कॉलेज या छात्रालय इन बुराइयो के केन्द्र बने हुए है। देश की प्रतिष्ठित तथा पवित्र से पवित्र संस्थाएँ तक इस बुराई से नहीं बची है। वीर्य-नाश और सृष्टि-विरुद्ध-कर्म के ये अड्डे-से हो रहे हैं! हमारे बच्चे या भाई अपने जीवन-रस को गन्दी नालियो मे बहा रहे हैं और हम लापरवाह हैं। ये आनन्दोत्साह के लहलहाते हुए पौदे कमल के जैसे चेहरो को तथा स्वस्थ हृष्ट-पुष्ट शरीरो को लेकर इन सरस्वती-मंदिरो मे भगवती शारदा की आराधना करने के लिए जाते हैं और अपने यौवन, तेज, स्वास्थ्य और इनके साथ-साथ पौरुप तथा स्वाभिमान को भी खोकर, कायर-हृदय बनकर, जीवन-

संग्राम में उतरते है। यही हमारे वे बालक, हमारी आँखों के तारे, हमारे जीवन के प्रदीप, हमारी वृद्धावस्था के सहारे, हमारे भावी-राष्ट्र के निर्माता हैं। हमारी आशा-लता के अवलम्ब, इन बच्चो की, कुल के उजियारो की, यह दशा देखकर किन माता-पिता या भाई का दिल टूक-टूक न होगा ?

भले ही आप कल ही से यह निश्चय क्यो न कर लीजिए कि लड़का बी० ए० पास न हो लेगा तबतक इसकी शादी न करेंगे। भले ही परमात्मा की दया से हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य की जटिल समस्या कल ही सुलझ जाय, चरखे और खद्दर का मन-माना प्रचार कर हम अपने देश की आर्थिक स्वाधीनता को भी आज ही प्राप्त करलें और अन्ततः किसी योगी-महात्मा के तपस्या बल से आज ही एक पके फल की तरह आकाश से हमारे हाथो मे स्वराज्य आ जाय, किन्तु जबतक हमारी और आपकी इस लापरवाही से फैली हुई बुराई के कारण देश के नवयुवक अपने वीर्य का इस तरह नाश करते रहेंगे तब तक इस वीर-भूमि में भी वास्तविक चैतन्य, सच्ची शूरता, और असली पौरुप का हमें दर्शन नहीं होगा। और इनके बिना स्वराज्य क्या, प्रत्यक्ष मोक्ष का भी (यदि असंभव बात हो भी जाय तो) क्या मूल्य है ?

तब इस बुराई को कैसे दूर करे ? इसके दूर करने के लिए इसके कारणों को जॉच लेना जरूरी है। इसके उत्पन्न होने या फैलने के कारणों को मिटाते ही यह अपने आप नष्ट हो जायगी।

जहॉ तक मेरा खयाल है इसके पॉच कारण हैं.—

(१) घर का गन्दा या बुरा वायुमण्डल

(२) बुरी सोहबत, कुसंगति, नौकरो की संगति।

(३) दुश्चरित्र पाठक और छात्रालयो के संचालक
(४) सिनेमा, नाटक, इत्यादि
(५) अश्लील शब्द प्रयोग—भाषा, समाज

अब इन में से प्रत्येक पर कुछ विचार करे

(१) जब मै पहले कारण पर विचार करने लगता हूँ, तब तो मुझे *हमारे गार्हस्थ्य जीवन का सारा वायु-मण्डल ही विकार-पूर्ण दिखाई देता है। विकार के वश होना मनुष्य के लिए लज्जा की बात होनी चाहिए। किन्तु ऐसे अवसरो को हमने उत्सवों का गौरव दे रक्खा है। घर मे ऋतु-शान्ति, गर्भादान इत्यादि अवसर उत्सव के दिन माने जाते है। ब्रह्मचारी, अविवाहित तथा विधुर विधवा लडके-लडकियो को और स्त्री-पुरुषो को हम इन उत्सवो के अर्थ और प्रभाव से कैसे अलग रख सकते है? इनका अवलोकन और उनको समाज द्वारा प्रदान किया हुआ गौरव ही इनकी ओर उन व्यक्तियो का ध्यान आर्पित करता है, और हृदय के अन्तस्तल में छिपी एक विकाराग्नि को जागृत करता है।*

नव-विवाहिता युवक-युवतियो से उनके सगे-सम्बन्धी कई प्रकार के चुभते हुए, गुदगुदी उत्पन्न करनेवाले मजाक करते है। समाज मे इन बातो का विशेष ध्यान नही रक्खा जाता कि यह मजाक किनके सामने किये जा रहे है।

दम्पतियो के सोने के कमरे तथा उनके पारस्परिक व्यवहार मे अक्सर आवश्यक सावधानी नही रक्खी जाती। कितने ही

माता-पिताओ तथा चाचा या भाइयो को यही विवेक नही होता कि किसके सामने कैसी बाते करे। अपनी मित्र-मंडली मे बैठकर बच्चो के होते हुए भी वे ऐसी ऐसी बेहूदी और मूर्खता-पूर्ण बाते कह जाते हैं कि जिसका उन्हे खयाल भी नही होता।

कई स्त्री-पुरुष तो अपने विकारो के इतने गुलाम होते हैं कि उन्हे न दिन का खयाल होता है न रात का, न घर का न बाहर का। बच्चो की उपस्थिति तो उनके लिए कोई चीज ही नहीं है। अपनी बेवकूफी के इन पापी क्षणो ही मे हम अपने बच्चो के दिलो पर घातक कुसंस्कार अनजान मे डाल देते हैं। परन्तु बच्चो पर उनके जन्म के पूर्व माता-पिता का जैसा आचरण होता है उसका बड़ा जबर्दस्त असर पड़ता है। डॉक्टर कॉवेन लिखते हैं:—

The Husband and wife in their life of lust and licentiousness, especially during the antenatal life of the child, endow in full measure the quality of abnormal and perverted amative desires in the nature of the child, the child on arriving at five, eight or ten years of age adopts as naturally as it would on the observance of any other transmitted quality. the exercise of the perverted amativeness by the only means known to it that of self-abuse Especially will it be prompt in adopting this foul and sickening habit if its father—in connection with the exercise of licentiousness during the child's antenatal life—has at any time of his life practiced self-abuse

भाव यह है कि बालक के इस संसार में आने के पहले उसके माता-पिता के आचरणों के संस्कार उसपर जरूर पड़ते रहते हैं। ऐसे माता-पिता से जन्म पानेवाले बालक मे स्वभावतः विकार अधिक होता है और बड़ा होने पर इस विकार-वशता के कारण वह वीर्यनाश की इस घृणित आदत का शिकार बन जाता है। और यदि यह दुर्गुण अपने जीवन मे किसी समय खुद पिता ही में रहा है, तब तो लड़का अवश्य ही इस पाप का शिकार होगा।

(२) किन्तु कितने ही लोग तो बड़े कुलीन होते है। उनके यहाँ इन बातो की ओर बड़ा ध्यान दिया जाता है। पर ऐसे बड़े और कुलीन घरो मे भी यह बुराई घुस गई है। इसका कारण क्या हो सकता है ?

ऐसे लोगो के घर पर तो बच्चो के दिलो पर काफी नियन्त्रण होता है किन्तु वे ख़राब लड़कों से तो नहीं बच सकते। वे जिन लड़कों के साथ खेलते-कूदते हैं, जिनके साथ वर्ग में बैठकर पढ़ते हैं उन्हीं में इस बुराई के कीटाणु फैले हुए हैं। *विकार एक मोहक राक्षस है, और मनुष्य स्खलन-शील प्राणी है। और कुछ नहीं तो केवल मनोविनोद ही के लिए, कौतूहल के लिए, वे इस भीषण बुराई के शिकार बनते जाते हैं।* दबंग और भीरु किन्तु ख़ूबसूरत लड़को की जोड़ हो जाती है और मध्यम-वर्ग के लड़के जो न भीरु है, न दबंग, जो सभ्य बने रहना चाहते हैं, वीर्य-नाश के तीसरे उपाय का अवलम्बन करते हैं।

हमारे समाज में इन मासूम बच्चो का जीवन-नाश करनेवाला एक वर्ग और है। वह नौकरी पेशा और व्यापारी वर्ग में

से छूट कर, पढ़े-लिखे और भले आदमी दिखाई देने वाले लोगों का एक दल है। इनके जीवन बचपन में स्वयं नष्ट हो चुके होते है। अतः बड़े होकर ये इन बच्चों का जीवन भी उसी तरह बिगाड़ते हैं, जैसा कि इनका अपना बिगड़ चुका है। इन्हे वैसे चाहिए तो यह कि आप ठोकर खाकर गिर जाने के बाद दूसरों को उससे बचावें परन्तु बचाना तो दूर, ये तो उल्टे उसी नीच-कर्म के प्रचारक बनते है। ये लोग भोले-भाले निर्दोष और ना-समझ बच्चों को पान, सिगरेट, रबड़ी, मलाई तथा चाय आदि खिला-खिलाकर, मेले तमाशों तथा बाग़-बगीचों में सैर-सपाटे के लिए ले जाकर फुसलाते हैं और खुद आप तो पाप के गड्ढे में गिरते ही हैं परन्तु इन होनहार भोले-भाले बच्चों का जीवन भी नष्ट करते हैं। ये लोग बड़े होकर वही करते हैं, जो इनके साथ बीती होती है। इस प्रकार यह बुराई एक परम्परागत-सी बन गई है।

ऐसे घरों में इस बुराई के फैलने का एक और भी ज़रिया है। बड़े घरों में बच्चे अक्सर नौकरों के पास ही ज़्यादा रहते हैं। नौकरों में सदाचार की मात्रा की हमें उतनी आशा नहीं करनी चाहिए। कहीं-कहीं नौकरों *द्वारा भी इन अबोध बालकों में ये बुराइयाँ फैली हुई पाई जाती हैं।*

(३) तीसरे कारण पर विचार करते हुए दिल थर्रा जाता है। जिन गुरुदेव के पास हम अपने बालकों को विद्याध्ययन करने के लिए भेजते हैं, कभी कल्पना में भी उनके चारित्र्य पर शक करना पाप होगा, किन्तु अब वह आदर्श कहाँ रहा! *कितनी ही पाठशालाओं में हमारे दुर्भाग्य से दुश्चरित्र*

अध्यापक भी होते हैं। वे अपने विद्यार्थियों की नम्रता और आज्ञाकारिता का दुरुपयोग करते है। आप गिरते हैं और उन अबोध बालकों को भी गिराते है। यही हाल कहीं-कहीं सभ्य, देश-सेवा की डींग मारनेवाले नर पुरुषो का भी होता है, जो छात्रालयो के सचालक या व्यवस्थापक होते हैं। विवाह देश-सेवा मे बाधक होता है इसलिए वे अपनी शादी नहीं करते; किन्तु इस तरह अपने विकारों के गुलाम बनकर स्वयं गिरते है और दूसरो को भी गिराते है। यह उन पाठशाला या छात्रालयों का वायु-मण्डल है जहाँ हम अपने बच्चो को सदाचार, नीति, देश-सेवा, और अनुशासन का वस्तुपाठ पढ़ने के लिए भेजते हैं।

मेरे कहने का आशय यह कदापि नहीं कि प्रत्येक पाठशाला या छात्रालय का यह हाल है। किन्तु गृहस्थों, माता-पिताओं और पाठकों को सावधान करने के लिए मैं यह जरूर कह देना चाहता हूँ कि ऐसी बहुत कम सस्थाएँ होंगी जो इन बुराइयों से मुक्त हो। अतः अपने बच्चो को छात्रालय में रखते समय इस विषय पर अच्छी तरह सोच-विचार लें और फिर उनकी ओर से निश्चिन्त तो कभी न हो जायँ। सदा आँखों में तेल डालकर उनके स्वास्थ्य और सदाचार आदि पर नजर रक्खें।

(४) चौथा कारण है समाज के इर्द-गिर्द का वायु-मण्डल। हमारा समाज प्रगतिशील अवश्य होता जा रहा है। किन्तु अभी इसमें सुधार के लिए बहुत गुंजाइश है। अभी तो उसमें विकार का मानो साम्राज्य है। समाज, साहित्य और रंगभूमि तीनो तरफ से

बच्चों और युवकों के कोमल अन्तःकरणों पर 'शृङ्गार-विष' के फ़ौवारे छोड़े जाते हैं। समाज में भी भाषा और व्यवहार ऐसे दो अंग किये जा सकते है। निचली श्रेणी के लोगों की तो कौन कहे, मंझले दरजे के गृहस्थों के यहां भी अश्लील शब्दों का प्रयोग मामूली बात-सी हो गई है। कई लोगों के लिए ते शब्द तकिया-कलाम बन बैठे हैं। निःसन्देह अधिकांश उदाहरणों में ऐसे शब्द उनके प्रयोग करनेवालों के दिल में कोई भाव जागृत नहीं करते। किन्तु सुननेवाले पर अपने विष का असर छोड़े बिना वे रह नहीं सकते। कई बार युवक और बालक सरल भाव से इन शब्दों का विश्लेषण और अर्थ का पृथक्करण करते हैं।

व्यवहार में तो हम और भी आगे बढ़े हुए हैं। वेश्यानृत्य, वेश्यागमन, छिपा व्यभिचार तथा बहु-विवाह की प्रथाएँ हमारे समाज के कलंक हैं—(इनके विषय में आगे पढ़िए) किन्तु फिर भी समाज में इनकी काफी निन्दा नहीं हो रही है। वीर्यनाश की बीमारी के कीटाणुओं को उत्पन्न कर उन्हे फैलानेवाली बुराइयां यही हैं। किन्तु फिर भी समाज में इनके प्रति घोर घृणा उत्पन्न नहीं हुई है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है उनका "अकुतोभय" अस्तित्व। कब हमारे दिल के अन्दर इतना चारित्र्यबल और पवित्रता जागृति होगी कि हम इन बुराइयों को, इन चलती-फिरती सजीव बुराइयों को एकबारगी रसातल को पहुँचा दें ?

जब हमारे घर में, हमारे समाज में विकार का ऐसा साम्राज्य है, तब हम अपने बालकों को उससे मुक्त रखने की आशा कैसे कर सकते हैं ? वीर्य-नाश की बीमारी फैलने का समाज में एक और भी कारण है। यह बीमारी प्रायः उन शहरों या प्रान्तों में

अधिक पाई जाती है जहाँ मुसलमान जनसंख्या अधिक तादाद में है। अतः मुसलमान माता-पिताओ तथा उन प्रान्त, विभाग या शहरों में रहने वाले हिन्दू गृहस्थो को इसके विषय में अधिक सावधान रहना चाहिए। यो भी आहार-विहार, रहन-सहन आदि को देखते हुए इस विकार के लिए पोषक सामग्री मुसलमान समाज मे अधिक पाई जाती है।

अब आप साहित्य का अवलोकन करे। संस्कृत साहित्य जहाँ ऊँचे से ऊँचे आध्यात्मिक ग्रन्थो से भरा पड़ा है तहाँ जन-साधारण के पढ़ने के काव्यो मे शायद ही एक-आध काव्य ऐसा हो जिसमे शृंगार रस के एक-दो कटोरे न भरे हो। वास्तव मे महाकाव्य की व्याख्या मे इन विषय-विलास की कथाओ को एक खास स्थान है। और पीछे होनेवाले कवियो मे से किसी को यह हिम्मत न हुई कि उस व्याख्या की परवा न करके ऐसे काव्य बना देता जो निर्मल-हृदय बालक-बालिकाओ के हाथो में भी रक्खा जा सके।

यही हाल मध्य-कालीन प्राकृत या हिन्दी साहित्य का भी है। मालूम होता है इस साहित्य की रचना करते समय रच-यिताओ को निर्दोष-चित्त युवकों का ख़याल ही नही रहता था। वे अपनी रचनाएँ प्रायः गृहस्थो के मनो-विनोद और काल-यापन के लिए ही बनाते थे। और अपने विकारो को सह्य बनाने के लिए, समाज के सुरुचि-सम्पन्न अंतःकरणो की भर्त्सना से बचाने के लिए परमात्मा पर अपने विकारो का आरोप करते थे। श्रीकृष्ण और उनकी अनन्य भक्ता राधाजी के प्रति उन्होंने कितना अन्याय किया है! आज उनकी मूक आत्माएँ हमें इस घृणित पाप के लिए कितना शाप देती होंगी? और कितना शाप देती है

हिन्दू-जाति की यह आत्मा जो इन विकार-मय वर्णनों से उत्साहित हो अपने विकारो को सह्य और क्षम्य समझने लग गई ? हमारी वर्तमान कायरता, विलासिता तथा गुलामी के लिए क्या ये विकार और विलासिता का कायर वायु-मण्डल बनानेवाले काव्य-ग्रन्थ कम जिम्मेदार है ?

और अब उनके अधूरे काम को हमारे आजकल के मासिक तथा साप्ताहिक पत्र-पत्रिकाएँ और उपन्यास पूर्ण कर रहे हैं। लोक-शिक्षक के ऊँचे स्थान से उतर कर जनता के अधम विकारो को उत्तेजित करके वे लोक-कल्याण करने का दावा कर रहे हैं! इनके मुख पृष्ठो पर, तथा भीतर सुंदर कामिनियो के लुभावने चित्र होते है। सन्तान-शास्त्र, दम्पती-रहस्य, गृहस्थ-धर्म आदि के नाम पर कोकशास्त्रों को भी लज्जित करनेवाली भाषा मे स्त्री-पुरुषो के विषय की विकारोत्तेजक बाते लिखते हैं! और ऐसे साहित्य का प्रचार करते हैं जो ब्रह्मचर्य का तो दूर, गृहस्थधर्म का भी अपमान करता है! क्या यही साहित्य हमें कल्याण की ओर लेजायगा ?

निर्दोष युवको के हृदयो में विकारो को बढ़ानेवाला एक और भी महत्वपूर्ण कारण है, रंगभूमि—सिनेमा और नाटक। सिनेमा और नाटको मे जो कितने ही अश्लील दृश्य दिखाये जाते हैं उनके कुपरिणामो से हम अपने बालको को कैसे बचा सकते हैं ? *यथार्थ में पूछा जाय तो शृंगार—पातक शृंगार—ही हमारे समाज के मनोरंजन का एक-मात्र साधन रह गया है। देश को वीर्यशाली, स्वतंत्र बनाने, सुविद्य बनाने के महत्वपूर्ण साधन हमारे हाथों से छिन जाने पर एक पराधीन समाज के*

पास सिवा इसके और रह ही क्या जाता है कि वह अपनी रही-सही शक्ति को भी बरबाद करे ? और इस काम में विदेशी सत्ता यथासम्भव उसकी सहायता ही करती है । दूर खड़े रहकर वह प्रसन्नता-पूर्वक देखती रहती है कि इस दौड़ में वह कितनी तेजी से दौड़ सकता है ?

परन्तु ये तो वे कारण हैं जिनसे नासमझ लड़के अज्ञान-वश पतित होते है। कॉलेजो और स्कूलो के समझदार युवको मे यह बुराई फैलने का सबसे बड़ा कारण तो एक घोर अज्ञानमय कल्पना है। और वह यह है कि अधिक समय तक जबर्दस्ती ब्रह्मचारी रहने से शरीर को हानि पहुँचती है। दिमाग़ मे गरमी चढ़ती है इत्यादि। कितने ही युवक इस भ्रम-मूलक कल्पना के चक्कर मे आकर अपने जीवन-सत्व को नष्ट करने लग जाते है।

कहना न होगा कि यह कल्पना केवल नाशकारी भ्रम से परिपूर्ण है। यह कल्पना तो अधम मस्तिष्कों की उपज है। इसे न आयुर्वेद मे स्थान है न आधुनिक वैद्यक-शास्त्र मे। यह तो बुद्धि और युक्ति के विपरीत है।

जिस समाज मे और शासन मे लड़को को गिराने के लिए ऐसी-ऐसी सामाग्रियाँ मौजूद हैं, आश्चर्य होगा यदि उसमे पैदा होने वाले बालक तेजस्वी, सदाचारी, बुद्धिमान तथा बलिष्ट हो। और सचमुच यदि हमारे समाज मे जाति और देश का सिर अभिमान से ऊँचा कर देनेवाले बालक अब भी पैदा होते है तो उसका कारण वर्तमान सामाजिक या शासन-विषयक अनुकूलता नहीं; बल्कि भारतीय संस्कृति की आन्तरिक श्रेष्ठता, और उन बालको की जन्म-जात महत्ता ही है।

आज इस समय जब कि राष्ट्र की सारी शक्तियो के संचित और संगठित करने की सबसे अधिक जरूरत है, हम अपने उगते राष्ट्र के इस वीर्यनाश की ओर कभी उदासीनता की दृष्टि से नहीं देख सकते। यह वीर्यनाश बल-बुद्धि, प्रतिभा और स्वातंत्र्य-भावना का नाशक है। इसके विनाश से मनुष्य मनुष्य हीनहीरहेगा।

अपने वीर्य का नाश करनेवाले लड़के की प्राय: अचूक पहचान यह है कि उसको पाचन-शक्ति बिगड़ जाती है। भूख कभी लगती है, कभी नही। पर ऐसे लड़के खाने-पीने मे बड़े पेटू होते है। सीधा-सादा भोजन उन्हे पसन्द नहीं होता। उनकी जबान के सारे स्वाद-तत्त्व कमजोर हो जाते हैं। इसलिए चरपरी और मसालेदार चीजो को वे अधिक पसन्द करते हैं। फिर भी कब्ज़ हमेशा बनी रहती है। सरदर्द, बदहजमी, रीढ की बीमारी, मिरगी, कमज़ोर आँखें, हृदय की धडकन का बढ़ जाना, पसलियों का दर्द, बहुमूत्र, पक्षाघात, अनिच्छापूर्वक और अनजान में रात को तथा दिन को भी वीर्य का गिर जाना, नपुंसकता, क्षय और पागलपन इत्यादि अस्वाभाविक वीर्यनाश के पुरस्कार हैं। हमारे कहने का मतलब यह नहीं कि इन सब रोगो का एकमात्र कारण वीर्यनाश ही है परन्तु इन रोगों के रोगियो मे वीर्यनाश के अपराधी बहुत बड़ी संख्या में होते हैं। अपने जीवन-सत्व के नष्ट करनेवाले इस अपराधी के स्वभाव पर भी बड़ा भारी असर पड़ता है। अपनी शक्ति और बुद्धि पर से उसका विश्वास उठ जाता है। मनोबल तो उसके होता ही नहीं। डॉ० कावेन लिखते है—

"इस घृणित पाप के अपराधी में उदारता, प्रतिष्ठा सम्मान और पौरुष का अभाव प्रत्यक्ष दृष्टि-गोचर होने लगता है। उसमे न धैर्य होता है न निश्चय। महत्वाकाक्षा उसके मनोमंदिर मे झांक कर देखती तक नहीं। वह अपनी शक्तियों को भूल जाता है, अनिश्चय उसकी ख़ासी पहचान है। पद-पद पर उसे अपने पतन और ऐकान्तिक पाप का ख़याल दवाता रहता है। उसकी दृष्टि विशाल नहीं होती। काम में वह चतुर नहीं होता। एकाग्रता नष्ट हो जाती है। उसके निर्णय ठीक नही होते। उसका दिमाग़ ख़ाली विचार-शून्य रहता है, उसके किसी काम में वुद्धि-कौशल नहीं दिखाई देता। उसका मिलने-जुलने का ढंग विचित्र और अटपटा-सा मालूम होता है। उसका वर्ताव उदार नहीं होता और न होती है उसमें स्त्रियों के प्रति वीरोचित व्यवहार की क्षमता ही। वह समाज में एक पोस्ती की तरह भार रूप वन कर रहता है।"

जिस प्रकार लड़के एकान्त मे वीर्य-पात अथवा ऐसे ही घृणित तरीके से अपना सर्वनाश करते हैं उसी प्रकार यूरोप और अमेरिका की लड़कियो में भी कृत्रिम मैथुन की वीमारी वहुत वड़े पैमाने पर फैली हुई है। वहाँ तो लड़कियो की शादी वहुत देर से होती है। वे पढ़ती रहती है या वैवाहिक जिम्मे-दारियो और कष्ट से डरकर अविवाहित ही रहना चाहती हैं और किसी व्यापार-व्यवसाय में पड़कर या कहीं नौकरी करके अपना जीवन-निर्वाह करती रहतो हैं। ऐसी कुमारिकाएँ इस ऐकान्तिक

पाप का शिकार वन जाती हैं और कृत्रिम मैथुन से अपने स्वास्थ्य को नष्ट करती रहती हैं। वाल-विवाह की प्रथा के कारण भारत मे ऐसी कुमारिकाएॅ नही दिखाई देती। पर वाल-विधवाएँ तो हैं न। और उनकी दशा से परिचित हर एक मनुष्य जानता है कि कुछ हद तक उनमे भी यह वुराई है ही। कही-कही से आवाज़ सुनाई देती है कि लड़कियो को उच्च शिक्षा देनेवाली संस्थाओ में भी यह वुराई मौजूद है। ऐसी लड़कियो या स्त्रियो के विषय में डॉ० कावेन आगे लिखते है :—

So too the female diseased here, loses proportionately the amiableness and gracefulness of her sex, her sweetness of voice, disposition and manner, her native enthusiasm, her beauty of face and form, her gracefulness and elegance of carriage, her looks of love and interest in man and to him, and becomes merged into a mongrel neither male nor female but marred by the defects of both without possessing the virtues of either.

इसी प्रकार इस ऐकान्तिक पाप की अपराधिन लड़की या स्त्री भी अपनी आकर्पकता को खो वैठती है। उसकी आवाज़, स्वभाव और व्यवहार मे वह मधुरता नहीं होती जो रमणी का भूषण है। अपने स्वाभाविक उत्साह, शरीर सौदर्य, उसकी खूवी और कोमलता से वह हाथ धो वैठती है। स्वभाव में रूखापन भद्दापन, नीरसता और कटुता उत्पन्न होजाती है, जिसके कारण वह एक ऐसा जीव वन जाती है जिसमे न पुरुपोचित गुण होते हैं न स्त्रियोचित। हाँ दोष जरूर दोनो के होते हैं।

डॉ० लेमण्ड कहते हैं—"यदि हम देखते हैं कि एक बुद्धिमान लड़का अच्छी स्मरण शक्ति और पढ़ाई के होते हुए भी दिन-ब-दिन पढ़ी-पढ़ाई बातो को जल्दी समझता नहीं और समझ लेने पर याद नहीं रख सकता तो हमे समझना चाहिए कि इसमे अनिच्छा और सुस्ती की अपेक्षा कोई गहरा दोष है। उसका दिन-ब-दिन गिरता हुआ स्वास्थ्य और काम करने की शक्ति का ह्रास, ढीलापन, झुककर चलना, खेल-कूद से जी चुराना, सवेरे देरी से उठना, धँसी हुई और निस्तेज आँखें प्रत्येक बुद्धिमान और सावधान पालक को चिन्ता में डाले विना न रहेगी।"

डॉ० ओ० एस० फ़ौलर लड़को के वीर्य-नाश के लक्षण यो बताते हैं:—

"ऐकान्तिक पापी को उसके निस्तेज और रक्तहीन चेहरे से भी पहचाना जा सकता है। उसकी आँखे गहरी और कुछ मुर्दे की सी भयानक मालूम होंगी। अगर वह इस बुराई में बहुत दूर आगे बढ़ गया है तो उसकी आँखो के नीचे हरे और काले अर्धवर्तुलाकार निशान हो जावेगे। देखते ही उसके चेहरे पर थकावट झलकेगी। मालूम होगा नींद न आने के कारण यह मरा जा रहा है। उसके होटो पर जंगली, विलासी और मूर्ख मुसक्यान होगी। और खास ऐसे समय जब वह किसी स्त्री की ओर देखता हो। वह कुछ जल्दबाज होगा पर होगा अनिश्चयी ही। एक काम शुरू करेगा फिर उसे छोड़ देगा और दूसरे मे हाथ डालेगा। फिर दूसरे को भी छोड़कर पहले को करने लगेगा। और सो भी लकड़ी या टोपी रखने जैसी छोटी-छोटी बातो मे भी वही असम्बद्धता और अ-निश्चय की झलक दिखाई देगी।

छोटी-छोटी बाते उसे घबड़ा देने के लिए काफी होंगी। निश्चय, फुर्ती, धीरज, और शक्ति का उसमें अभाव होगा। वह कायर होगा। हर बात करते हुए डरेगा। उसकी चाल मे पौरुष न होगा। दिल मे महत्वाकांक्षा न होगी। उसमे स्वाभिमान और आत्मगौरव का अभाव होगा। मतलब यह कि उसकी प्रत्येक नज़र से और प्रत्येक कार्य से यह प्रकट होगा कि वह गुप्त रीति से कोई बुरा काम कर रहा है और इसका उसे भान है।

वह बातो को जल्दी समझ न पायेगा, ग़लतियाँ करेगा, भूलेगा और असावधान होगा। उसके विनोद जितने होगे वे सब रस-हीन होगे। इशारो को न समझेगा। वह उदास होगा, झट से डर जायगा और ज़रा-सी बात से हतोत्साह हो जायगा। उसके विचार सुलझे हुए न होगे। दिमाग़ मे कल्पनाएँ भी नही आवेगी।"

यह सब भयंकर है। एक खिलते हुए फूल की भांति युवक अपने जीवन के वसंत में ही कुम्हलाकर सूख जाय, यह तो बड़े दुर्दैव की बात है। ऐसे युवको से क्या तो अपना भला होगा और क्या देश का ? धीरे-धीरे जीवन का आनन्द उनके लिए दुर्लभ हो जाता है। लोभी और धूर्त वैद्य और डाक्टरो के विज्ञापनों के धोखे में आकर वे अपना रहा-सहा स्वास्थ्य और भी बिगाड़ डालते है।

तब हम इसे कैसे रोक सकते है ? इसका सब से सरल उपाय है—

(१) अपने जीवन मे क्रांति कर देना। घर के वायु-मण्डल को पवित्र कर देना।

(२) उन तमाम उत्सवों को बन्द कर देना—कम से कम उनके पालन मे परिवर्तन कर देना *जिनके कारण बालकों मे विकार जागृत होने की बहुत भारी सम्भावना है।*

(३) बालकों और अविवाहित नवयुवकों को ऐसे स्थानों पर रखना जिनसे वे नव-विवाहित वधू-वरो के क्रीड़ा-कौतुकों को न देख पावें। दूसरो को भी इन नव-विवाहितों से बच्चों तथा कुमारो के सामने अनुचित हंसी-मजाक नहीं करनी चाहिए।

(४) माता-पिता तथा दम्पतियो को अपने आचरण मे विशेष सावधान रहना चाहिए। बच्चो पर सब से अधिक असर अपने ही घर के वायु-मण्डल का पड़ता है। खासकर उन स्त्री-पुरुषो का उत्तरदायित्व और भी महान है जिनकी कोई बहन, भाई, लड़का या लड़की अविवाहित है, या बहन, भौजाई विधवा है। सब से भारी सावधानी इस बात की रखना जरूरी है कि हमारे आचार-विचार या व्यवहार से किसी प्रकार भी उनके संस्कार-ग्राही कोमल हृदयो मे विकार की उत्तेजना जागृत न होने पावे।

समाज को भी शुद्ध बनाने के लिऐ प्रत्येक गृहस्थ को कोशिश करनी चाहिए। मनुष्य सामाजिक प्राणी है। व्यक्ति और समष्टि का सम्बन्ध आदान-प्रदान का है। हम जैसे होंगे हमारा समाज भी वैसा ही होगा और जैसा हमारा समाज होगा वैसे ही सस्कार हमारे भावी नागरिकों पर पडेगे। इस लिए यह आवश्यक है कि हम अपने सुधार के साथ-साथ सामाजिक सुधार को भी अपना कर्तव्य समझे। नीचे लिखी बातो पर ध्यान देना बहुत जरूरी है—

(१) हमेशा शिष्ट और सभ्य भाषा का प्रयोग करे। हमारे हास-विलास, हमारे अनर्गल आमोद-प्रमोद उस विष के फौवारे है जो जाति के जीवन की जड़ को ही खोखला कर देते है।

(२) तमाम अश्लील दृश्यो से बच्चो को बचावे।

(३) विकारोत्तेजक साहित्य तथा कहानियो से भी उन्हे दूर रखे।

स्मरण रहे कि इन प्रस्तावों के मानी यह नहीं कि जीवन मे आनन्द लेने के तमाम मार्गों को बन्द कर दे। जिनमे बुद्धि और प्रतिभा होगी वे आनन्द प्राप्त करने के कई नवीन और निर्दोष साधन ढूँढ सकेगे, जिनके द्वारा सचमुच मनुष्य की बुद्धि और बल बढ़ सकता है। परन्तु हॉ, इस मे सन्देह नहीं कि उपर्युक्त साधन है ज़रा कष्ट-साध्य ही। इनका अवलम्बन करने में देर लगेगी। तब तक हम इस बुराई को दूर करने के लिए उस-पर प्रत्यक्ष प्रहार भी कर सकते है। नीचे लिखे उपाय अमल मे लाये जा सकते है—

(१) अपने लड़को के कार्यक्रम पर कड़ी नज़र रक्खे।

(२) उनके साथियो के चरित्र और आचार पर भी ध्यान रक्खे। यदि हमारे लड़के के साथी मे कोई बुराई है तो केवल उसकी संगति छुड़ाकर ही हम न रह जाएँ बल्कि उसपर भी अपने बच्चे के समान ही नज़र रक्खे, जिससे वह बुराई अधिक न फैलने पावे। उस लडके के पालको को भी सावधान कर देना परम आवश्यक है।

(३) बार-बार उस पाठशाला या छात्रालय में जाकर वहॉ के वायु-मण्डल की भी जॉच करे। लड़को से हिल-मिलकर

उनका विश्वास-सम्पादन कर उस संस्था में फैली हुई बुराइयों और बीमारियों का पता लगावे। अध्यापको, संचालको तथा अन्य विद्यार्थियों के पालकों का ध्यान भी इस विषय की ओर आकर्पित करें।

(४) प्रत्येक शाला के पाठको या संचालको के चरित्र तथा उनके आचार-व्यवहार पर भी नजर रक्खे। कितने ही अविवाहित पाठक या छात्रालय के संचालको से ही बुराई फैलती है। उनका ठीक-ठीक पता लगाकर उन्हें ऐसे स्थानो से फौरन हटा देने की व्यवस्था करनी चाहिए। हर हालत मे *बच्चो को पाठशालाओं मे भेजकर ही निश्चिन्त न हो जावे।*

(५) *अपने लड़कों को नौकरों की सोहबत मे अधिक देर तक न रहने दीजिए। विशेप कर नौकरो के साथ उनका एकान्त में रहना तो एकदम बन्द ही कर देना चाहिए।*

(६) कई बार लड़को मे यह बुराई इतनी बढ़ जाती है कि इस तरह अप्रत्यक्त रूप से प्रयत्न करने पर उनसे वह नहीं छूटती। इस हालत मे ठीक यही है कि उसके पिता, पालक, शिक्षक या सन्मित्र शान्तिपूर्वक उसे इस बुराई के भावी परिणाम समझा दे और यह दिखा दें कि किस प्रकार इसके कारण उसका भावी जीवन दु:खमय और उसके लिए भारभूत हो जाने की सम्भावना है, और आगे चलकर किस प्रकार इससे व्यभिचार, वर्णसंकरता, आदि अन्य आनुपंगिक बुराइयाँ फैलने की सम्भावना है।

ऐसे युवको और किशोरो का सुधार चाहनेवाले सन्मित्रो पाठकों तथा शिक्षको से एक बात और कह देना जरूरी है। वे जो कोई भी हो इस बुराई के शिकार बने हुए युवकों को *भय,*

धमकी या बदनामी का डर कभी न दिखावे। वे उन्हें बिलकुल निर्भय कर दें, जिससे वे आपको अपने उद्धारक समझकर अपनी गुप्त से गुप्त भूल को भी आपके प्रति प्रकट कर सकें और उससे मुक्त होने में आपकी सहायता ले सकें।

बच्चों के माता-पिता को चाहिए कि ज्योंही उनके बच्चे समझदार हो जाये उनको वे ऐसी पवित्र साहित्य पढ़ने के लिए दे जिससे वे ब्रह्मचर्य के पालन का महत्व और लाभ और उसके भंग से होनेवाली हानियाँ समझ जावे। पुस्तक की भाषा अत्यन्त पवित्र और लेखन-शैली बहुत शिष्ट हो। पुस्तक में चित्र भी न हो। अच्छा तो यही है कि उन्हे बाल्यावस्था से ही ब्रह्मचर्य की महिमा का वर्णन करनेवाला वह विख्यात सूक्त पढ़ा दिया जाय। *अनधिकारी लोगों या साथियों से बच्चे इन विषयों के सम्बन्ध में अधूरी और अनर्थकर बातें सीखें इसकी अपेक्षा ठीक यही है कि वे पवित्र प्रामाण्य ग्रन्थों और अधिकारी पुरुषों से ही इस विषय को समझ लें। संसार में सारी बुराइयों की जड़ अज्ञान अथवा बुरी तरह प्राप्त किया अधूरा ज्ञान ही है।*

इस स्थान पर उन भूले हुए भाइयो को भी एक-दो शब्द कह देना अनुचित नहीं होगा।

यौवन के प्रभात मे आपके शरीर के अन्दर अभिनव-शक्ति और भावो का संचार होना अस्वाभाविक बात नहीं है। संसार मे प्रत्येक पुरुष-तत्त्व और स्त्री-तत्त्व का उचित समय आने पर पारस्परिक आकर्षण शुरू हो जाता है। यह आपके पौरुष के परिपाक की अवस्था होती है। इसके मानी यह नहीं कि आपको

उसका व्यय शुरू कर ही देना चाहिए। सच तो यह है कि *इस शक्ति को जितना भी संचय किया जाय, वह आपके जीवन को अधिकाधिक तेजस्वी और उन्नत ही बनावेगी। संसार के प्रत्येक क्षेत्र में अगर सबसे अधिक सफलता कोई प्राप्त कर सकते हैं तो ब्रह्मचारी और संयमी ही।* महात्मा टाल्स्टाय के शब्दों मे हमारा पुण्यतम आदर्श है, मानव-जाति को सुखी बनाना। बेहतर यही है कि हम अपनी सारी शक्तियों को इसी काम में लगा दे। परन्तु यदि किसी कारण हम ऐसा न कर सकें तो हमारे अधूरे काम को पूर्ण करने के लिए अपने प्रतिनिधि उत्पन्न करने की इच्छा से अपनी शक्तियो के कुछ हिस्से का उपयोग हम कर सकते हैं। स्मरण रहे कि हम उसका उपयोग इसी ख़्याल से करें। और शेष शक्तियों को अपने प्रतिनिधियो को हमारे योग्य या हमसे अधिक सुयोग्य बनाने के काम मे लगाने के लिए सुरक्षित रक्खें।

यही परमात्मा का उद्देश दिखाई देता है जैसा कि महापुरुषो ने उसे समझा है। *अतः यौवन के प्रभात-काल में ही वीर्य को नष्ट करना अत्यन्त घातक है जिसकी सज़ा परमात्मा हमें दिये बिना कभी न रहेंगे।*

जिस क्षण ही आप इस अज्ञान से जाग जाएँ दृढ़ता-पूर्वक प्रतिज्ञा कर लीजिए कि आप यह भूल करने का पाप कभी न करेंगे। अपनी करुण आवाज उस दयानिधि तक पहुँचाइए और उससे प्रार्थना कीजिए कि वह आपको इस पाप से मुक्त होने में सहायता करे। अपनी भूल का ज्ञान होने पर भी जो युवक उसे जारी रक्खेंगे वे निश्चय-पूर्वक अपना सर्वनाश कर लेंगे।

[३]

पत्नी-व्यभिचार

पाप के अनेक रूप होते हैं। अविवाहित युवकों में वीर्य-नाश और लड़कियों में कृत्रिम विषय-भोग के अलावा समाज में यह पाप कई गन्दे रूपों में फैला हुआ है। इसका सब से सभ्य रूप है पत्नी-व्यभिचार।

पत्नी-व्यभिचार आज-कल के लोगों को तो एक विचित्र बात मालूम होगी। यह तो वदतो-व्याघात (Contradiction in Terms) सी प्रतीत होगी। लोग समझते हैं—"विवाह जीवन का द्वार है। उसके द्वारा मनुष्य अपने जीवनोपवन में प्रवेश कर और मनमाना विषय-विलास लूटे। पति-पत्नी के बीच भला भोग की कोई सीमा रूपी कैद क्यों हो? वहाँ तो सब कुछ न्याय्य है—नहीं, वहाँ तो एक दूसरे की तृप्ति के लिए अपना शरीर अर्पण कर देना प्रत्येक का धर्म है। पति का पत्नी पर अधिकार है और पत्नी का पति पर।" पर यह तो उदार मत-वादी लोगों का ख़याल है। स्त्रियों को तो अपने अधिकार का पता तक नहीं। अधिकार की भाषा तो पुरुषों ही के मुख में शोभा देती है। वे कहते हैं "हमारी इच्छाओं की पूर्ति करना स्त्रियों का धर्म है। जो ऐसा नहीं कर सकती वे दुष्टा हैं।" ऐसे नर-पशुओं को अपनी पत्नी की बीमारी और गर्भावस्था का भी ख़याल नहीं रहता। वे तो विकार के कारण पागल और अंधे हो जाते हैं। संसार में सिवा विकार-तृप्ति के उन्हें और कुछ नहीं दिखाई देता!

परन्तु क्या कभी किसी ने इस विकारांधता की बुराई से होने वाले भयंकर परिणामो का भी खयाल किया ? पत्नी-व्यभिचार का सब से पहला बुरा परिणाम है दोनों के स्वास्थ्य का गिर जाना। विवाह या चिरवियोग के बाद जब पति-पत्नी मिलते हैं तो इस तरह विलास में कूद पड़ते है जैसे अकाल-पीडित अन्न पर। इसका परिणाम होता है दोनों का स्वास्थ्यनाश। और यह नाश ऐसा होता है कि जिसके दुष्परिणाम से दोनों उठ नहीं सकते। वे खिले हुए कमल जो पहले समाज की शोभा थे, दो-चार महीने मे ऐसे हो जाते हैं कि जिनसे अपने मुख पर की मक्खियाँ भी नहीं उड़ाई जा सकती। स्वयं मेरी नज़र में ऐसे कई युवक है जिनका स्वास्थ्य सदा के लिए गिर गया है,— कितने ही मरते-मरते बमुश्किल बचते हैं, और कुछ तो इस विषय-विलास के चक्कर मे मर भी जाते है।

हम आजकल समाज मे देखते हैं कि गृहस्थाश्रम और विद्यार्थी अवस्था स्थास्थ्य के लिए दोनो एक-सी है। इन दोनो के मानी है शक्ति का दिवालियापन ! पवित्र चरित्र और ब्रह्मचारी विद्यार्थी बहुत कम मिलेगे और संयमी गृहस्थी तो हज़ार मे एक-आध भले ही हो। जहाँ पश्चिमी शिक्षा, ग़रीबी, और गृहस्थी इन तीनो का त्रिवेणी-संगम हो, वहाँ की लाज तो भगवान ही रक्खे। बाजीगर के आम के पेड़ की तरह देखते ही देखते वह पौदा उगता है, लह-लहाता है और फल लाकर बूढ़ा भी हो जाता है। आजकल के युवकों मे वय कम होने पर भी बूढ़ों के से, निर्बल, निःसत्व और रक्त-हीन शरीर देखने को मिलते हैं।

सारा राष्ट्र निस्तेज नर-ककालों की भूमि हो रहा है। एक तो खाने का पहले ही से घाटा है, इस पर यह असयम उनकी और भी दुर्गति कर देता है। इन गरीब दीन-हीन लोगों को धन-वैभव अथवा खान-पान सम्बन्धी अन्य सुख नसीब नहीं होते। सुख-सम्भोग के क्षेत्र की परिसमाप्ति उनके लिए विषय-भोग ही मे हो जाती है। पत्नी को वे सबसे सस्ता सुख-साधन समझते है। सस्ता इसलिए कि वह सुलभ है। पातिव्रत का आदर्श पुरुषो ने किसी तरह उन बेचारियो के हृदयो पर अङ्कित कर रक्खा है। इसलिए पति की प्रत्येक बात के सामने उन्हे अपना सर झुकाना ही पड़ता है। पर इसका असर महा भयकर होता है।

अति विषय-भोग का दूसरा दुष्परिणाम है सन्तान-वृद्धि। सन्तान-वृद्धि दो कारणो से अनिष्ट है। एक तो इसलिए कि बार-बार प्रसूति-पीड़ा के कारण स्त्रियो का शरीर बहुत जर्जर और निःसत्व हो जाता है। उनके शरीर मे कोई शक्ति नहीं रह जाती। और दूसरे, परिवार का बोझ बढ़ जाता है! भारत मे एक जमाना ऐसा था जब लोग सौ-सौ पुत्रो की कामना करते थे। अब तो "अष्ट पुत्रा सौभाग्यवती भव" वाला आशीर्वाद भी भारी मालूम होता है। समझदार लड़कियों मे अगर साहस हो तो अब तो वे यहां तक कह देती हैं कि अब इन आठो को अपने पास रखिए महाराज। हमे तो यही आशीर्वाद दीजिए कि "सुपुत्रा सौभाग्यवती भव।" और पुत्र की भी जरूरत इसलिए है कि आगे वृद्धावस्था मे सहारा हो जाय। पर

दिन-ब-दिन देश में जो गरीबी बढ़ती जा रही है उसको देखकर कितने ही पुरुष और पढ़ी-लिखी लड़कियाँ विवाह करना नही चाहतीं। इसका कारण क्या है? यही कि वे देखते हैं कि *विवाहित स्त्री-पुरुषों का जीवन सुखमय नहीं रहता। हम न जाने कितनी योजनाओं, भावनाओ, एवम् आदर्शों को लेकर जीवन-क्षेत्र में प्रवेश करते है। पर गृहस्थी की चक्की मे पिसते-पिसते हमारा कचूमर निकल जाता है। न वे महत्वाकाक्षाऍ पूरी होतीं है, न जीवन सुखमय होता है।* पाया तो यह गया है कि जीवन उलटा दुःखमय हो रहा है। प्रत्येक बार पुरुष की और स्त्री की भी शक्ति कम हो जाती है। स्त्री-पुरुष का शरीर जितना निःसत्व और निर्बल होगा वैसी ही उसकी सन्तान भी होगी। वह बुद्धिशाली भी नही हो सकती। घर मे बालक बढ़ते ही उनके पालन-पोषण और शिक्षा आदि की जिम्मेदारियाँ आ ही जाती है। इन बातो में प्रत्येक मनुष्य की शक्ति परिमित होती है। यदि वह असंयम के कारण आवश्यकता से अधिक सन्तान पैदा कर लेता है तो वह तिगुना पाप करता है।

(१) अपनी शक्तियों पर अनुचित भार ले लेता है। एक ऐसा काम अपने सिर पर ले लेता है जिसको वह निवाह नही सकता। इस हालत मे उसे अपने उदर-पोषण के काम मे कपट से काम लेना पड़ता है। वह सत्य आचरण से गिर जाता है। और चूंकि पुण्य की तरह पाप भी एक संक्रामक वस्तु है, वह अपनी गन्दगी से समाज में भी गन्दगी फैला देता है। शारीरिक और नैतिक दोनो दृष्टि से वह पतित होता है।

(२) अपनी विकार-वशता द्वारा अपनी जीवन-सहचरी धर्म-पत्नी के जीवन को वह संकटापन्न कर देता है। उसपर इतने अधिक बालकों के पालन-पोषण का भार आ पड़ता है कि जिसको वह उठा नहीं सकती। उसका प्रसन्न स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है। जो एक समय देवदूत-सी प्रभामयी और आनन्दमयी मालूम होती थी, पुरुष की विकार-वासना के कारण कर्कशा-सी हो जाती है। स्त्री की भी शारीरिक और मानसिक शक्तियों का ह्रास हो जाता है।

(३) गृहस्थाश्रम जीवन की दूसरी सीढ़ी है। वास्तव में विद्यार्थी दशा की अपेक्षा मनुष्य का गृहस्थ-जीवन अधिक सुखमय और उन्नत होना चाहिए। मनुष्य की ज्ञान और बुद्धि की सम्पत्ति बढ़ जानी चाहिए। स्वभाव की मधुरता अधिक उत्कट होनी चाहिए; परन्तु विकाराधीन मनुष्य उस जीवन को जो कि स्वर्गोपम होना चाहिए था, नरक बना लेता है।

(४) और इस सारे व्यापार मे अगर सबसे अधिक अन्याय किसी के साथ होता है, तो वह है इस दम्पति की अबोध सन्तान।

हम शराब वाले भाग में बता चुके हैं कि बालक के कुछ जन्म-सिद्ध अधिकार होते हैं। यह दम्पति अपने व्यभिचारी जीवन द्वारा उन बेचारों के ये सारे अधिकार छीनकर संसार में उन्हें निःशक्त, निर्बुद्धि और ऐसी अवस्था में छोड़ देते हैं जिसमें वे सदाचार का भी पालन नहीं कर सकते। ये बालक आगे चलकर रूरी कमाई से अपना पेट नहीं भर सकते। फिर

उन माता-पिता का पेट भरना तो दूर की बात है। समाज-सेवा और देश-सेवा का तो फिर इन पामरो के दिमाग़ में ख़याल भी कैसे आ सकता है ?

इन सब झंझटो से बचने के लिए कितने ही ना-समझ स्त्री-पुरुष गर्भ को ही गिरा देते हैं, दूसरे शब्दो मे भ्रूण-हत्या कर डालते हैं। (खास कर भारत की विधवाओ मे यह पाप अधिक फैला हुआ है। इस पर हम आगे चलकर विचार करेंगे) मुझे ठीक-ठीक पता नही कि भारत मे यह पाप किस मात्रा मे फैला हुआ है। सन्तति-निरोध के कृत्रिम साधनो का आविष्कार होने से पहले पश्चिमी देशो मे यह पाप बहुत बड़े पैमाने पर फैला हुआ था। परन्तु जब से इन कृत्रिम साधनो का आविष्कार हुआ है तब से यद्यपि यह प्रत्यक्ष भ्रूण-हत्या तो बन्द होगई तथापि व्यभिचार की बुराई तो बहुत भारी पैमाने पर फैल गई है। पहले तो यह डर था कि कहीं गर्भ रह गया तो डाक्टर से कुछ दवा लेकर उसे गिराने की व्यवस्था करनी होगी; और इस तरह गर्भ गिराने में बहुत भारी कष्ट होता है। इसलिए पुरुषों के दिल मे नहीं तो स्त्रियो के चित्त में तो अवश्य ही उस कष्ट का डर बना रहता था। परन्तु अब तो वह डर भी जाता रहा। व्यभिचार के लिए राज-मार्ग खुल गया। अब तो सब के लिए पाप सुलभ, और अदण्ड्य हो गया। पाप करके भी समाज की नजर मे अविवाहिता कुमारी और विधवा पवित्र बनी रह सकती है।

आजकल भारत मे भी सन्तति-निग्रह के कृत्रिम साधनों का बड़ी ही तेजी से प्रचार हो रहा है। मै इस विषय

पर पहले टॉल्स्टॉय का 'स्त्री और पुरुष' और महात्माजी का लिखा 'संयम या विलास' नामक ग्रन्थ पढ़ चुका था, जिनमें इन कृत्रिम साधनो के उपयोग से होनेवाले कुपरिणामो को बताया गया है। इनके पढ़ते हुए किसी भी भारतीय को संतति-निग्रह के कृत्रिम साधनो की बुराई से इन्कार नही हो सकता। पर इधर मुझे इस विषय पर अनेक ग्रन्थ पढ़ने का और अवसर मिला, उससे अब मुझे यह कहना पड़ता है कि दुर्भाग्यवश मै उन्हे पढ़ने के अपने मोह को रोक नहीं सका। उन्हे पढ़ने पर मुझे मालूम होता है कि मै उन्हे न पढ़ता तो अच्छा होता। इनमे से कई ग्रन्थ तो इतने गन्दे थे कि उन्हे आगे पढ़ने की हिम्मत ही नहीं हुई। विकार का इस तरह खुलेआम राज्याभिषेक करते हुए मैंने किसी को नहीं देखा था। साहित्य-क्षेत्र में जिन शब्दों और कामो के उच्चारण मात्र से भारतीय पुरुषों के चित्त को भी आघात पहुँचता है उनके वर्णनो से एक पश्चिमी महिला अपनी किताब मे निर्लज्जतापूर्वक अध्याय के अध्याय लिखती चली जाती है! जिस विकार से दिन-रात जागृत रहकर बचने के लिए हमारे शास्त्रो और पुराणो मे कहा गया है, उसी को वह परमात्मा की पवित्र आज्ञा बताकर यथेष्ट उपभोग करने की आज्ञा देती है, और उसकी आवश्यकता बताती है। उसके हूबहू वर्णनो को पढ़कर लेखिका के स्त्री-हृदय पर आश्चर्य होता है। इस बात को सिद्ध करने के लिए कि विकार-तृप्ति मनुष्य के लिए फायदेमन्द है, वह इन विकारी जीवो को उनके फलो से बचाने के लिए संतति-निग्रह के कृत्रिम साधनो को बताती है। उसकी युक्तियाँ बड़ी ही मोहक और घातक हैं।

विषय-विलास के नतीजे को टालने की युक्ति का आविष्कार करके आज पश्चिम ने संसार के लिए पतन का दर्वाजा खुला कर दिया है। (वह कहती है, इस आविष्कार ने संसार का बड़ उपकार किया है।) धर्म-ग्रन्थों मे जो संयम की आवाज है, उसे वह 'अन्धी चिल्लाहट' के नाम से पुकारती है और इन पापों से संसार को सचेत करनेवाले टाल्स्टाय जैसे द्रष्टाओं को, इस आन्दोलन का समर्थन करनेवाले, 'मूर्ख संन्यासी' कहते हैं। विपय-विलास के ये पुरस्कर्ता यदि शीघ्र न सम्हले, तो निःसन्देह प्रकृति इन्हे दिखा देगी कि सचमुच मूर्ख कौन है। सन्तति-निग्रह के लिए इस पक्ष ने जितनी दलीले पेश की है सब उचित और विचारणीय है। और वे ब्रह्मचर्य की आवश्यकता और महत्व को प्रकट करती हैं। अन्य देशों की बात छोड़ दें,हम उन्हे अपने देश की परिभाषा मे ही, संक्षेप मे यो कह सकते हैं:—

(१) पुरुष अक्सर स्त्रियो की इच्छा-अनिच्छा का और समय-असमय का विचार नही करते और जबर्दस्ती अपनी विपय-क्षुधा को शांत करने के लिए उन्हे मजबूर करते है।

(२) फलतः स्त्रियो को पहले ही से अनिच्छा-पूर्वक मातृत्व प्राप्त होता है। अधिक विपय-भोग के कारण बच्चों की संख्या बढ़ जाती है।

(३) आजीविका के साधन तो जल्दी-जल्दी नही बढ़ते। इसलिए अनावश्यक बच्चो की संख्या बढ़ते ही दारिद्र्य भी अवश्य ही बढ़ता है।

(४) परन्तु दारिद्र्य के साथ-साथ स्त्री-पुरुपो की काम करने की शक्ति अर्थात् रोजी कमाने की शक्ति तो घट जाती है।

(५) इस शक्ति के घटते ही घर पूरा नरक बन जाता है। पुरुष और स्त्री दोनो कमजोर, और चिड़-चिड़े हो जाते हैं। पोषक भोजन न मिलने से बच्चो का लालन-पालन भी ठीक नही होता। इससे चिन्ता उत्पन्न हो जाती है। चिन्ता को भुलाने के लिए निचली श्रेणी के लोग शराब पीने लगते हैं और शराब से व्यभिचार शुरू होता है।

(६) व्यभिचार से गुप्त रोग आदि गुह्य रोगो के कारण सन्तति ही नहीं होती, या होती है तो रोगी, अंधी, कम-जोर आदि।

(७) इधर इन रोगी और कमजोर माता-पिता के बच्चे भी कमजोर, अन्धे, लूले, बदसूरत और बुद्धिहीन होते हैं।

(८) जिस समाज मे ऐसे स्त्री-पुरुष और बच्चे अधिक संख्या मे होने लगते है उसके विनाश मे भी कहीं सन्देह हो सकता है ?

यह कारण-कार्य-परम्परा बिल्कुल निर्दोष है। और भारतीय समाज का ध्यान इस बुराई की ओर जितना जल्दी आकर्षित होगा उतना ही अच्छा। पश्चिमी लेखको ने अनेक अङ्को द्वारा इस विचार-परम्परा को अधिक विशद करके दिखा दिया है। किन्तु हमारा देश तो पराधीन है। यहाँ इन बातो की खोज करने की किसे पड़ी है ? किंतु अङ्को की जरूरत ही क्या है, जब समाज का प्रत्यक्ष जीवन ही हमारे सामने मौजूद है ?

यहाँ तक सब ठीक है। पर इस तरह समाज का भीषण से भीषण चित्र खींचकर पश्चिम के लेखक सन्तति-निग्रह के कृत्रिम साधनो का उपदेश करते है। वे उसके लिए ये दलीलें पेश करते हैः—

(१) इस साधन-द्वारा स्त्री-पुरुष जितने बच्चे चाहेंगे उतने ही पैदा कर सकेंगे,उससे ज्यादा नहीं हो पायेंगे ।

(२) और संतति-निग्रह की यह तालीं हाथ लगते ही न उनके (अ) आवश्यकता से अधिक बच्चे बढ़ेंगे, (आ) न दारिद्रय बढ़ेगा, (इ) न स्त्रियाँ कमजोर होंगी, (ई) न पुरुष शराबी और व्यभिचारी होगा, (उ) न उसे तथा स्त्री को गुप्त रोग होंगे, (ऊ) न रोगी, विकलांग, बुद्धि-हीन बच्चे पैदा होंगे, (ए) न गृह-सौख्य नष्ट होगा, और (ऐ) न समाज निर्धन और पराधीन होगा ।

यह भी सब अनेक अंशों मे सत्य है । ये फायदे तो संयम से होते ही है, परन्तु इनके अलावा और भी अनेक लाभ हैं ।

(१) संयम से माता और पिता दोनों की शक्ति और तेजस्विता बनी रहेगी ।

(२) पुरुष इसी शक्ति को अन्य क्षेत्रो में परिवर्तित करके उससे अपने देश को अनेक फायदे पहुँचा सकते हैं ।

(३) यदि यह संयम धार्मिक होगा तो उसके द्वारा मनुष्य की असाधारण आध्यात्मिक उन्नति हो सकती है, जो सच्चे सुख और शांति का सीधा मार्ग है ।

(४) जिस देश के स्त्री और पुरुष संयमी होंगे, आत्मविजयी होंगे, उसके लिए सुख-सम्पति बाये हाथ का खेल है ।

(५) इस मनोविजय में मनुष्य को जो तालीम मिलती है, वह अमूल्य होती है ।

(६) इस संयम के कारण हम अपने आस-पास एक पवित्रता का वायु-मण्डल उत्पन्न कर देंगे, जिससे सारा समाज ऊँचा

उठ जायगा और हमारे बच्चों पर भी उन उच्च संस्कारों का असर पड़ेगा।

(७) समाज मे सन्तोष और भक्ति की वृद्धि हो जायगी, क्योंकि ऐसा संयम केवल भक्ति की सहायता से ही सुरक्षित रह सकता है।

कृत्रिम सन्तति-निग्रह द्वारा इनमे से एक भी फायदा नहीं होगा। उल्टे उससे यह हानियां होंगी—

(१) चारो ओर स्वच्छन्दता और विकार का साम्राज्य फैल जायगा।

(२) स्त्री-पुरुष तेज-हीन, लम्पट और कमजोर होंगे।

(३) उनसे ऊँचे पारमार्थिक काम नहीं होंगे।

(४) समाज में आध्यात्मिकता का लेश भी न रहने पायगा।

(५) मनुष्य का जीवन उच्छृंखल और अनियमित होगा।

(६) विषयी वायु-मण्डल मे बच्चे भी शीघ्र ही विषयी हो जावेगे। अर्थात् भावी उन्नति, विजय या स्वाधीनता की आशा पर पानी फिर जायगा।

(७) विधवाओं, अविवाहित लड़कियो और घर-बार छोड़ कर विदेश मे रहनेवाले स्त्री-पुरुषो मे तथा धार्मिक सम्प्रदायो में भी व्यभिचार बेहद फैल जायगा। क्योंकि पाप के प्रकट होने का डर दूर होते ही मानवी अधमता समाज मे बे-रोक-टोक फैलने लग जायगी, और गुप्त रोगो को फैलायगी।

(८) यह एक निश्चित बात है कि गर्भ-धारण का डर दूर होते ही पति-पत्नी अत्यन्त विषयी होजावेगे। इस समय अधिक

संतति होने से परिवार की वृद्धि का डर उन्हे रहता है। पर इसके बाद तो उनके लिए कोई रोक-टोक न रहेगी। अधिक विषय-भोग से देश के स्त्री-पुरुषों का स्वास्थ्य बिगड़ेगा और राष्ट्र निर्बल तथा निस्तेज होजायगा।

कृत्रिम साधनों के समर्थक कहते हैं—यह सब ठीक है। पर इतना संयम करने के लिए मनुष्य को कितने ज्ञान और मनोबल की ज़रूरत होती है? वह देश के इने-गिने लोगो में भले ही कुछ अंशो में हो, पर सर्व-साधारण के लिए तो यह असम्भव ही है।"

पर, किसी काम के केवल मुश्किल होने भर से उसे छोड़ देना तो बुद्धिमानी न होगी। श्रेय का मार्ग हमेशा मुश्किल होता है। पर जिस मनुष्य को अपने सच्चे कल्याण की इच्छा होती है वह तो उसी को पसंद करेगा। पतन का मार्ग हमेशा ढालू और सुगम होता है। गिरते हुए नहीं, गिरजाने पर मनुष्य को अपनी चोट का ख़याल होता है। और कई बार यह चोट इतनी भयंकर होती है कि वह मनुष्य को जीवन-भर के लिए पंगु बना देती है। अतः मनुष्य को चाहिए कि पहले ही से ज़रा सोच-सम्हल कर चले।

अपनी शक्ति और सदाचार को कायम रखते हुए बल्कि दूसरी भाषा में कहे तो *सन्तति-निग्रह को उद्देश्य न बनाकर सदाचार, वीर्य-रक्षा, बुद्धि, बल-तेज आदि के बढ़ाने वाले ब्रह्मचर्य को अपना उद्देश्य बनाकर के संयमपूर्ण जीवन व्यतीत करनेवाले व्यक्तियो के लिए संयमशील जीवन उतना कठिन*

नहीं होगा जितना केवल सन्तति-निग्रह को लेकर चलने वालों के लिए होता है।

सन्तति-निग्रह मे विषय-वासना को दबाने की इच्छा नही होती बल्कि उसके उपभोग के साथ-साथ उसके फल से बचने की इच्छा रहती है । और इसका फल भी वैसा ही मिलता है। ब्रह्मचर्य का आदर्श प्रेरक अधिक होता है, सन्तति-निग्रह तो उसमे अनायास हो ही जाता है। परन्तु उसके अतिरिक्त और भी मनुष्य की कितनी ही ऊँची शक्तियाँ विकसित हो जाती हैं, जो मनुष्य को प्रत्येक क्षेत्र मे विजयशाली बना देती है।

इस संयम का सब से सरल उपाय है पृथक शय्या। पति-पत्नी कभी एकान्त मे न रहे। अपने इष्ट देवता या श्रद्धेय, आदरणीय पूजनीय व्यक्ति की मूर्ति को सामने रख कर संयम-शील जीवन व्यतीत करने की प्रतिज्ञा ले। और प्रतिज्ञा-भंग पर दोनो २४ घंटे का उपास करने का दृढ़ निश्चय कर ले। स्मरण रहे कि ऐसे प्रसग पर उपवास करने में कभी शिथिलता न की जाय। प्रायः देखा यह गया है कि प्रतिज्ञाभंग हो जाने पर पति-पत्नी इस संकोच से उपवास नहीं करते कि घर के अन्य लोग पूछेंगे तब उन्हे उपवास का कारण क्या बतावेंगे। आज नहीं, फिर कभी जब अकेले होंगे तब कर लेंगे. यह वृत्ति बड़ी घातक है। व्रत अथवा प्रतिज्ञा मे एक बार शिथिलता आते ही वह कम-जोरी आदमी को धर दबाती है। पाप या अपराध पर मनुष्य को स्वेच्छापूर्वक या किसी अन्य मनुष्य द्वारा जब दण्ड नहीं दिया जाता तब उसके लिए वह पाप सह्य हो जाता है। उसे

उत्तेजना मिल जाती है। वह फिर बार-बार वही बात करने को उत्साहित होता है। अपने साथ रिआयत करनेवाले लोग कभी ऊपर नहीं चढ़ सकते। मनुष्य अपनी प्रतिज्ञा को इसीलिए नहीं निबाह सकता कि वह अपने साथ रिआयत करने लग जाता है। अपने साथ रिआयत करना मनुष्य के पतन की कुञ्जी है। उत्थान का मूल-मन्त्र है कर्तव्य-कठोरता, प्रत्येक ग़लती पर स्वशासन और स्वेच्छापूर्वक अपने आपको दण्डित करने की वृत्ति।

पर इस संयम-शील जीवन के लिए पति-पत्नी दोनो के सम्पूर्ण सहयोग की जरूरत है। यह तब और भी अधिक अच्छी तरह निबाहा जा सकता है जब दोनो इसके महत्व को भली-भॉति जानते है।

केवल सन्तति से पिंड छुड़ाने का उद्देश्य जब तक रहेगा, तबतक मनुष्य संयमी जीवन मे कभी सफल नही हो सकता। जैसा आदर्श होगा वैसा फल मिलेगा। यह निश्चित समझिए।

हॉ, एक बात और है। इस विषय में असफल होने का एक ख़ास कारण है स्त्रियो के चित्त की कोमलता। संयमी पति-पत्नी को जहाँ तक हो सके अलहदा कमरो मे सोना चाहिए। कम से कम शैया तो जरूर अलग-अलग हो। परन्तु कितनी ही स्त्रियों के लिए इतना छोटा-सा वियोग (?) भी असह्य हो जाता है, और पति से भी अपनी पत्नी का यह दुःख देखा नहीं जाता! नतीजा होता है संयम का भंग।

संयम का एक और बढ़िया उपाय है कार्यशीलता—किसी काम को अपना प्रिय विषय बना करके उसे पूरा करने में पति-पत्नी दोनों को जुट पड़ना चाहिए। यह कार्य जितना पवित्र निःस्वार्थ होगा उतने ही हम ऊपर उठेंगे। वह जितना स्वार्थ-पूर्ण और नीचा होगा उतना ही हम नीचे गिरेंगे। शहरों में रहनेवाले सेठिया तथा व्यापारी लोग भी यों कहने-भर को दिन-रात काम में निमग्न रहते हैं। धन इकट्ठा करने के पीछे बावले हो जाते हैं। दिन-रात दूकान पर रहते हैं। यह कार्य स्वार्थ-पूर्ण होने के कारण इसमें उच्च स्फूर्ति का अभाव है। वह स्त्रियों के कोमल चित्त पर प्रभाव नहीं डाल सकता। न वे स्त्रियों को अपने साथ में लेते ही हैं। इसीलिए हम देखते हैं कि उन दोनों पति-पत्नी का जीवन पापमय होता है। पत्नी के दिल को ऊँचा उठानेवाला दिन भर काम में लगाये रखने का कोई साधन न रहने के कारण वह अतृप्त रहती है। वह पतित हो जाती है। फिर वहाँ शुद्ध प्रेम कैसे हो ? यह खज़ाना लुटते ही वह व्यवसायी पति भी मारा-मारा फिरने लगता है।

इसके विपरित हम दूसरे वर्ग को देखें। उन लोगों को देखें जिनके चित्त में उच्च आदर्शों को स्थान मिल गया है। हम देखते हैं कि इस वर्ग के लोग हमारे देश में धीरे-धीरे बढ़ते जाते हैं। एक निश्चित आदर्श ने उनको आकर्षित कर लिया है। पति-पत्नी दोनों उस सुवर्ण-सूत्र में बँधे हुए उस दिशा में बढ़ते ही चले जाते हैं। सेवामय जीवन में विकार-चिन्ता के लिए अवसर ही नहीं मिलता। कहीं विकार प्रबल हुआ भी तो एकान्त का

उत्तेजना मिल जाती है। वह फिर बार-बार वही बात करने को उत्साहित होता है। अपने साथ रिआयत करनेवाले लोग कभी ऊपर नही चढ़ सकते। मनुष्य अपनी प्रतिज्ञा को इसी-लिए नही निबाह सकता कि वह अपने साथ रिआयत करने लग जाता है। अपने साथ रिआयत करना मनुष्य के पतन की कुञ्जी है। उत्थान का मूल-मन्त्र है कर्तव्य-कठोरता, प्रत्येक ग़लती पर स्वशासन और स्वेच्छापूर्वक अपने आपको दण्डित करने की वृत्ति।

पर इस संयम-शील जीवन के लिए पति-पत्नी दोनों के सम्पूर्ण सहयोग की जरूरत है। यह तब और भी अधिक अच्छी तरह निबाहा जा सकता है जब दोनो इसके महत्व को भली-भॉति जानते है।

केवल सन्तति से पिंड छुड़ाने का उद्देश्य जब तक रहेगा, तबतक मनुष्य संयमी जीवन मे कभी सफल नहीं हो सकता। जैसा आदर्श होगा वैसा फल मिलेगा। यह निश्चित समझिए।

हॉ, एक बात और है। इस विषय मे असफल होने का एक ख़ास कारण है स्त्रियो के चित्त की कोमलता। संयमी पति-पत्नी को जहाँ तक हो सके अलहदा कमरो मे सोना चाहिए। कम से कम शैया तो जरूर अलग-अलग हो। परन्तु कितनी ही स्त्रियो के लिए इतना छोटा-सा वियोग (?) भी असह्य हो जाता है, और पति से भी अपनी पत्नी का यह दुःख देखा नहीं जाता! नतीजा होता है संयम का भंग।

संयम का एक और बढ़िया उपाय है *कार्यशीलता*—किसी काम को अपना प्रिय विषय बना करके उसे पूरा करने में पति-पत्नी दोनों को जुट पड़ना चाहिए। यह कार्य जितना पवित्र निःस्वार्थ होगा उतने ही हम ऊपर उठेंगे। वह जितना स्वार्थ-पूर्ण और नीचा होगा उतना ही हम नीचे गिरेंगे। शहरो मे रहनेवाले सेठिया तथा व्यापारी लोग भी यो कहने-भर को दिन-रात काम मे निमग्न रहते हैं। धन इकट्ठा करने के पीछे बावले हो जाते है। दिन-रात दूकान पर रहते हैं। यह कार्य स्वार्थ-पूर्ण होने के कारण इसमे उच्च स्फूर्ति का अभाव है। वह स्त्रियो के कोमल चित्त पर प्रभाव नही डाल सकता। न वे स्त्रियो को अपने साथ मे लेते ही है। इसीलिए हम देखते है कि उन दोनो पति-पत्नी का जीवन पापमय होता है। पत्नी के दिल को ऊँचा उठानेवाला दिन भर काम मे लगाये रखने का कोई साधन न रहने के कारण वह अतृप्त रहती है। वह पतित हो जाती है। फिर वहाँ शुद्ध प्रेम कैसे हो? यह खजाना लुटते ही वह व्यवसायी पति भी मारा-मारा फिरने लगता है।

इसके विपरित हम दूसरे वर्ग को देखे। उन लोगो को देखें जिनके चित्त मे उच्च आदर्शों को स्थान मिल गया है। हम देखते हैं कि इस वर्ग के लोग हमारे देश मे धीरे-धीरे बढ़ते जाते हैं। *एक निश्चित आदर्श ने उनको आकर्षित कर लिया है। पति-पत्नी दोनों उस सुवर्ण-सूत्र में बँधे हुए उस दिशा में बढ़ते ही चले जाते हैं। सेवामय जीवन में विकार-चिन्ता के लिए अवसर ही नहीं मिलता।* कही विकार प्रबल हुआ भी तो एकान्त का

अभाव। फलतः विकार को अपने आप शान्त हो जाना पड़ता है। वह *जीवन शान्त है, भव्य है, अपने आपको अपने पारिवर्ती लोगों को ऊँचा उठानेवाला है। इस दारिद्रता से भी स्वर्गीय सुख है।*

[४]

गुप्त और प्रकट पाप

समाज एक विशाल सागर है। इसमे नाना प्रकार की बुराइयाँ भी भरी हुई है। ऐकान्तिक पाप, और पत्नी-व्यभिचार के अतिरिक्त गुप्त व्यभिचार भी समाज मे बहुत बड़े पैमाने पर फैला हुआ है। यह पाप जिस तरह समाज को छिन्न-भिन्न कर रहा है उसे देखकर बड़ा दुःख होता है। कैसा दैव-दुर्विपाक ! क्या हमारे देश के पुरुषों को अपनी कर्तृत्व-शक्ति और पुरुषत्व दिखाने के लिए कोई क्षेत्र ही नहीं दिखाई देता ? व्यभिचार हमारे देश के पुरुषों के लिए एक मनोविनोद की सामग्री है। जब आदमी अपनी जीवन-शक्ति और नैतिक सम्पत्ति को आग लगाने ही में आनन्द मनाने लगें तब समझना चाहिए कि उसका नाश निकट है। हमारे देश का नीति-शास्त्र बहुत उच्च है। परन्तु आज समाज की अवस्था देखकर लज्जा से सिर झुकाना पड़ता है। जब कोई दूसरा आदमी × आ-कर हमे अपनी बुराइयाँ बताने लगता है तो हम उसका मुँह बंद करने भर को भले ही कह सकते हैं कि अरे पापी ! अपने देश को तो जरा देख ! तू कहाँ दूध का धुला हुआ है ? पर वास्तव मे इससे हमारी आत्मा को सन्तोष नही हो सकता वह तो तभी होगा जब हम स्वयं शुद्ध हो जावेगे।

× मसलन "गटरों की जमादारिन" मिस मेयो।

अपने देश की भलाई और बुराई का ख़याल दूसरे देशो की बुराई-भलाई की तुलना से करना हमेशा फायदेमन्द नहीं है। दूसरे के बुरे लड़के को बताकर उसमे अपेक्षा-कृत कुछ अच्छे अपने लड़के को देख कर यदि हम सन्तोष करने लगेंगे तो वह आत्मवंचना होगी—हम अपने आपको ठगेगे। जो बुराई हमारे अन्दर है, वह महज इसलिए सह्य नहीं की जानी चाहिए कि वह दूसरे देशो की अपेक्षा यहाँ पर कम मात्रा में है। इसी बात को ध्यान मे रखते हुए इस व्यभिचार के प्रश्न पर भी हमे विचार करना है।

हम देखते है कि समाज मे कितने ही स्त्री-पुरुषो के आपस में गुप्त-रूप से बड़े गन्दे सम्बन्ध है। इसका कारण है विकार की अधिकता। जब स्त्री अथवा पुरुष विकाराधीन हो जाते है तो उन्हे औचित्य, जात-पांत, सगे-रिश्ते नीच-ऊँच आदि का कोई ख़याल नहीं रहता। इसमे प्रायः लोग स्त्रियो को ही दोष देते हैं। परन्तु यह (पाप-रूपी) राक्षस किसी के साथ पक्षपात नहीं करता। हाँ, जहाँ संस्कार उच्च होते हैं वहाँ इसकी दाल एका-एक नहीं गलती। समाज मे आजकल इसने जो अनर्थ मचा रक्खा हैं उसे दूर करने के लिए सब से अच्छा उपाय यही है कि हम उन कमजोर स्थानों को ही दूर कर दे जहाँ इसे प्रहार करने का मौका मिलता है।

समाज-शरीर को देखते हुए मुझे हमारे अज्ञान और कुप्रथाओं मे ही ये कारण दिखाई देते हैं। संक्षेप मे उनको यों रख सकते है:—

१—सदोष विवाह-पद्धति (बाल, वृद्ध और बेमेल विवाह)

२—स्त्रियो के वास्तविक गौरव को न जानना।

३—पौरुष की मिथ्या कल्पना ।

४—परदा, गरीबी, अन्ध धार्मिकता ।

५—हमारी परिस्थिति, जड़वादिता, प्रेरक आदर्श का अभाव ।

अब इन पर संक्षेप मे क्रमशः विचार करे—

(१ अ) सब से पहले विवाह-पद्धति को ही ले । यद्यपि अधिकांश शिक्षित लोग अब बाल-विवाह को अनिष्टकर और अनर्थकर मानने लग गये है, तथापि हमारे विशाल समाज मे अभी इस विषय मे काफी प्रचार करने की जरूरत है । अपढ़-अज्ञानी लोग तो अब भी लड़के-लड़कियो की शादी जल्दी ही कर दिया करते हैं । बच्चों को यह खयाल भी नही होता कि विवाह के मानी क्या होते हैं । *लड़के-लड़कियों में स्वभावतः कम अन्तर रक्खा जाता है । समाज के विकारमय वायु-मण्डल में वे पलते हैं और असमय ही अपनी जीवन-शक्ति बहाने लग जाते है । लड़के की अवस्था छोटी होने के कारण उसका स्वास्थ्य फ़ौरन गिर जाता है । वह निःसत्व या नपुंसक हो जाता है । पहली अवस्था में बदहज़मी, संग्रहणी, प्रमेह या क्षय का रोगी होकर जल्दी यमराज के यहाँ जा पहुँचता है और दूसरी अवस्था मे मृत मनुष्य का-सा यह अपना जीवन व्यतीत करता है । वह मारे लज्जा के मरा जाता है । धूर्त्त और बदमाश हकीमों तथा वैद्यो के भुलावे में आकर अपने तथा अपने पिता के धन को भी बरबाद कर देता है । निष्पौरुष और निर्धन पति के प्रति स्त्री में कोई आकर्षण नहीं रह जाता । दूसरे धूर्त और बदमाश स्त्री*

की ताक मे रहते ही हैं और इस तरह गुप्त रूप से पाप शुरू हो जाता है।

छोटी उम्र में पति के मर जाने से लड़कियाँ सांसारिक अनुभवो से वंचित रहती हैं। घर में उनकी कोई पूछ-ताछ भी नहीं करता, और शिक्षा के अभाव के कारण उनके सामने कोई उच्च आदर्श भी नही रहता। फिर समाज मे तो विकार का साम्राज्य होता ही है। इस अवस्था मे अगर वे पतित हो जावे तो इसमें कौन आश्चर्य की बात है? एक पत्नी मर जाने पर चार-चार और दस-दस क्या, अपने लिए असंख्य विवाह करने की स्वतंत्रता का समर्थन करनेवाला पुरुष उन्हे किस मुँह से झिड़क सकता है? प्रतिदिन बाहर की बीसों नालियों की गन्दगी मे नहानेवाले पामर पतित पुरुष की झिडकी और भर्त्सना का असर भी क्या हो सकता है? किसी व्यक्ति के महज़ पुरुष या स्त्री होने से पाप की मात्रा बढ़ या घट नहीं जाती। पाप की तो शकल ही ख़राब है। वह सबके लिए एक-सा निन्द्य होना चाहिए। जितना स्त्री के लिए उतना ही पुरुष के लिए भी।

(१ आ) जो बुराई बाल-विवाह मे है वही, बल्कि उससे भी अधिक बुराई वृद्ध-विवाह मे है। बाल-विवाह की कुप्रथा का आरम्भ भले ही अज्ञानमय कहा जा सकता है, परन्तु वृद्ध-विवाह का तो आरम्भ, मध्य और अन्त तीनों पापमय हैं। पहले लड़की का पिता अपनी प्यारी लडकी की शादी वृद्ध के साथ करके पाप कमाता है और वह बेवकूफ़ वृद्ध वर भी।

बाद में जब वृद्ध पति मृत या मृतवत हो जाता है तब वह लड़की भी पाप कमाकर अपने पिता और पति के पापों की पूर्ति करती है। वृद्धों के साथ में या अधिक उम्रवाले विधुरों के साथ मे अपनी लड़की की शादी करनेवाला पिता कैसा पापी होता है ? क्या कोई बीस साल का युवक चालीस या पैतालीस वर्ष की वृद्धा से विवाह करना पसन्द करेगा ? फिर एक अबोध बालिका को एक ऐसे अधेड़ या बूढ़े के साथ जबर्दस्ती जीवन भर के लिए बाँध देना कैसी निघृण दुष्टता है ? वह इन वधू-वरो के बीच निर्मल प्रेम की आशा कैसे करता है ? पहले तो कभी पुरुष ऐसे बेमेल विवाह करने पर राजी ही न होगा और यदि लोभ-वश या अन्य किसी कारण से राजी भी हो गया तो या तो वह फौरन दूसरी या तीसरी शादी कर लेता है या अन्य प्रकार के गुप्त व्यभिचारो मे प्रवृत्त हो जाता है।

(१ इ) व्यभिचार का तीसरा कारण है बेमेल विवाह। हम लोगो ने अपनी विवाह-पद्धति मे प्रायः क़वायद को तो बनाये रखने की कोशिश की है। धूम-धड़ाका भी खूब करते है। परन्तु जो सब से अधिक महत्वपूर्ण बात है, वधू-वरो का चुनाव, उसकी तरफ बहुत कम ध्यान देते है। आधुनिक शिक्षा या सभ्यता का जिन पर असर पड़ गया है उनकी बात को अगर छोड़ दें, तो कहा जा सकता है कि लड़के-लड़कियों के माता-पिता वधू-वरों की जोड़ी मिलाने की अपेक्षा अपनी आर्थिक स्थिति की तुलना की तरफ़ ही अधिक ध्यान देते हैं। विवाह करने के पहले वधू-वरों के रूप, रंग, गुण

शील, स्वास्थ्य आदि को मिला लेना परम आवश्यक है। कभी-कभी लड़के-लड़कियो की उम्र में काफी अन्तर होता है, परन्तु एक का शरीर दुर्बल होता है तो दूसरे का हृष्ट-पुष्ट। एक सुन्दर है तो दूसरा कुरूप। एक शिक्षित और चतुर है तो दूसरा अपढ़ और वेवक़ूफ। एक को चटक-मटक और ठाठ-बाट का शौक़ है, तो दूसरा सरल स्वभाव वाला है। इस तरह जब वधू-वरो के बीच इतनी विषमता होती है, तो उनमें काफी आकर्षण नहीं होता। इस अवस्था मे यदि वे प्रेमपूर्वक रहते हैं तो इसका कारण है उनका शील और भारतीय धर्म-शास्त्रो की मर्यादा यह स्त्रियो की महत्ता है। ऐसी अवस्था मे पुरुष तो फ़ौरन् दूसरा विवाह कर लेते है। वे स्त्रियों के हृदय की अवस्था का ज़रा भी ख़याल नहीं करते। जैसे एक भैंस दूध नहीं देती और हम दूसरी भैंस ले आते है। उसी तरह वे दूसरी शादी कर लेते हैं और इसपर मतलबी समाज एक अक्षर नहीं बोलता, बल्कि बड़ी खुशी से लड्डू खाने को उस पापी के यहाॅ चला जाता है। किन्तु यदि यही बात किसी स्त्री के द्वारा होती है तो समाज में हाहाकार मच जाता है।

इन सब पापाचारो को देखकर भारत का सारा युवक-समाज काॅप रहा है। वह इन सब बेहूदी बातो के विरुद्ध बग़ावत का झण्डा उठाने के लिए तैयार खड़ा है। अगर पुराण-प्रिय (Conservative) दल को अपने देश और समाज की रक्षा करनी है तो वह इस दिन-प्रति-दिन बढ़ते हुए पापाचार को रोकने के लिए नीचे लिखी बातो पर फौरन अमल करने लग जायॅ।

(१) बाल और बेमेल विवाह की बन्दी ।

(२) जो विधवाये विवाह करना चाहे उन्हे विवाह की इजाजत दी जाय ।

(३) एक पत्नी के जीवित रहते हुए पुरुष दूसरा विवाह न करें ।

(४) विधुर विधवाओ से ही विवाह करे ।

(५) स्त्री-पुरुषो की विवाह-मर्यादा बीस और पच्चीस वर्ष हो ।

(२) दूसरे कारण की विवेचना करते हुए मुझे बड़ी लज्जा मालूम होती है । पुरुषो ने स्त्रियों के नम्र, विनय-शील और कोमल स्वभाव का कितना दुरुपयोग किया है ! उनके अज्ञान से कैसा अनुचित लाभ उठाया है ? पुरुषो ने तो स्त्रियो को अपनी उपभोग्य सामग्री ही समझ रक्खा है । एक तरफ स्त्रियो को अज्ञान मे रखकर पुरुषो ने पातिव्रत धर्म की व्याख्या और आख्या-यिकायें लिखीं और दूसरी तरफ़ उन्होंने स्त्रियों के उपभोग-शास्त्र की रचना की । इसपर नाना प्रकार के काव्य-ग्रन्थ तैयार किये । फल-फूलो की जातियो के समान स्त्रियो की जातियाँ बनाई गई । उनके नख, शिख, स्तन, आँख आदि का वर्गीकरणात्मक एक शास्त्र तैयार हुआ ।

राजाश्रित पण्डित लोग अपने आश्रय-दाता को वीरता भरे काव्य सुनाने के बदले ऐसी हीन और पातक रचनाये सुनाकर पाप में डुबोने लगे ।

जिस समाज के पण्डित लोग, राजाश्रित बुद्धिजीवी अपने समाज और मालिक के सामने व्यभिचार को देववाणी में प्रति-

ष्ठित करके उसे शास्त्र की दीक्षा देने लगा वह स्वाधीन कैसे हो सकता है ! कैसे उसके नरेन्द्र वीर-वृत्ति हो सकते है ? क्या इन तमाम चेष्टाओं का परिणाम घोर अधःपतन नहीं होगा ? और दुर्भाग्य की वात तो यह है कि यही कुत्सित कर्म आजकल के कुछ साहित्य-सेवी कर रहे हैं। कई पत्र-पत्रिकाओं में जैसे चित्र, कहानिया और विज्ञापन छप रहे है वे इस वात को स्पष्टतया प्रकट करते हैं कि भारत के पुरुप अपनी माताओं, वहनों और गृहिणियों के गौरव को नहीं समझ सके।

(३) व्यभिचार का तीसरा कारण है पौरुप की मिथ्या कल्पना। पौरुपवान् (?) पुरुप वर्ग कहता है "पुरुप को प्रकृति का यह आदेश है कि वह अनेक स्त्रियो के साथ उपभोग करे। क्योकि गृहिणी तो वेचारी गर्भवती होने पर वेकाम हो जाती है। पुरुप की वह शक्ति भी यदि गृहिणी के गर्भवती होने के साथ उसके गर्भकाल और शिशुसंवर्धन के दिनो मे दव जाती तव तो कोई सवाल ही न था। पर प्रकृति ने यह नही किया। इसके स्पष्ट मानी यही हैं कि पुरुप अपनी वासना को अन्य स्त्रियो के उपभोग द्वारा शान्त करे। ऐसी दलील पेश करनेवालो के लिए तो संसार के सभी कर्तव्य और सारा पुरुपार्थ विपयोपभोग ही है। पर यह रास्ता ग़लत है, वड़ा ही ख़तरनाक है। विनाश इसका अवश्यम्भावी परिणाम है। सौभाग्य-वश समाज मे अधिकांश स्त्री-पुरुप स्वभावतः सत्प्रवृत्त होते हैं। अन्यथा मनुष्य-जाति का अस्तित्व इस पृथ्वी पर से कभी का

उठ गया होता। वे जानते है कि मनुष्य का ध्येय तो धर्म-साधन और सच्चा पुरुषार्थ प्राणि-मात्र की सेवा करना है। वास्तव मे विषय-भोग तो अपनी शक्ति का सब से निकृष्ट उपयोग है। *मनुष्य के लिए अपनी शक्ति और पौरुष का उपयोग करने के लिए अनंत क्षेत्र पड़ा हुआ है। करोड़ों अभागे आपकी सहायता के भूखे हैं। आप जिसे विषय-क्षुधा कहते हैं वह इन्हीं सत्कार्यों को करने के लिए प्रकृति का आपको निमन्त्रण है। पर हमारा वासना लोलुप हृदय उसे उलटा ही समझता है। यदि प्रकृति के इस पवित्र आदेश को आदमी समझने लग जायँ तो राष्ट्रों के बीच अखण्ड शान्ति और प्रेम निवास करने लगे।*

(४ अ) गुप्त-व्यभिचार को बढ़ाने मे परदा, ग़रीबी और अंध-धार्मिकता का भी कम हिस्सा नहीं। परदा अन्धकार का प्रतिनिधि है और अन्धकार पाप का जनक है। जिस समाज मे परदा है वह जानता है कि परदे की ओट में कैसे-कैसे अनर्थ होते रहते हैं। परदा के मानी लाज अथवा मान-मर्यादा नही। यह तो सदैव इष्ट ही है। परदा के मानी है अज्ञान की दीवार। यह दीवार कृत्रिम भी होती है और असली भी। पर है दोनो रूपो मे घातक। परदा स्त्रियो को स्वाभाविक स्वतंत्रता के उप-भोग से वंचित करता है। पर स्वाधीनता तो जीव-मात्र का स्वभाव है। इसलिए जब घर के लोग स्त्रियो या लड़कियो को यह स्वाधीनता नही देते, तब वे अन्य अपरिचित लोगो के सामने और साथ में इस स्वाधीनता का उपभोग करने की चेष्टायें

करती है। और चूंकि जीवन भर परदे के अन्दर रहने के कारण वे धूर्त लोगो की बदमाशी समझ नही पातीं, अतः फौरन उनके जाल मे फँस जाती है। इधर घर वाले इस बात को तो गवारा कर लेते है कि उनकी बहू-बेटियाँ मेले-तमाशों में गैर लोगों के बीच मे जिनमे बहुत बदमाश भी होते हैं, मुँह खोलकर चले; परन्तु वे इसे सहन नही कर सकते कि वे अपने ही घर के आदमियों मे, जो उनके भाई, तथा पिता के सदृश होते है, मन खोलकर रहे और उनसे बोलें-चालें। इस प्रकार इस मिथ्या परदे की आड़ मे अनाचार तथा घोर पाप होते रहते है।

(४ आ) ग़रीबी पाप का दूसरा कारण है। कितने ही लोग इतने ग़रीब होते है कि अपने गाँव में रहकर आजीविका प्राप्त नही कर सकते। पुरुष शहरों मे कमाने के लिए चले जाते है। तनख़्वाहे कम होने के कारण वे बार-बार घर को लौट नही सकते। स्त्रियो का पेट भरने के लिए भी काफी रुपये नही भेज सकते। तब वे क्या करे? स्त्रियाँ मजूरी करने जाती हैं या वैसे ही कोई धनिक आदमी उन्हे फँसा लेता है। लोग ग़रीबी मे इस पाप के शिकार बहुत जल्दी और आसानी से बन जाते हैं। उधर शहरो मे पुरुष भी कहीं फँस जाते हैं। विदेशी ढंग के कारखाने आदि मे यह पाप बहुत बड़े पैमाने पर फैला हुआ है।

अंध धार्मिकता भी इस पाप को एक हद तक पोषण दे रही है। योगीश्वर श्रीकृष्ण की लीला-कथाओ का इस तरह बहुत बुरा असर फैल रहा है। *बदमाश पौराणिक और गुरु लोग इन कथाओं द्वारा भोली-भाली स्त्रियों को आये दिन ठगते है।* तीर्थ-स्थानो मे यह विशेष रूप से फैला हुआ है। जिन बड़े-बड़े

मन्दिरों का भारत भर में नाम फैला हुआ है उनमे से बहुत से व्यभिचार को उत्पन्न करने और पोषण देनेवाले स्थान हैं। वहाँ पर भगवानजी पुजारियो और पण्डो के कैदी होते हैं। जब चाहते हैं वे अपनी सुविधा और मतलब के अनुसार दिन को और रात को पट खोलते और भगवान को भोग लगाते है। उस समय दर्शको की भीड़ लग जाती है। बस इस भीड़ मे बदमाश और गुण्डो की बन आती है। कितनी ही स्त्रियो के पतन का आरम्भ यहीं से होता है। कई तीर्थ-स्थान व्यभिचार के लिए मशहूर है। इसीलिए आजकल के सुशिक्षित लोगों की इन तीर्थ-स्थानों पर से बहुत-कुछ श्रद्धा उठ गई है। कम से कम वे मेले वग़ैरा के प्रसंग पर तो कभी वहाँ जाना पसंद नही करते।

भारत की गुरु-प्रणाली मे भी यह पाप घुस गया है। हाल ही मे ऐसे ही एक विख्यात "भक्तिभवन" का रहस्य-स्फोट हुआ है। उसकी पाप-कथाएँ सुनकर दिल दहल उठता है। उसपर अपने विचार प्रकट करते हुए पू० महात्माजी लिखते हैं:—

"कलकत्ते के" गोविन्द-भवन में जयदयाल जी की प्रेरणा से भक्ति-रस उत्पन्न करने के लिए एक भाई रखे गये थे। उन्होंने भक्ति के नाम पर विषय-भोग किया। स्त्रियों द्वारा अपनी पूजा स्वीकार की। स्त्रियाँ उनको भगवान समझकर पूजने लगीं। उन्होने स्त्रियो को अपना जूठन खिला-खिलाकर व्यभिचार मे प्रवृत्त कर दिया। भोली-भाली स्त्रियो ने समझ लिया कि 'आत्म-ज्ञानी' के साथ शरीर-संग व्यभिचार नही कहा जाता। यह घटना दुःखदायक है, पर इससे मुझे आश्चर्य नही हुआ। *भक्ति के नाम पर विषय-भोग चारों ओर होता दिखाई पड़ता है। और, जबतक भक्ति का*

असली रहस्य समझ में न आवे, तबतक यदि धर्म के नाम पर अनर्थ हो तो इसमें नवीनता क्या है ? बगुला-भक्तों द्वारा जो अनर्थ न उत्पन्न हो वही आश्चर्य है । मै राम-नाम का द्वादश-मन्त्र का, पुजारी हूँ, किन्तु मेरी पूजा अन्धी नहीं है । जिनमे सत्य है, उनके लिए रामनाम नौकारूप है । पर मै यह नहीं मानता कि जो लोग ढोग से रामनाम का उच्चारण करते है, उनका उद्धार रामनाम से हो सकता है । अजामिल आदि का उदाहरण दिया जाता है, पर वे काव्य हैं और उनमे रहस्य है । उनके विषय मे शुद्धभाव का आरोपण है । जो मानता है कि 'रामनाम से मेरे विषय शान्त होंगे', उसको रामनाम फलता है किन्तु जो ढोंगी यह विचार कर रामानाम का उच्चारण करता है कि 'रामनाम से मैं अपने कर्मों को ढॅकता हूँ' वह तर नहीं सकता । ... ...

अस्तु, बहनों के लिए मुझे दो बाते कहनी है । जो पुरुष अपनी पूजा कराता है वह तो भ्रष्ट होता ही है; पर बहनें भी उन के साथ क्यों भ्रष्ट हों ? जिन बहनों को मनुष्य की ही पूजा करनी हो वे क्या किसी आदर्श स्त्री की पूजा नही कर सकती । जो जीवित नहीं है उनकी पूजा नहीं कर सकती ? जो जीवित हैं उनकी पूजा किस प्रकार अच्छी कही जा सकती है ? ज्ञानी सोलन का यह वाक्य हृदय मे अच्छी तरह धारण कर लेने योग्य है कि, "किसी जीवित मनुष्य के विषय में यह नहीं कहा जा सकता कि वह अच्छा है । इसीलिए पूजा केवल भगवान की ही होती है ।"

हमें आशा है कि पाठक और पाठिकाएँ ऐसे छिपे कूओ से अपने आपको और अपने प्रिय जनो को अवश्य बचाये रखने की कोशिश करेगे ।

इस पाप के अनेक कारणो मे से देवदासी प्रथा भी एक है । यह प्रायः मद्रास और उड़ीसा प्रान्त मे अधिक है । पुराने विचार के लोग मन्नते मागते है और उसके बदले में अपनी लड़की की भेट मंदिर के उस देवता को चढ़ा देते है जिससे कि मन्नत मांगी गई थी । यह छोटी-सी बच्ची मंदिर मे रहनेवाली उन औरतो के सुपुर्द कर दी जाती है जो इसी तरह देवता की भेट चढ़ाई हुई होती हैं । इनका काम मंदिर में देवता के सन्मुख नाचना-गाना होता है । इनके सामने न तो कोई उच्च आदर्श होता है और न इन्हे उच्च शिक्षा ही मिलती है । इसी कारण धूर्त लोग इन्हे अपने चंगुल मे फँसा लेते है और इस प्रकार धर्म के नाम पर पाप करते हैं । सब से प्रथम तो मन्दिर के पुजारी दूषित वातावरण मे रहने के कारण इन्हे भ्रष्ट करते हैं । फिर तो ये देवदासियाँ धनिक यात्रियो और दर्शको की सेवा-सुश्रूषा के लिए भी भेज दी जाती हैं । इस प्रकार ये लोगो के अन्दर व्यभिचार की प्रचारिका बन जाती हैं । अगर देवदासी को प्रथा को बन्द कर दिया जाय तो व्यभिचार का यह सरेआम प्रचार बहुत-कुछ रुक जाय ।

इस तरह हम देखते हैं कि समाज मे गुप्त रूप से बहुत बड़े पैमाने पर व्यभिचार फैला हुआ है ।

शहरों में जो हमें व्यभिचार के प्रकट अड्डे और बाज़ार दिखाई देते हैं वह तो इस पाप की तलछट-मात्र हैं । जिन

भूली-भटकी स्त्रियों को दुराचार के कारण सगे-सम्बन्धी त्याग देते हैं, समाज जिन्हें घृणा की नजर से देखता है, और जिनके लिए अपने गॉव या आसपास के प्रदेश मे जीवन कष्ट-मय हो जाता है वे अन्त मे ऊबकर सरेआम अपने शरीर का हाट लगाकर शहरो में बैठती है; और पेट के लिए पाप कमाती है। समाज मे गुप्त रूप से जितना पापाचार फैला हुआ है उसकी तुलना में यह प्रकट वेश्या-व्यभिचार नगण्य-सा है। जैसी ये स्त्रियॉ होती हैं वैसे ही इनके पास जानेवाले पुरुष भी समाज की तलछट होते हैं। उनके न प्रतिष्ठा होती न लज्जा। यह वेश्या-व्यभिचार की बुराई मध्यभारत और दक्षिण भारत की अपेक्षा उत्तर भारत में अधिक फैली हुई है। गुजरात-काठियावाड़ मे और भी कम है।

वेश्या-व्याभिचार के विषय में विशेष लिखना व्यर्थ है। यह एक गन्दी प्रथा है। मनुष्य-जाति के लिए यह अत्यन्त लज्जा-जनक वस्तु है। इसकी जड़ मे स्त्रियो के वास्तविक गौरव-सम्बन्धी हमारा अज्ञान है। अगर हम उनके गौरव को जानते होते, संयम के महत्व का हमे खयाल होता, वैवाहिक बन्धनों मे एक दूसरे को बॉधते समय विषय की अपेक्षा पारस्परिक कल्याण का हम खयाल रखते होते तो समाज मे न इतना गुप्त व्यभिचार बढ़ता और न समाज के कलंकरूप आज इतनी वेश्याएँ दिखाई देतीं।

व्यभिचार को रोकने का सबसे सरल तरीक़ा यही है कि पति-पत्नी एक दूसरे से संतुष्ट हो। पति-पत्नी मे रूप, रंग, गुण, शील, स्वास्थ्य और शक्ति आदि मे उचित समानता होनी चाहिए।

परन्तु ये सब बातें दो व्यक्तियो मे एक-सी कभी नहीं रह सकती। अतः जितनी अधिक समानता मिले प्राप्त की जाय और शेष बातों मे पारस्परिक सहानुभूति और सहन-शीलता से काम ले लिया जाय। इन सब बातो में स्वभाव का मेल सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। समान स्वभाव अर्थात् गुण-शीलवाले भिन्न-भिन्न जाति तथा देश वाले व्यक्ति भी भाई-भाई की तरह रह सकते है। परन्तु असमान गुण-शीलवाले भाई-भाई भी साथ-साथ नहीं रह सकते। अतः पति-पत्नी के लिए समान गुण-शीलवाला होना बहुत जरूरी है। फिर भी शिक्षा और संस्कार बहुत-कुछ सहायता करते है।

इस सारे व्यभिचार के लिए हमारे ख़याल से स्त्रियो की अपेक्षा पुरुष ही अधिक ज़िम्मेदार हैं। पुरुषों ने अपने आपको स्त्रियों का भाग्य-विधाता बना लिया है। जिन बातो को वे इष्ट समझते हैं वही समाज में प्रचलित हो सकती है। जिन्हें वे बुरी समझते हैं उनकी निन्दा होती है। पुरुषों ने अपने लिए व्यभिचार सह्य बना कर बहुत भारी ग़लती की है। स्त्रियों के लिए व्यभिचार जितना निन्द्य बताया गया है; व्यभिचारिणी स्त्री के साथ जितनी कड़ाई के साथ व्यवहार होता है, उतनी ही कड़ाई पुरुषों के साथ भी हो, वैसे ही कठोर दण्ड पुरुषों को हों तो यह पाप बहुत-कुछ कम हो सकता है। स्त्री अपना पेट भरने में प्रायः परावलम्बिनी रहती है। इसलिए एक-आध बार ग़लती हो जानेपर यदि वह समाज की नज़र में आ जाती है तो उसके लिए आजीविका प्राप्त करना कठिन हो

जाता है। सदाचारी समाज उसे उभारने की कोशिश करने के वजाय सदा के लिए त्याग देता है तहाँ पापी लोग उसे और भी गिराने के लिए दौड़ पड़ते हैं। ऐसी हालत में उनका सुधार असम्भव हो जाता है।

भारतीय समाज के इस भीषण पतन का आखिरी कारण है उसकी पराधीनता। यह इस पतन का कारण और परिणाम दोनो हैं। परकीय सत्ता की अधीनता में समाज इतना पामर, आदर्श-हीन, निकम्मा और गैर जिम्मेदार बन गया है, उसके वीर्य-विकास के स्वाभाविक मार्ग या साधन इतने दुर्गम, दुर्लभ और अनाकर्षक कर दिये गये हैं, और उसके सामने पतन की ऐसी-ऐसी लुभावनी सामग्री प्रतिदिन पेश की जा रही है, साथ ही उसे इतना अकर्मण्य भी बना दिया है कि स्त्री-पुरुषों को अपनी शौर्योत्कर्ष की क्षुधा शान्त करने के लिए कोई मार्ग ही नहीं दिखाई देता। धन, वैभव और यौवन मिलते ही इनके सदुपयोग का कोई अच्छा-सा मार्ग ही उन्हे नहीं मिलता। शासक प्रभुओं से मिलकर कोई काम करने से (Humiliation) अवमानना होती है, साधारण समाज में हिल-मिलकर काम करने के लिए हृदय की असाधारण विशालता की ज़रूरत है और स्वतंत्र रूप से किसी काम को करने की इन धनीमानियो मे क्षमता नहीं होती। तब सिवा विषय-विलास के इन्हें सूझे ही क्या? ऊँचे दर्जे के लोग अपने मनोरंजन के लिए विषय-विलास में मग्न है और निम्न

श्रेणी के लोग अपने दुःखों को भुलाने की ग़रज़ से शराब-ख़ोरी और व्यभिचार में फँस जाते हैं। इस तरह सारा राष्ट्र क्षैण हो रहा है !

[५]

गुप्त रोग

अनीति मूलक विषयोपभोग से स्त्री-पुरुषो को अनेक प्रकार के और भीषण गुप्त रोग हो जाते है। शरीर में अगर कोई सब से अधिक क़ीमती चीज है तो वह है वीर्य ! वीर्य ही मनुष्य का आधार है। शरीर मे अगर वीर्य है तो मनुष्य अथक परिश्रम कर सकता है। खूब अध्ययन कर सकता है। वह वीर और प्रतिभाशाली भी होता है। उसमे उत्साह-शक्ति का खज़ाना होता है। परन्तु *वीर्य के नष्ट होते ही मनुष्य की शक्ति, साहस, उत्साह और प्रतिभा में ज़मीन-आस्मान का अन्तर हो जाता है। ऐसी अमूल्य शक्ति को खोना एक महान अपराध है। परमात्मा उस मनुष्य को और कोई अलहदा दण्ड नही देते। उस शक्ति का स्वयं अभाव ही अनेकों दुखों, कष्टों, अवमाननाओ और रोगो का कारण होता है।*

अनीति-मूलक सम्बन्धो से दो प्रकार की हानि होती है।

१ सामाजिक अव्यवस्था

२ गुप्त रोग

यदि विवाहित पुरुष अपनी प्रतिज्ञा को तोड़कर अनीतिमय आचरण करने लग जायॅ तो उसका नतीजा घोर सामाजिक

अशान्ति होगा। प्रत्येक स्त्री और पुरुष दिल से चाहता है कि अपने मनुष्य के प्रेम का उसे सम्पूर्ण उपभोग मिले। अतः जब कभी वह अपने प्रेमी को दूसरे व्यक्ति द्वारा उपभुक्त होता हुआ देखता है तो उसे वह असह्य हो जाता है। यह वृत्ति मानव स्वभाव में जन्मजात-सी प्रतीत होती है। वह मनुष्य की मनुष्यता का एक महत्वपूर्ण अंग है। जिसमे वह वृत्ति नहीं है वह मनुष्य नहीं कहा जा सकता। इस प्राकृतिक नियम का भंग करनेवाला मनुष्य-समाज का अपराधी समझा जाता है। फिर यह बात एक इसलिए भी अपराध समझी जाती है कि गुप्त व्यभिचार द्वारा एक मनुष्य दूसरे मनुष्य की स्त्री से विषयोपभोग करके उसके गृह-सौख्य को नष्ट करता है और उसके बोझ को बढ़ाता है। क्योंकि इस अनुचित सम्बन्ध से उत्पन्न होनेवाले बालक और उस विश्वास-घातिनी स्त्री का पालन-पोषण तो उस पति को ही करना पड़ता है। इधर अपनी पत्नी से विश्वासघात करनेवाला शख्स भी तो उसके निर्मल प्रेम को खो बैठता है। *व्यभिचारी पुरुष की स्त्री का निर्मल बना रहना एक आश्चर्य की ही बात है। वह मनुष्य जो खुद पाप करता है अपनी पत्नी को पाप करने से कैसे रोक सकता है?* इसके मानी यह नहीं कि व्यभिचारी पुरुष की पत्नी अवश्य ही व्यभिचारिणी होती है या उसे ऐसा हो जाना चाहिए। परन्तु बात यह है कि जहाँ किसी मनुष्य को दिल भरकर प्रेम नहीं मिलता, अगर वह प्यासा अपनी प्यास अन्यत्र बुझाने की कोशिश करे तो इसमें आश्चर्य की बात नहीं है। अतः व्यभिचारी पुरुष सावधान हो जायँ! वे याद रक्खें कि अपने आचरण-द्वारा वे सारे घर का आचार भ्रष्ट करते हैं। *व्यभिचारी*

पुरुष की स्त्री, लड़की, और लड़के का इस कुसंस्कार से पूरी तरह बचना असम्भव है।

पर यह मामला केवल आचार-भ्रष्टता और सामाजिक अव्य-वस्था तक ही सीमित नहीं रहता। *इस आचार-विषयक गन्दगी से मनुष्य को कई भीषण रोग भी हो जाते है।*

दूषित पुरुष अथवा स्त्री से विषयोपभोग करने से या मासिक धर्म की अवस्था मे स्त्री के साथ भोग करने से सूजाक के जन्तु कुपित हो जाते हैं और पुरुष की मूत्र-नलिका में सूजन पैदा हो जाती है। स्त्रियो का मूत्र-द्वार तो अत्यन्त क्षुद्र होता है इसलिए उन्हें इससे उतना कष्ट नहीं होता। इस रोग के कीटाणु उनकी योनि से पुरुष की जननेन्द्रिय मे घुस जाते हैं और मूत्र-नलिका को रोककर उसमे सूजन पैदा करके उसे कड़ा बना देते हैं। इसके कारण अस्वाभाविक लिगोद्रेक होने लगता है। इस अवस्था को अंग्रेजी मे कॉर्डी कहते हैं। जब लिगोद्रेक होता है तो सूजा हुआ हिस्सा तन जाता है। इस क्रिया से अंदर की मुलायम चमड़ी फट जाती है और उसमे घाव हो जाता है। घाव मूत्र-मार्ग मे होने के कारण पेशाब करते समय मनुष्य को भयंकर कष्ट होता है।

अब प्रकृति घाव को भरना शुरू करती है। जब कोई घाव भरता है तो घाव भरने के बाद वहाँ पर एक गूथ पड़ जाती है। गूथ पड़ने पर मांस कुछ बढ़ जाता है। मूत्र-मार्ग पर हुआ घाव जब भर जाता है तब उस घाव के स्थान पर पड़ी हुई गूथ और गूथ के चमड़े से मूत्र-मार्ग बिलकुल बन्द हो जाता है। (इसको "स्ट्रिक्चर" कहा जाता है) इसे दूर करने के लिए भयंकर पीड़ा होती

है। लोहे की एक टेढ़ी सलाई जननेन्द्रिय में डाली जाती है। मरीज को उस समय जो वेदनाएँ होती हैं उनको यहाँ लिखकर वताना असम्भव है। इसकी असह्य वेदना के कारण रोगी उस समय इतने जोर से अपने दांत दवाता है कि उनके टूटने का भय रहता है। इसी ख़याल से डॉक्टर लोग मरीज के मुँह मे चमड़ा या ऐसा ही कोई नरम पदार्थ रख देते है। पथरी के और स्ट्रिक्चर के ऑपरेशन मे फर्क सिर्फ इतना ही है कि पथरी के ऑपरेशन की अपेक्षा इसमे समय कुछ कम लगता है। पर सूजाक के रोगी को यह रोग वार-वार होता रहता है। जव स्ट्रिक्चर के कारण मूत्र-मार्ग वन्द हो जाता है तव पेट मे एक अलग छेद करके उस रास्ते से कई दिन और महीनों तक मूत्र को निकालना पड़ता है। इसके अलावा इसी के कारण, मनुष्य के गुप्त अंगो के आस-पास अर्थात् रोग और शरीर के जोड़ के स्थान की ग्रंथियाँ भी वढ़ जाती है इनको "वद" कहा जाता है। मनुष्य को इससे भी वड़ा कष्ट होता है। कभी-कभी तो इसका दर्द विना आपरेशन के कम नहीं होता।

कॉर्डी अर्थात् अस्वाभाविक लिगोन्द्रिक की अवस्था मे घावो से खून भी वहने लगता है। इससे रोगी की अवस्था और भी गंभीर हो जाती है। आगे चलकर जव यह रोग अधिक वढ़ जाता है तव उसे लिंगक्षय नामक रोग होकर पुरुप की तमाम जननेन्द्रिय सड़कर नष्ट हो जाती है!

सूज़ाक का विप वड़ा तीव्र होता है। मरीज को अपने रोग की दवा करते हुए तथा मामूली अवस्था में भी खूब सावधान रहना चाहिए। भूल से भी यदि इस विष का स्पर्श कहीं आँखो

को हो गया तो समझ लेना चाहिए कि वह आदमी हमेशा के लिए अन्धा हो गया। इस रोग *की भयंकर संक्रामकता* के विषय मे डॉ० सिलवानिस स्टॉल नीचे लिखे उदाहरण देते हैं—

एक पचास साल का बूढ़ा किसी आँख के डॉक्टर के पास गया और अपनी दुखी हुई आँख दिखाने लगा। डाक्टर ने कहा—"आपकी आँखों को गनोरिया का विप लग गया है।" बूढ़े ने कहा—"यह असम्भव है।" डाक्टर साहव ने कहा कि मेरा निदान ग़लत नहीं हो सकता। और हुआ भी यही। एक साल बाद बूढ़ा फिर आया और बोला—"डाक्टर साहब आपने सच कहा था। जब मै पिछली बार आपके पास आया था, उस समय मेरा लड़का, जो बाहर नौकरी पर रहता है, यहाँ आया हुआ था। एक दिन जब उसने स्नान कर लिया तो मै स्नान-गृह मे गया। और मैंने स्नान करने पर उसी अंगोछे से अपना चेहरा पोछा जिससे वह अपना शरीर पोछकर गया था। मुझे बाद मे मालूम हुआ कि उन दिनों वह गनोरिया से पीड़ित था।"

और एक परिवार का हाल सुनिए। शनिवार की शाम कारख़ानों मे काम करनेवाले के लिए बड़ी आनन्द-दायक होती है। किसी व्यभिचारी गृहस्थ ने कारख़ाने से आते ही शनिवार की शाम को अपने स्नान-गृह मे स्नान किया। उसके बाद उसके लड़के, लड़कियाँ, स्त्री, बहन आदि सब ने स्नान किया और सब के बदन पर सूजाक के फोड़े हो गये यद्यपि प्रत्येक मनुष्य ने स्नान करते समय पानी बदल दिया था।

इस तरह कई बार एक का पाप अनेक को कष्ट देता है। यदि इस प्रकार किसी व्यभिचारी पुरुष ने अपनी स्त्री

को सूज़ाक का शिकार बना दिया और दुर्भाग्यवश उसी समय यह गर्भवती भी हो गई तो बच्चे के लिए यह बड़ी घातक होती है। इस हालत मे पति-पत्नी को चाहिए कि प्रसूति के पहले-पहले माता को वे किसी तरह नीरोग कर दें। प्रसूति के समय यदि स्त्री की योनि दूषित रही तो बालक निश्चय ही अन्धा होगा। हाँ, बाहर आते ही यदि उस विष को साफ़ धो दिया जाय तो उसकी आँखे बच सकती है।

इस प्रकार व्यभिचारी पुरुष केवल नैतिक दृष्टि से ही नहीं बल्कि संघ-दृष्टि से भी एक भयंकर जन्तु है। पता नहीं, वह कब जान में या अनजान मे अपने विष से हमारे शरीर और मन को विषाक्त बना दे।

डॉ० निसर ने सन् १८७९ मे इस विष के जन्तुओ का पता लगाया। इसके पहले लोगो का ख़याल था कि गनोरिया छः-सात सप्ताह में पूर्ण रूप से दूर हो सकता है। आजकल मामूली मरीजों को नीरोग होने मे छः महीने लग जाते हैं। ख़ास तरह पर बिगड़े हुए मामलो मे तो एक से लगाकर चार-चार वर्ष तक लग जाते है।

पहले लोगो का खयाल था कि यह रोग स्त्री-पुरुषो के जननेन्द्रियों तक ही सीमित रहता है। पर अब यह पाया गया है कि इसका जहर शरीर के अंग-प्रत्यंग में घुस जाता है। यह तो मस्तिष्क, फेफड़े, जिगर, गुर्दा, यकृत तथा शरीर के तमाम जोड़ों तक ख़ून के साथ पहुँचकर धावा कर देता है।

डॉ० गर्नसी अपनी (Plain Talk on Avoided Subjects नामक) पुस्तक मे लिखते है—

जब किसी आदमी को सूज़ाक होता है तो आप भले ही रुग्ण-स्थान पर कुछ लगा-लगूकर या इन्जेक्शन लगाकर उसे बार-बार दवा दें पर वह हमेशा के लिए कभी नहीं जाता। वह विष तो गुप्त रूप से शरीर में जीवन-भर बना रहता है, और स्ट्रिक्चर, डिसूरिया, ग्लीट आदि रूपों में प्रकट होता रहता है। इससे आदमी का दिल घबड़ा जाता है। इसीके कारण वृद्ध अवस्था मे मरीज की बड़ी दुर्दशा होती है और शनैः शनैः मरीज प्लास्टिक न्यूमोनिया से ग्रसित होकर मर जाता है।

शेष दो गुप्त रोगों के नाम कंक्राइड और सिफलिस (गर्मी) है। पहले दोनो एक-से मालूम होते है। पर उनकी प्रकृति मे महान अन्तर है। कंक्राइड केवल जननेन्द्रिय का और केवल बाह्य चर्म-रोग है! उससे खून दूपित नहीं होता। दूपित स्त्री-पुरुप से सम्पर्क होने पर ९ दिन मे इसकी फुन्सी दिखाई देती है। औषधि करने पर जल्दी अच्छी भी हो जाती है। इसका शरीर पर कोई स्थायी परिणाम भी नही होता और न यह कोई आनुवंशिक संस्कार छोड़ता है।

पर कैंसर य सिफलिस, जिसे संस्कृत मे फिरंगी रोग कहते हैं, बहुत ही भयंकर है। इसके नाम से ज्ञात होता है कि भारतवर्ष मे यह रोग पहले था ही नहीं और यदि होगा भी तो इस परिमाण में नहीं। चौदहवी और पद्रहवी सदी में यूरोप के यात्रियों द्वारा भारत मे इसका बहुत फैलाव हुआ। यह रोग बड़ा धोखा देता है। शरीर मे इसके विप का प्रवेश हो

जाने पर भी तीन से लेकर छः सप्ताह तक मनुष्य को इसके अस्तित्व का पता भी नहीं चलता। और जब सकी पहली फुन्सी दिखाई देती है, जो कि एक आलपीन की टोपी से बड़ी नहीं होती, सारे शरीर मे इसका विप फैल जाता है।

फिरंगी रोग अथवा सिफलिस (गर्मी) से कंक्राइड की तुलना करते हुए कंक्राइड बिलकुल मामूली मालूम होता है परन्तु वह भी इतना मामूली नहीं। इन दोनो रोगो की आश्चर्यजनक समानता रोगी को घोर चिन्ता में डाल देती है। और जो सिफलिस की भयंकरता को जानता है उसे तबतक अत्यंत मानसिक कष्ट उठाने पड़ते हैं जबतक कि रोग का ठीक-ठीक निदान नहीं हो जाता। इन दोनो को पहचान इस तरह है। कंक्राइड की फुन्सी जल्दी—कुछ ही दिनो मे दिखाई देने लगती है। सिफलिस की फुन्सी कई सप्ताह तक प्रकट नहीं होती। बाह्य रूप से दोनो एक-सी होती हैं परन्तु सिफलिस की फुन्सी जरा कड़ी होती है और कंक्राइड की फुन्सी अपेक्षाकृत नरम। बस इन दोनों रोगों की खास पहिचान यही है। कंक्राइड फुन्सी जरा बड़ी होती है। सूजन भी उसमे अधिक होती है। परन्तु शरीर के खून पर उसका कोई असर नहीं होता। औपधोपचार से वह जल्दी जाती भी रहती है। पर सिफलिस की फुन्सी तो तभी दिखाई देती है जब उसका विप सारे शरीर मे फैल जाता है। सिफलिस की फुन्सी तो भीतरी और फैले हुए रोग का एक लक्षण-मात्र है। इस फुन्सी को देखते ही रोगी और डॉक्टर को भी अधिक भीपण चिन्हो वाली दूसरी अवस्था के लिए तैयार रहना चाहिए।

सिफलिस की नीचे लिखी तीन अवस्थाएँ होती हैं।

प्रथमावस्था

प्रथमावस्था में वह छोटी-सी फुन्सी दिखाई देती है। उसका नीचे का हिस्सा कड़ा होता है। कुछ दिनो बाद वह बढ़कर एक खुले मुंह वाला फोड़ा हो जाती है। इसके आस-पास की चमड़ी सुर्ख रहती है। गनोरिया की भांति कंक्राइड और सिफलिस के रोगी को भी बद तो होती ही है। पर औपधोपचार से कुछ दिनों बाद दोनों अच्छे हो सकते हैं। पर इससे मनुष्य को निर्भय नहीं हो जाना चाहिए। क्योंकि सिफलिस का राक्षस रह-रह कर और हर समय पिछली बार से अधिक डरावना रूप लेकर आता है और मनुष्य पर आक्रमण करता है।

द्वितीय अवस्था

दूसरी अवस्था में विष सारे शरीर मे भीपण रूप से प्रकट होने लगता है। इस अवस्था को एक महीने से लेकर कोई चार-छः महीने भी लग जाते हैं। शरीर पर फुन्सियां ताम्बे के रंग के चकत्ते और चिट्टे दिखाई देते हैं। बदे बढ़ जाती है। जबान पर, मुँह मे और कण्ठ मे फोड़े हो जाते है। पेट, जिगर, आदि तक मे विप फैल जाता है। बालो की जड़े ढीली हो जाती है, और बाल गिरने लग जाते हैं। आदमी का उत्साह मर जाता है। विप दिमाग़ तक भी पहुँच जाता है। जिस के फल-स्वरूप आदमी पागल और मृगी का रोगी हो जाता है। ये है द्वितीय अवस्था के कुछ लक्षण। इसकी आयु कुछ निश्चित नहीं। एक से लेकर तीन वर्ष तक यह अवस्था रहती है।

तीसरी अवस्था

इस अवस्था को पहुँचने पर रोग वाह्य अंग को छोड़कर शरीर के भीतर और भी गहरे घुसकर हड्डियो पर आक्रमण करता है। पहले-पहल गठिया की तरह तीव्र वेदना होती है। सिफलिस की पीड़ा संधियो मे नही बल्कि दो संधियो के—खासकर घुटने और टखनो के बीच और कुछ सिर पर भी होती है। रात को वह इतनी बढ़ जाती है कि रोगी को विस्तर पर पड़े रहना भी मुश्किल-सा हो जाता है। हड्डियॉ अर्थात् Brittle इतनी कमजोर हो जाती हैं कि वे जरा से जोर लगने पर टूटने लग जाती है। नाक भी गल जाती है। ऐसे कई अभागों को हम शहरो की सड़को पर देखते है, जिनकी नाक, पॉव और हाथ की हड्डियॉ गल गई है। डॉक्टर नफीज एक ऐसे आदमी का हाल लिखते है जो अपने पैर से बूट खीचने लगा तो जांघ से पूरी टॉग ही उखड़ कर अलग हो गई! एक औरत की खोपड़ी में ऊपर से छेद ही हो गया। इस तरह एक नहीं हजारो उदाहरण दिये जा सकते हैं और हम ऐसे अभागो को समाज में घूमते हुए तथा अपना दुःखमय जीवन व्यतीत करते हुए रोज़ देखते हैं। सिफलिस का बीमार कभी इस डर से मुक्त नही हो सकता कि उसके भी हाथ-पैर या नाक इसी तरह कभी गल के नष्ट हो जायँगे।

यह रोग अत्यन्त भयंकर है। इसका शिकार होने पर आदमी का जीवन दयनीय और दुःखमय हो जाता है। मरीज को जो अपार दुःख होता है उसकी तो बात ही अलग है; परन्तु यों भी उसकी सूरत और शरीर ऐसा गन्दा और घिनौना हो जाता है कि उसे स्पर्श करना तो दूर उसकी तरफ देखने को भी

जी नहीं चाहता। उसके कीटाणुओं में संक्रामकता भी भयंकर होती है।

एक युवक एक डॉक्टर के पास इस रोग का इलाज कराने के लिए गया। डॉक्टर ने इसकी भयंकरता को दिखाते हुए युवक को खान-पान, रहन-सहन आदि के विषय मे इतनी हिदायतें दीं कि युवक ने घबड़ा कर कहा "तब तो, डाक्टर साहब, मेरा मर जाना ही भला है।" डाक्टर ने कहा "बिलकुल ठीक है; तुम अपने आप को मरा हुआ समझलो तो अच्छा हो। इसी मे अब तुम्हारा और समाज का कल्याण है।

पर जीते-जी इस तरह मरे के समान रहना कौन पसंद करेगा ?"

डॉक्टरों में इस बात पर बड़ा मतभेद है कि सिफलिस पूर्णतया निर्मूल हो सकता है या नहीं। किन्तु इसकी भयंकरता के विषय में तथा आनुवंशिक संक्रामकता के विषय में दो मत नहीं है। डाक्टर सिल्वानस स्टॉल लिखते हैं—"अगर प्रारम्भिक अवस्था मे ही अच्छा इलाज हो गया और बराबर दो-तीन वर्ष तक इलाज जारी रक्खा तो शायद मनुष्य को वह आगे कोई कष्ट न भी दे। परन्तु इसका कुछ निश्चय नहीं। कभी-कभी चार-छः वर्ष तक मनुष्य बिलकुल अच्छा हो जाता है और एकाएक फिर वही बीमारी भीषण आक्रमण कर देती है। इसलिए जहाँ एक ओर इस रोग का शिकार बने हुए युवक के लिए उसकी पीड़ा से बचने की कुछ आशा है तहाँ कोई यह समझकर इस पाप के चक्कर मे न पड़े कि "उंः क्या है। एक-दो इन्जेक्शन लगवा लेंगे।"

कलकत्ता के इण्डियन मेडिकल रेकार्ड ने व्यभिचार-जन्य महारोगो पर एक विशेषांक प्रकाशित किया है। उसमे नड़ियाद के डाक्टर पुराणिक लिखते हैं :—

"सिफलिस और गनोरिया से जो भयंकर परिणाम निकलते है उन सबको यहाँ लिखना कठिन है। सिफलिस पागलपन का एक मुख्य कारण है। हाय ब्लड प्रेशर के मरीजो मे से अधिकांश सिफलिस के रोगी निकलेगे। संसार मे जितने अधूरे गर्भपात होते है और मरे बच्चे पैदा होते है, उनमें से फीसदी ९० का कारण सिफलिस है। हम संसार मे जितने बदसूरत और विकलांग लोगो को देखते है उनमे से अधिकांश के पैदा करनेवाले माता-पिता सिफलिस के मरीज थे। स्त्रियो की प्रायः सारी गुप्त बीमारियो का कारण सिफलिस या गनोरिया या दोनो होते है। जो लोग बचपन मे अंधे होते है उनमे से ८० फी सदी के अंधेपन का कारण खोजने पर गनोरिया पाया जायगा।"

गुप्त रोग उन लोगों में सब से अधिक पाये जाते हैं जो वेश्या-व्यभिचार और शराब-खोरी के शिकार है। ये दोनो गुप्त रोगो के मुख्य कारण है। बल्कि सच तो यह है कि जितनी भी कामोत्तेजक चीजे हैं, वे सब मनुष्य को व्यभिचार मे प्रवृत्त करके समाज मे गुप्त रोगो को बढ़ाती हैं।

यद्यपि इस भयंकर रोग के शिकार बने हुए लोगो की ठीक-ठीक संख्या मिलना कठिन है, तथापि जो कुछ भी जानकारी अबतक प्राप्त हुई है उसके आधार पर यही कहा जा सकता है

कि यह रोग समाज की प्रत्येक जाति और वर्ग मे फैला हुआ है।×

बम्बई के गुप्तरोग-निवारक-संघ से नीचे लिखे अंक प्राप्त हो सकते हैं—

	दवा ले जाने वाले मरीज	वहीं इलाज कराने वाले
जे जे हास्पिटल	३० फी सैकड़ा	१८ फी सैकड़ा
मोती बाई स्त्री औषधालय	२९	—
जनरल प्रेक्टीशनर्स	११	—

पर यह संख्या तो बिलकुल अपूर्ण है। कितने ही युवक लज्जा के मारे शफाखाने जाते ही नहीं। बदमाश और बेईमान विज्ञापन बाज वैद्यों और हकीमो के लुभावने और धोखा देनेवाले विज्ञापनों के चक्कर मे आकर वे खराब दवाइयाँ खाते है और अपने शरीर और धन को यो ही बरबाद करते रहते हैं।

शहरो मे गुप्त रोगो के विशेष प्रचार का कारण यह है कि वे पश्चिमी उद्यम के केन्द्र हो रहे हैं। यहाँ पर आस-पास के प्रदेशों के लोग धन कमाने के लिए आ जाते हैं। परन्तु शहर मे खर्चा अधिक पड़ता है इसलिए अपने बाल-बच्चों को नहीं लाते। भारत के कुछ मुख्य-मुख्य शहरो मे १९२१ की मनुष्य-गणना के अनुसार फी एक हज़ार पुरुषो के पीछे स्त्रियो की संख्या इस प्रकार थी।

× पश्चिमी देशो मे ये रोग कहीं अधिक भयंकर परिमाण मे फैले हुए है।

शहर का नाम	फी एक हजार पुरुषों के पीछे स्त्रियो की संख्या
कलकत्ता	५००
बम्बई	५२४
लाहोर	५७१
रंगून	४४४
रावलपिंडी	४४१
दिल्ली	६७२
अहमदाबाद	७६३
सूरत	९०२
त्रिचनापल्ली	९८८

इस तरह अकेले पुरुष शैतान के चक्कर में जल्दी आ जाते हैं।

देश मे विवाह-संस्था जबतक सुव्यवस्थित नहीं हो जाती तबतक व्यभिचार और व्यभिचार से गुप्त रोग बराबर बढ़ते ही रहेंगे। इस समय देश की जन-संख्या इस तरह बंटी हुई है—

	पुरुष	स्त्रियाँ
अविवाहित	८.०	५.४
विवाहित	७.१	७.१
वैधव्य या विधुरा अवस्था में	१.०	२.६
	१६.१	१५.१

संख्या करोड़ो मे है। धनाभाव के कारण कितने ही युवकों को अविवाहित ही रहना पड़ता है। सो उधर कई लड़कियाँ धन के

लोभ में आकर बूढ़ों से व्याह दी जाती हैं और विधवा हो जाती हैं। इन कुँआरों और विधवाओ मे पापाचार वढ़ना अस्वाभाविक नही है।

फौजो के सिपाहियो में यह रोग वहुत फैला हुआ रहता है। वहुत दिन तक नीतिशील वायु-मण्डल के अभाव अथवा जवरदस्ती संयम से रहने के कारण जव सिपाही फौज से छुट्टी लेकर कहीं इधर-उधर जाते है, तो व्यभिचार के कुएँ मे आँखे मूंदकर कूद पड़ते है और गुप्त रोगो के शिकार वनकर लौटते हैं। यही जव समाज में सम्मिलित होते हैं तव इन रोगो को स्वभावतः फैलाने के कारण वन जाते हैं।

१९२५ मे सरकारी फौज के सिपाहियो मे यह रोग नीचे लिखे परिमाण में था:—

	कुल संख्या	गुप्तरोग के रोगी	फी सहस्र
अंगरेजी सोल्जर	६०,०००	४,१३९	७२
फौज के देशी सिपाही	१,३६,०००	२,४७५	१८

पर इस भयंकर रोग के दो अंग और भी अधिक हृदय-विदारक है। एक तो वे निर्दोष गृहिणियाँ जो अपने पापी पति के संसर्ग से इसका शिकार वनती है और दूसरे वे नन्हे-नन्हे कोमल वच्चे जो अपने माता-पिता से यह भीषण प्रसाद विरासत मे पाते है।

वम्बई के गुप्त-इन्द्रिय-रोग-निवारक संघ मे इलाज करानेवाले मरीजों मे फी सैकड़ा ४८ युवक विवाहित थे और फी सैकड़ा ५० महिलाएँ ऐसी थीं जो पति की कृपा से इस रोग का शिकार

बनी थी। इन निर्दोष गृहिणियों को इन भयंकर रोगों के प्रहार से जो कष्ट होता होगा उसकी कल्पनामात्र से रोमाच हो जाता है।

अब हम बालकों की दशा का और अवलोकन करें। केवल बम्बई में ९००० बच्चे एक वर्ष की उम्र होने के पहले ही इस लोक की यात्रा को समाप्त कर देते हैं। इनमें से ३००० अपनी माता के उदर से ही किसी न किसी रोग को साथ लेते आते हैं। अलावा इसके बम्बई में प्रतिवर्ष कई हज़ार गर्भ-पात होते हैं, जिनकी निश्चित संख्या जान लेना बहुत कठिन है। इनमें से फी सैकड़ा ६० इसी जघन्य रोग से होते हैं। प्रतिवर्ष २००० मरे बच्चे बम्बई में पैदा होते हैं। बम्बई की द्वारकादास डिसपेन्सरी में, जो बम्बई में बच्चों का सबसे बड़ा शफाख़ाना है, प्रति पांच बच्चों में एक प्राप्त-सिफलिस का शिकार है। डॉ० सॉक्रेटिस का कथन है कि हमारी अन्धशालाओं में फी सैकड़ा ३०, मूकशालाओं में फी सैकड़ा २५, और मूढ़ तथा पागलों में से, जो कि हमारे अस्पतालों में मरीज़ों की संख्या बढ़ाते हैं, फी सैकड़ा ५० इसी रोग के जीते-जागते परिणाम हैं।

इन निर्दोष जीवों के इस अकथनीय कष्ट और दुःख के अतिरिक्त इस भयंकर रोग से देश के शारीरिक, राजनैतिक और आर्थिक सम्पत्ति पर कितना बुरा प्रभाव पड़ता है? देश की जन-संख्या में कितनी घोर हानि है?

और इन सब बुराइयों की जड़ है व्यभिचार। प्रतिशत ९८ वेश्याएँ फिर वे पेशेवाज़ हों या सभ्य-परदानशीन, इस भीषण रोग से विपाक्त होती हैं।

प्रत्येक विवाहित, अविवाहित तथा विधवा स्त्री जो इस पाप मार्ग पर पैर रखती है। गुप्तरोग रूपी सांप के मुँह में अपना पैर देती है। वह पुरुष भी जो कि इस भयंकर मार्ग पर लापरवाही या शौक के लिए पैर रखता है अपनी अकाल-मृत्यु, भीषण रोग और अपनी स्त्री, बच्चों तथा सारे घर भर के लिए अनन्त कष्टों को निमन्त्रण देता है।

अब संक्षेप मे हमें यह देखना है कि इन भयंकर रोगो से मानव-जाति कैसे बच सकती है? गुप्त रोगो से मानव-जाति के बचाने के मानी है व्यभिचार की बन्दी। व्यभिचार की बन्दी की बातें करनेवाले को कितने ही लोग एक कोरा आदर्शवादी कहेंगे। उनके खयाल से जबतक संसार मे मानवजाति है तबतक व्यभिचार बराबर बना रहेगा पर यहां तो स्वभाव-भेद की बात है। संसार में दो प्रकार के लोग हैं। एक पक्ष यह मानता है कि मनुष्य स्वभावतः सत्प्रवृत्त है, और दूसरा यह कि मनुष्य स्वभावतः दुष्ट है; वह अभ्यास से थोड़ा-बहुत सुधर सकता है किन्तु बुराई के कीटाणु उसके अन्दर से कभी नष्ट नहीं होते। मै यह मानता हूँ कि मनुष्य स्वभावतः सत्प्रवृत्त है। वह परमात्मा की एक विभूति है। इसलिए उसमे अनंत शक्ति भरी हुई है, बुराई उसका गुण-धर्म नहीं बाह्य विकार है। इसलिए घोर से घोर पतित अवस्था से भी वह केवल एक निश्चय-मात्र से मुक्त हो सकता है। हां, उसका शरीर भले ही कुछ काल तक कृत-कर्मों का फल भुगतता रहे परन्तु उसकी आत्मा तो उसी क्षण मुक्त हो जाती है। अजा-मिल जैसे भारी व्यभिचारी की मुक्ति की कथा मे यही रहस्य है।

सदियो से पराधीनता के पाश मे पड़ा हुआ देश स्वाधीनता का निश्चय-मात्र करते ही गुलामी से मुक्त हो जाता है; उसका कारण यही है। एक-एक क्षुद्र घटना ने मनुष्यों के चरित्र मे अद्भुत परिवर्तन कर दिया है। एक मानिनी पत्नी के ताने ने विषय के दास बने हुए तुलसीदास को परमात्मा का अप्रतिम भक्त बना दिया। जरूरत तो मानसिक परिवर्तन की है। शरीर तो जड़ वस्तु है। लोग मानव-स्वभाव के स्वार्थीपन और दुष्टता की चाहे कितनी ही चिल्लाहट क्यो न मचाते रहे परन्तु संसार का अधिकांश व्यापार-व्यवहार इसी सत्प्रवृत्ति के आधार और विश्वास पर होता है। इसलिए निश्चय है कि सुशासन और संत पुरुषो की दया से पृथ्वी से व्यभिचार उठ सकता है। आज हम भले ही उस आदर्श से सैकड़ो कोस दूर हों, पर यह दूरी हमे उसके नजदीक पहुँचने के प्रयत्न से नही रोक सकती। फिर यदि शारीरिक मानसिक और आत्मिक पवित्रता संसार मे कुछ मूल्य रखती है, यदि वह प्राप्त करने योग्य वस्तु है, तो हमें उन तमाम बातों को बन्द करना ही होगा जो इसकी प्राप्ति में बाधक हैं।

दूसरे, सारे संसार को पापमय समझने की इस विचार-शैली मे क्या सार है—कौनसी प्रेरणा और स्फूर्ति है, क्या आश्वासन है और ऊँचे उठने को कौनसी आशा है? मनुष्य को पापी, स्वार्थी और विकारी जीव कहने से तो मनुष्य अपनी कमजोरियों का समर्थन करना सीखता है। अनेक पापियो को अपने पाप के समर्थन में विश्वामित्र, पाराशर, नारद, आदि की पतन-कथाएँ कहते हुए सुना गया है। वे कहते हैं कि जो बात ऋषि-मुनियों के लिए असम्भव थी उसे हम कैसे कर सकते हैं। यह कह कर

वे और भी पतित होते हैं और अपने जीवन को दुःखमय बना लेते हैं। अस्तु।

इसलिए अच्छा तो यही है कि मनुष्य पहले निश्चय-पूर्वक समझ ले कि संसार से व्यभिचार बराबर नष्ट हो सकता है और फिर उस दिशा में प्रयत्न शुरू कर दे।

इसमे सब से पहले ध्यान में रखने योग्य बात यह है कि इन मामलो मे मनुष्य सारे संसार का विचार करने की अपेक्षा पहले अपना ही विचार करे। पहले अपने-आपको इस बुराई से दूर करे। यदि वह पर-स्त्री-गमन का पाप कर रहा है तो पहले पत्नी-व्रती बने। फिर शनैः-शनैः अपने आपको गार्हस्थ्य जीवन मे भी ब्रह्मचारी जीवन व्यतीत करने के लिए तैयार करे। यदि मनुष्य सच्चा साधक होगा, अपने विकारो और आदर्श के साथ यदि वह खिलवाड़ नही कर रहा होगा तो उसे यह सुधार करने मे देर न लगेगी।

दुर्भाग्यवश जो युवक गुप्त रोगों के शिकार बन गये हैं, वे जीवन की आशा न छोड़ें। धीरज के साथ किसी साधु-स्वजन से अपने दुर्भाग्य की कहानी कह दे, और उसपर अपने सुधार और उद्धार का भार छोड़ दे। वह जैसा कहे उसी के अनुसार अपना जीवन व्यतीत करे। *जब तक इस बीमारी से वे पूर्णतया नीरोग न हो जायँ, अपने आपको धर्म-भावपूर्वक अछूत समझे रहें। अपने उपयोग की चीजें दूसरों को न दे उन्हें अलग ही रक्खें। क्योंकि वे स्मरण रक्खें कि इस महारोग के कीटाणु इतने भयंकर होते हैं कि ज़रा से संसर्ग-मात्र से ये दूसरे मनुष्य पर आक्रमण कर देते हैं।* एक बात खास तौर से ध्यान मे

रक्खें। कभी इश्तिहारबाज वैद्य, डॉक्टर या हकीमो के चंगुल में फँसकर वे अपने धन और स्वास्थ्य को बरबाद न करे। जहाँ तक हो अच्छे अनुभवी डाक्टर या वैद्यो से ही इलाज करावें।

पर समाज से बीमारी को मिटाने के लिए क्या किया जा सकता है।

सब से पहली और निहायत जरूरी बात तो यह है कि जनता में *व्यभिचार की बुराई और गुप्त रोगो की भयंकरता को प्रकट करने के लिए खूब प्रचार होना ज़रूरी है।* यह काम वैद्य और डॉक्टर बड़ी अच्छी तरह कर सकते है। पाठशालाओ और महाविद्यालयो मे विद्यार्थियो को भी इस विषय का ज्ञान करा दिया जाय तो बड़ा अच्छा हो।

(२) विद्यालयों मे धार्मिक और नैतिक शिक्षा पर अधिक जोर दिया जाय। *विद्यार्थियों के चित्त पर चारित्रिक पवित्रता का महत्व खूब अंकित कर दिया जाय।* इसके लिए प्राचीन गुरुकुल पद्धति सर्वश्रेष्ठ है।

(३) फिर हमें उन समस्त असमानताओं को मिटाना होगा जो आज-कल हमारी वैवाहिक प्रथाओ मे हैं। यह कोशिश करनी होगी कि प्रत्येक पति और पत्नी एक दूसरे से संतुष्ट रह सके।

(४) संयम का आदर्श रखते हुए भी समाज मे किसी पुरुष अथवा स्त्री की यह अवस्था नही होनी चाहिए जिससे उसे अपने विकार की तृप्ति के लिए अनुचित मार्गों का अवलम्बन करना पड़े।

(५) पतित मनुष्यों का त्याग करने की अपेक्षा उन्हें सुधारने की कोशिश होनी चाहिए। इसके लिए आश्रम-संस्थाएँ बड़ी उपयोगी होंगी।

(६) गुप्त-इन्द्रिय-रोग के तमाम रोगियों को समाज से अलग करके उनका इलाज होना चाहिए। धनिक लोगों और सरकारों को चाहिए कि वे इन लोगो के लिए अलग औषधालय बनावें। क्योंकि यह रोग इतना भयंकर है कि मामूली औषधालयों मे इसके रोगियों को रखना दूसरो के लिए बड़ा ख़तरनाक है। साथ ही इस रोग का इलाज कराना भी इतना ख़र्चीला है कि मामूली हैसियत का आदमी इसका इलाज नहीं करा सकता

यह काम बहुत विशाल है। यह पूर्णतया तभी हो सकता है जब वैद्य-डाक्टर, समाज-सुधारक, अर्थशास्त्री और राजनीतिज्ञ आदि सब मिलकर इस काम के पीछे पड़ जायँ।

सरकार तो इस काम में सबसे अधिक मदद कर सकती है। कानून-द्वारा यह गुप्त रोग के रोगियो के लिए बड़े-बड़े औषधालय बनवा सकती है; जबतक डाक्टरी परीक्षा-द्वारा यह सिद्ध न हो जाय कि रोगी अच्छा हो गया है, उस मनुष्य को विवाह करने और अन्य प्रकार से समाज मे उस रोग को फैलाने से रोक सकती है। और भी नानाप्रकार के क़ानून बनाकर तथा अन्य उपायो से अच्छी संस्कृति का प्रचार करके व्यभिचार तथा गुप्त रोगो को रोक सकती है! परन्तु अभी हमारे देश मे सरकार से यह आशा करना व्यर्थ है। इसलिए सहृदय पुरुषो को चाहिए कि वे अपने प्रयत्न स्वतंत्र रीति से जितनी जल्दी हो सके शुरू कर दे। यह एक ऐसा विषय है जिसमें मत-भेद के लिए गुंजाइश नहीं है। इसलिए देश के प्रत्येक सत्पुरुष का कर्तव्य है कि इस बुराई को भारत से दूर करने के काम मे लग जाय।

भारत में

व्यसन और व्यभिचार

परिशिष्ट

[१]

लोग नशा क्यों करते है ?

[रूस के विख्यात महात्मा टॉल्सटॉय ने नशेबाज़ी पर एक बहुत बढ़िया निबन्ध लिखा है। यद्यपि यह लम्बा तो है तथापि हम अपने पाठकों के लाभ के लिए उसका मुख्य अंश यहाँ उद्धृत कर देते हैं। हिन्दी अनुवाद श्री जनार्दन भट्ट एम. ए का है, और टाल्सटॉय के सिद्धान्त नामक पुस्तक में श्री शिवनारायण मिश्र द्वारा प्रताप पुस्तकालय कानपुर से प्रकाशित हुआ है। इसके लिए लेखक और प्रकाशक के हम अनुग्रहीत है। निबन्ध यो है—]

लोग शराब, गांजा, भांग, ताड़ी इत्यादि क्यों पीते है ? लोग अफीम इत्यादि नशीली चीजे क्यो खाते हैं ? जहाँ शराब इत्यादि का अधिक प्रचार नहीं है वहाँ भी तम्बाकू का इस्तेमाल इतना ज्यादा क्यो होता है ? नशा करने की आदत लोगो मे किस तरह से शुरू हुई और सभ्य तथा जंगली हर तरह के लोगो मे यह आदत क्यो इतनी फैली हुई है ? लोग नशे मे अपने को क्यो रखना चाहते है ? यह सब प्रश्न है जिन पर इस लेख मे विचार किया जायगा।

किसी से पूछिए कि भाई तुम्हे शराब पीने की लत किस तरह से लगी और तुम शराब क्यो पीते हो, तो वह जवाब देगा कि सब लोग पीते हैं इसीसे मैं भी पीता हूँ और इसके अलावा शराब पीने से एक मजा भी मिलता है। कुछ लोग तो यहाँ तक कह

डालते हैं कि शराब तन्दुरुस्ती के लिए बहुत मुफ़ीद है और उसके पीने से एक मजा भी मिलता है। किसी तम्बाकू पीनेवाले से पूछिए कि भाई तम्बाकू तुम क्यों पीते हो तो वह जवाब देगा कि हर एक आदमी पीता है,इसीसे मै भी पीता हूँ, इसके अलावा तम्बाकू पीने से समय अच्छी तरह कट जाता है। अफीम, चरस, गाँजा, भाँग इत्यादि खानेवाले लोग भी शायद इसी तरह का जवाब देंगे।

तम्बाकू, शराब, अफीम इत्यादि के तैयार करने मे लाखो आदमियो को मेहनत खर्च होती है और लाखो बीघा, बढ़िया से बढ़िया जमीन इन सब चीजो के पैदा करने में लगाई जाती है। हरएक आदमी इस बात को कबूल करेगा कि इन नशीली चीजों के इस्तेमाल से कैसी-कैसी भयानक बुराइयाँ लोगो मे पैदा होती है। इसके अलावा इन *नशीली चीजों की बदौलत जितने आदमी दुनिया में मौत के शिकार होते है उतने कुल लड़ाइयों और छूत वाली बीमारियों की बदौलत भी नहीं होते।* लोग इस बात को अच्छी तरह से जानते हैं इसलिए उनका यह कहना कि "सब लोग पीते हैं इससे मै भी पीता हूँ" या "समय काटने के लिए पीता हूँ" या "मजे के लिए पीता हूँ" बिलकुल गलत है। लोगो के नशा करने का सबब कोई दूसरा ही है।

मनुष्य के जीवन में प्रधानतया दो प्रकार के कार्य दिखलाई पड़ते हैं। एक तो वे कार्य हैं *जिन्हें अन्तरात्मा स्वीकार करता है*, और जो उसीके अनुसार किये जाते है और दूसरे प्रकार के कार्य वे हैं *जिन्हें अन्तरात्मा स्वीकार नहीं करता* और जो बिना अन्तरात्मा की राय के किये जाते हैं।

कुछ लोग पहले प्रकार के कार्य करते हैं और कुछ लोग दूसरे प्रकार के। पहले प्रकार के कार्यों में सफलता पाने का सिर्फ एक उपाय है और वह यह है कि हम अपनी आत्मा को उन्नत करें, अपने आत्मिक ज्ञान की वृद्धि करें और अपने आत्मिक सुधार की ओर दत्तचित्त हो। दूसरे प्रकार के कार्यों में सफलता पाने के दो उपाय हैं—बाह्य और आंतरिक। बाह्य उपाय यह है कि हम ऐसे कामो मे अपने को लगायें जिनके कारण हमारा ध्यान अन्तरात्मा की पुकार की ओर न जाने पाये और आन्तरिक उपाय यह है कि हम अपनी अन्तरात्मा को ही अन्धा और प्रकाशहीन बना दे।

अगर कोई आदमी अपने सामने की चीज़ को न देखना चाहे तो वह दो प्रकार से ऐसा कर सकता है—या तो वह अपनी नज़र किसी चीज़ पर लगा दे जो ज़्यादा तड़क-भड़कदार है, या वह अपनी आँखो को ही बन्द कर ले। इसी तरह मनुष्य भी अपनी अन्तरात्मा के संकेतो को दो प्रकार से टाल सकता है—या तो वह अपने ध्यान को खेल-कूद, नाच-रंग, थियेटर, तमाशे और तरह तरह की फिक्रों और कामो मे लगा दे, या अपनी उस शक्ति ही पर पर्दा डाल दे जिसके द्वारा वह किसी बात पर ध्यान लगा सकता है। जो लोग बड़े ऊँचे चरित्र के नहीं है, और जिनका नैतिक भाव बहुत परिमित है, उनके लिए खेल-कूद, तमाशे वगैरह इस बात के लिए काफी होते हैं। लेकिन जिनका चरित्र बहुत ऊँचा और जिनका नैतिक भाव बहुत प्रबल है, उनके लिए यह बाहरी उपाय अकसर काफी नही होते। इसलिए वे शराब, गाँजा, भांग, तंबाकू इत्यादि से अपने दिमाग़ को जहरीला बना देते हैं, जिससे उनकी अन्तरात्मा

अन्धकारमय हो जाती है और तब वे उस विरोध को नहीं देख सकते जो उनकी अन्तरात्मा और उनके असली जीवन के बीच में पैदा हो गया है।

दुनिया मे लोग गांजा, भांग, चरस, शराब, तम्बाकू वगैरा इसलिए नहीं पीते कि उनका जायका बढ़िया होता है या उनसे कोई खुशी हासिल होती है, बल्कि इसलिए लोग नशा करते हैं कि वे अपनी अन्तरात्मा की आवाज को सुनना नहीं चाहते। लोग नशा इसलिए करते हैं कि जिसमे अपनी अन्तरात्मा के विरुद्ध किसी काम को कर लेने के बाद शरम न मालूम पड़े। या लोग नशा इसलिए करते हैं कि जिसमे वे ऐसी हालत मे हो जायँ कि अपनी अन्तरात्मा के विरुद्ध किसी काम के करने मे उन्हे कोई हिचक न पैदा हो।

जब आदमी नशे में नहीं रहता तो वह किसी वेश्या के यहाँ जाने, चोरी करने या किसी की हत्या करने में शरमाता है। पर जो आदमी नशे मे रहता है वह इन कामों को करते हुए नहीं शरमाता। इसलिए जो मनुष्य अपनी आत्मा और विवेक-बुद्धि के विरुद्ध कोई काम करना चाहता है, वह नशा पीकर अपने को बदहोश कर लेता है। मुझे याद है कि एक बार एक बावरची ने उस औरत को मार डाला जिसके यहाँ वह नौकर था। उसने अदालत के सामने अपने बयान में कहा कि जब मैं छुरा लेकर अपनी मालकिन को मारने के लिए उसके कमरे मे जाने लगा, तो मैने सोचा कि जब तक मैं अपने पूरे होश मे हूँ तबतक मै इस काम को नही कर सकता। इसलिए मैं लौटा और दो गिलास भर कर शराब पी ली। तभी मैंने उस काम के योग्य अपने को समझा और तभी मैंने यह

हत्या की। दुनिया में ९० फी सदी अपराध इसी तरह से किये जाते है। *दुनिया में जितनी पतित स्त्रियाँ है उनमें से आधी स्त्रिया शराब के नशे मे ही पतित होती है। जो लोग पतित स्त्रियों के घरों में जाते है उनमें से आधे लोग तभी ऐसा करते है जब वे शराब के नशे में होते है। लोग अच्छी तरह से जानते है कि शराब पीने से अन्तरात्मा या विवेक बुद्धि पर पर्दा पड़ जाता है और तब वे मनमाना—जो चाहें सो—कर सकते है। वे इसी मतलब से जान-बूझकर शराब पीते है।*

लोग न सिर्फ अपनी ही अन्तरात्मा की आवाज को दबाने के लिए खुद शराब पीते है बल्कि जब वे दूसरो से उनकी अन्तरात्मा के विरुद्ध कोई काम कराना चाहते हैं तो उन्हें भी जान-बूझकर शराब पिला देते है। लड़ाइयो मे सिपाही आम तौर पर शराब पिलाकर मस्त कर दिये जाते हैं जिससे कि वे खूब अच्छी तरह से लड़ सके। जब लड़ाई मे कोई किला या शहर दुश्मनों के क़बजे में आ जाता है तो दुश्मनो के सिपाही अरक्षित बुड्ढो और बच्चो को मारने से तथा लूटपाट करने से हिचकते हैं पर ज्यो ही उन्हे शराब पिला दी जाती है त्यो ही वे अपने अफसरों की आज्ञा के अनुसार अत्याचार करने लगते हैं। हर कोई यह देख सकता है कि जो लोग चरित्रहीन है और जिनका जीवन दुराचारमय है, वे नशो का व्यवहार बहुत अधिक करते हैं। हर एक को मालूम है कि लुटेरे, वेश्याएँ और व्यभिचारी मनुष्य विना नशे के नहीं रह सकते।

ऐसा ख़याल किया जाता है कि तम्बाकू पीने से वदन में एक तरह की फुर्ती आ जाती है, दिमाग साफ़ हो जाता है, और उससे आत्मा को कुंठित करनेवाला वह असर भी नहीं पैदा होता जो शराव से होता है। लेकिन अगर आप ध्यान देकर इस बात को देखें कि किस हालत मे तम्बाकू पीने की इच्छा आपको होती है तो आपको निश्चय हो जायगा कि तम्बाकू का नशा भी आत्मा को उसी तरह कुंठित बना देता है जिस तरह कि शराब का नशा बनाता है। ध्यान देने से आपको यह भी मालूम होगा कि लोग तम्बाकू तभी पीते हैं जब उन्हे अपनी आत्मा को कुंठित करने की जरूरत पड़ती है। लोग अक्सर यह कहते हैं कि हम चाहे बिना भोजन के रह जायँ, लेकिन बिना तम्बाकू के नही रह सकते। अगर तम्बाकू का इस्तेमाल सिर्फ दिमाग को साफ करने या बदन में फुर्ती लाने के लिए किया जाता हो तो उसके लिए लोग इतने उता-वले न होते और न उसे भोजन से ज्यादा जरूरी समझते।

एक आदमी ने अपने मालिक को मारना चाहा। जब वह उसे मारने के लिए आगे बढ़ा तो एकाएक उसकी हिम्मत जाती रही। तब उसने एक सिगरेट निकालकर पिया। सिगरेट का नशा चढ़ते ही उसके बदन मे फुर्ती आ गई और फौरन जाकर उसने अपने मालिक का काम खत्म कर दिया। इससे साफ जाहिर है कि उस समय उस आदमी मे सिगरेट पीने की इच्छा इसलिए नही पैदा हुई कि वह अपना दिमाग़ साफ करना चाहता था, या अपना चित्त प्रसन्न करना चाहता था, बल्कि वह अपनी आत्मा को मूर्छित करना चाहता था जो उसे हत्या करने से रोक रही थी।

जब मैं स्वयं तम्बाकू पिया करता था उस समय की याद

मुझे है। मुझे तम्बाकू पीने की ख़ास जरूरत उसी समय पड़ा करती थी जब मैं किसी चीज को टालना चाहता था या उस पर विचार नहीं करना चाहता था। मैं बिना किसी काम के बैठा हुआ हूँ और जानता हूँ कि मुझे काम मे लगना चाहिए, पर काम करने की इच्छा न होने से तम्बाकू पीते हुए बैठे ही बैठे समय काट देता हूँ। मैने ५ बजे किसी के यहाँ जाने का वादा किया है पर बहुत देर हो गई है। मैं जानता हूँ कि मुझे वहाँ ठीक वक्त पर जाना चाहिए था। पर मैं उस पर विचार नही करना चाहता, इसलिए तम्बाकू पीकर उस बात को भुला देता हूँ। मैं जुआ खेल रहा हूँ, उसमें मै अपने वित्त से अधिक हार गया हूँ—बस उस दुःख को मिटाने के लिए सिगरेट पीने लगता हूँ। मै कोई ख़राब काम कर बैठता हूँ। मुझे उस काम को स्वीकार कर लेना चाहिए, पर उसके बुरे नतीजे से बचने के लिए दूसरो पर उसका दोष मढ़ता हूँ और अपने चित्त को शांत करने के लिए सिगरेट का दो-एक कश पी लेता हूँ। इसी तरह के सैकड़ों उदाहरण दिये जासकते है।

छोटे-छोटे लड़के तम्बाकू पीना कब शुरू करते है? आम तौर पर जब उनकी लड़काई का भोलापन जाता रहता है। क्या बात है कि तम्बाकू पीने वालो का नैतिक जीवन और उनका आचरण तब पहिले से अधिक सुधर जाता है ज्यो ही वे तम्बाकू पीना छोड़ देते हैं? पर ज्योंही वे दुराचार मे पड़ जाते हैं त्योंही तम्बाकू पीना फिर शुरू कर देते है। क्या कारण है कि क़रीब कुल जुवारी तम्बाकू जरूर पीते है? क्या कारण है कि उन स्त्रियो मे तम्बाकू पीने की आदत बहुत कम पाई जाती है जो अपना जीवन बड़े नियम और सदाचार के साथ व्यतीत करती हैं? क्या कारण

है कि सभी वेश्याएँ तम्बाकू का नशा करती हैं ? कारण यह है कि तम्बाकू पीने से आत्मा मूर्छित हो जाती है और आत्मा मूर्छित होने से लोग दुराचार और पाप कर्म विना किसी हिचक के कर सकते हैं।

लोग अपने जीवन को अपनी अन्तरात्मा की अनुमति के अनुसार नही बनाते, बल्कि वे अपनी अंतरात्मा को जीवन की आवश्यकताओ के अनुसार मोड़ लेते है। जिस तरह व्यक्तियों के जीवन मे यह बात दिखलाई पड़ती है, उसी तरह समाज या जाति के जीवन मे भी यह बात दिखलाई पड़ती है। क्योंकि समाज या जाति व्यक्तियो का ही एक समूह है।

लोग नशे के द्वारा अपनी अंतरात्मा को कुंठित क्यों कर देते है और उसका नतीजा क्या होता है इसे जानने के लिए हर एक मनुष्य को अपने आत्मिक जीवन की भिन्न-भिन्न दशाओ पर दृष्टि डालनी चाहिए। हर एक मनुष्य के सामने अपने जीवन के हर एक भाग मे कुछ नैतिक प्रश्न ऐसे आते हैं जिनका हल करना उसके लिए बहुत जल्दी होता है और जिसके हल होने पर ही उस के जीवन की कुल भलाई निर्भर रहती है। इन प्रश्नो को हल करने के लिए बहुत ध्यान लगाने की आवश्यकता पड़ती ही है। किसी बात पर ध्यान लगाने मे कुछ परिश्रम करना पड़ता है और जहाँ परिश्रम करना पड़ता है वहाँ खास कर शुरू में तकलीफ होती है और उसके करने में बहुत कठिनता मालूम पड़ती है। जहाँ काम अखरने लगा कि फिर उसके करने की उसे इच्छा नही होती और हम उसे छोड़ देते हैं। शारीरिक कामों के सम्बन्ध में जब यह बात है, तो फिर मानसिक बातों का क्या

कहना, जिनमें और भी अधिक परिश्रम पड़ता है। मनुष्य सोचता है कि इस तरह के प्रश्नों को हल करने में परिश्रम करना पड़ता है, अतएव उस परिश्रम से बचने के लिए नशा पीकर वह अपने को बदहोश कर लेता है। अगर अपनी शक्तियो को बदहोश करने के लिए उसके पास कोई जरिया न हो तो वह उन प्रश्नो को हल करने से बाज़ नहीं रह सकता जिन का हल करना उसके लिए बहुत ही ज़रूरी है। लेकिन वह देखता है कि इन प्रश्नो से बचने के लिए एक ज़रिया उसके हाथ में है और वह उसे काम में लाता है। ज्योंही इस तरह के प्रश्न उसे पीड़ा देने लगते है त्योंही वह नशे का इस्तेमाल करके उस पीड़ा से बचने की कोशिश करता है। इस तरह से जीवन के अत्यन्त आवश्यक प्रश्न महीनों, वर्षों या कभी-कभी जिन्दगी भर तक बिना हल हुए पड़े रहते हैं।

जिस तरह से कोई मनुष्य गंदे पानी की तह मे एक क़ीमती मोती को देखकर उसे लेना चाहता है, पर उस गंदे पानी के अन्दर घुसना नहीं चाहता और इसलिए उसे अपनी नज़र से दूर करना चाहता है। मिट्टी बैठ जाने से पानी ज्योंही साफ़ होने लगता है त्योंही वह उसे हिला देता है जिसमे कि मोती दिखलाई न पड़े। इसी तरह से हम लोग जीवन के प्रश्नो को हल करने से बचने के लिए, जब-जब वे प्रश्न हमारे सामने आते हैं, तब-तब नशा पीकर अपने को बदहोश करते रहते हैं। बहुत से लोग जिन्दगी भर तक इसी तरह अपने को बदहोश करते रहते हैं और हमेशा के लिए अपनी आत्मा को कुंठित कर डालते हैं।

शराब, भांग, तम्बाकू इत्यादि नशो का परिणाम व्यक्तियो पर

जो होता है वह तो होता ही है, किन्तु समाज और जाति पर उसका बहुत बुरा असर पड़ता है। आजकल के अधिकतर लोग कोई न कोई नशा, कम हो या ज्यादा, जरूर करते हैं। यो तो वे थोड़ी शराब पीते हैं या थोड़ी भांग पीते हैं या थोड़ी तम्बाकू का सेवन करते हैं या सिगरेट इत्यादि पीते है। सभ्य से सभ्य और विद्वान से विद्वान लोग भी कोई न कोई नशा जरूर करते हैं। हमारे समाज या देश के राजनैतिक, सामाजिक, साहित्यिक और कला-सम्बन्धी हर एक विभाग का कार्य और प्रबन्ध इन्ही सभ्य शिक्षित और विद्वानो के हाथ मे है, जो किसी न किसी नशे के आदी हो रहे है इसलिए वर्त्तमान समय के समाज का हरएक काम प्रायःउन लोगो के द्वारा हो रहा है जो किसी न किसी नशे के प्रभाव में रहते हैं। आम तौर पर यह ख्याल किया जाता है कि जिस मनुष्य ने अगले दिन शराव या और कोई नशा पिया है वह दूसरे दिन काम करने के समय उस नशे के असर मे बिल्कुल नही रहता। पर यह बिल्कुल गलत ख्याल है। जिस मनुष्स ने एक बोतल शराब अगले दिन पी है या अफीम का एक अच्छा नशा अगले रोज जमाया है वह दूसरे दिन कभी गम्भीर और स्वाभाविक हालत में नही रह सकता। जो आदमी थोड़ी-सी शराव या थोड़ी-सी तंबाकू भी पीने का आदी है उसका दिमाग़ तबतक अपनी स्वाभाविक हालत में नही आ सकता जबतक कि वह कम से कम एक हफ्ते के लिए शराब और तम्बाकू पीना बिल्कुल न छोड़ दे।

इसलिए जो कुछ हमारे चारों तरफ दुनिया मे हो रहा है उसमें अधिकतर उन लोगो के द्वारा हो रहा है जो अपनी गम्भीर और स्वाभाविक दशा में नहीं रहते। मैं यह पूछता हूँ

कि अगर लोग नशे मे न होते अर्थात् वे अपनी स्वाभाविक दशा में होते तो क्या वे उन सब कामों को करते जो वे कर रहे हैं। मैं एक उदाहरण आपके सामने रखता हूँ। कुल यूरोप के लोग कई वर्षों से इस बात में मशगूल हैं कि कोई ऐसा तरीक़ा निकाला जाय जिससे कम से कम समय मे अधिक से अधिक आदमी मारे जा सकें। वे अपने जवानो को, ज्यों ही, वे हथियार पकड़ने के काबिल होते हैं, त्योंही दूसरों को क़त्ल-करने की शिक्षा देते है। हरएक आदमी यह जानता है कि किसी असभ्य या जंगली जाति के हमले से बचने के लिए यह तैयारी नहीं है। सब लोग यह जानते हैं कि अपने को सभ्य और शिक्षित कहनेवाली जातियां एक दूसरे को मारने के लिए ही यह तैयारियाँ करती हैं। सब लोग यह जानते हैं कि इन कामो से संसार में कितना कष्ट, कितनी दुर्दशा, कितना अन्याय और कितना अत्याचार हो रहा है पर तब भी सब लोग सेनाओं, हत्याओ, और युद्धो में शरीक होते हैं। क्या होश में रहने वाले लोग इस तरह का काम कर सकते हैं? नहीं सिर्फ वही लोग ऐसा कर सकते हैं जो हमेशा किसी न किसी नशे मे रहते हैं।

मेरा ख़्याल है कि आजकल जितने लोग अपनी आत्मा के विरुद्ध काम करते हुए जिन्दगी बिता रहे हैं उतने पहले कभी नहीं थे। इसका सब से बड़ा कारण यह है कि हमारे समाज के बहुत अधिक लोग शराब और तम्बाकू के आदी हो रहे है। शराब और तम्बाकू के आदी होकर वे अपने को नशे मे डाले रहते है। इस भयानक बुराई से छुटकारा जिस दिन मिलेगा वह दिन मनुष्य-जीवन के इतिहास मे सोने के अक्षरो से लिखने के योग्य होगा। वह दिन नज़दीक आता हुआ मालूम पड़ रहा है। क्योंकि अब

लोग इस बुराई को पहिचानने लगे है और यह समझने लगे हैं कि इन नशीलो चीजो से कितनी भयानक हानियां हो रही हैं। जब इस भाव का प्रचार अधिकतर होगा तभी लोग अपनी आत्मा की आवाज को अच्छी तरह से सुनने लगेगे और तभी वे अपने जीवन को अपनी आत्मा के संकेतो के अनुसार नियमित करेंगे।

[२]

सुख, सिद्धि और समृद्धि के नियम

(१) अगर आप विवाहित है तो याद रखिए कि पत्नी आप की साथिन, मित्र, और सहकारिणी है। विषय-तृप्ति का एक साधन नही !

(२) आत्म-संयम ही मनुष्य के जीवन का नियम है। अतः संभोग उसी हालत मे उचित कहा जा सकेगा जब दोनो ही के अन्दर उसकी इच्छा पैदा हो और वह भी तब, जब कि वह उन नियमो के अनुसार किया गया हो, जिन्हें कि पति-पत्नी दोनों ने भलीप्रकार समझ कर बनाया हो !

(३) अगर आप अविवाहित है तो आपका अपने प्रति, समाज के प्रति और अपनी भावी जीवन-संगिनी के प्रति यह कर्त्तव्य है कि आप अपने को—अपने चरित्र को—पवित्र बनाये रक्खे। अगर आपके अन्दर सचाई और वफादारी की ऐसी भावना पैदा हो गई हो, तो यह भावना एक दुर्भेद्य कवच बनकर अनेक प्रलोभनो से आपकी रक्षा कर सकेगी।

(४) हमारे हृदय के अन्दर छिपी हुई उस परमात्म-शक्ति का हमें सदा स्मरण रखना चाहिए। चाहे हम उसे कभी देख न सकते हो, परन्तु हम अपनी अन्तरात्मा के अन्दर सदा यह अनुभव करते रहते हैं कि वह हमारे प्रत्येक बुरे विचार को भलीभांति देख रही है। यदि आप उस शक्ति का ध्यान करते रहे, तो

आप देखेंगे कि वह शक्ति हमेशा आपको सहायता के लिए तैयार रहती है।

(५) संयमी जीवन के नियम, विलासी जीवन के नियमों से अवश्य ही भिन्न होंगे। इसलिए उचित है कि आपका मिलने-जुलने वाला समाज अच्छा हो, आप सात्विक साहित्य पढ़े, आपके विनोदस्थल अच्छे वातावरण से परिपूर्ण हो और खान-पान में आप संयत हो।

आपको हमेशा सत्-पुरुषो और सच्चरित्र लोगो की ही संगति करनी चाहिए।

आपको दृढ़ता-पूर्वक उन पुस्तकों, उपन्यासो और मासिक-पत्रो का पढ़ना छोड़ देना चाहिए जिनके पढ़ने से आपकी कुवासनाओ को उत्तेजना मिले। आप हमेशा उन्ही पुस्तको को पढ़िए जिनसे आपके मनुष्यत्व की रक्षा तथा पुष्टि हो। आप को किसी एक अच्छी पुस्तक को अपना आधार और मार्ग-प्रदर्शक बना लेना चाहिए।

सिनेमा और नाटको से दूर ही रहना चाहिए। मनोविनोद तो वह है जिससे हमारे चरित्र का पतन न होकर, उसके द्वारा वह एक अच्छे साँचे मे ढल जाता हो। अतः आपको उन्ही भजन-मंडलियों में जाना चाहिए, जिनके भजनो का भाव और संगीत की ध्वनि आत्मा को ऊपर उठाती हो।

(६) आपको भोजन स्वाद-तृप्ति के लिए नहीं, बल्कि क्षुधा-तृप्ति के लिए करना चाहिए। विलासी पुरुष खाने के लिए जीता है किन्तु संयमी पुरुष जीवित रहने के लिए खाता है। अतः आपको सब तरह के उत्तेजक मसाले, शराब आदि नशीले पदार्थों से, जिन से

कि आदमी के अन्दर उत्तेजना पैदा होती है, परहेज करना चाहिए। और मादक-द्रव्य आदि से भी बिल्कुल बचना चाहिए जिनसे मस्तिष्क पर ऐसा कुप्रभाव पड़ता है कि भले-बुरे के पहचानने की शक्ति नष्ट हो जाती है। आपको अपने भोजन की मात्रा और समय भी निश्चित और नियमित कर लेना चाहिए जब आपको ऐसा मालूम पड़े कि आप विषय-वासनाओं के वशीभूत होते जा रहे हैं तो पृथ्वी पर सर को टेककर भगवान के दरबार मे सहायता के लिए पुकारिए। मेरे लिए तो ऐसे समय पर रामनाम ने अव्यर्थ दवा का काम दिया है। इसके अलावा बाहरी उपचार की आवश्यकता हो तो "कटि स्नान" (Hip, Bath) मुफीद होगा इसकी विधि इस प्रकार है।

ठंढे पानी से भरे हुए टब में, पैरों को तथा कमर से ऊपरी हिस्से को इस प्रकार रक्खे कि वे भीगने न पावे। कमर से नीचे का हिस्सा ही पानी में रहे। इस प्रकार पानी में बैठने से थोड़े समय मे आपको यह अनुभव होने लगेगा कि आपके विकार शान्त हो गये हैं। अगर आप कमजोर हैं तब तो आपको पानी मे कुछ मिनिट ही बैठना चाहिए जिससे कि कहीं सर्दी न हो जाय।

(७) प्रति दिन तड़के उठकर खुली हवा मे, खूब तेजी के साथ घूमा कीजिए। रात को खाना खाने के बाद, सोने से पूर्व, टहलिए भी।

(८) "जल्दी सोना और जल्दी उठना मनुष्य को स्वस्थ और बुद्धिमान बनाता है" यह एक अच्छी कहावत है। रात के नौ बजे सो जाना और सुबह चार बजे उठने का नियम बड़ा अच्छा है। ख़ाली पेट सोना हितकर है। इसलिए आपका शाम

का भोजन, सायंकाल के ६ बजे के बाद नहीं होना चाहिए।

(९) याद रखिए कि मनुष्य ईश्वर का प्रतिनिधि है। उसका काम है कि वह प्राणी-मात्र की सेवा करे और उसके द्वारा परमात्मा के गौरव तथा प्रेम की झलक संसार को दिखावे। अतः सेवा को ही अपने जीवन का परम सुख बना लीजिए, फिर आपको जीवन में किसी दूसरे आनन्द-साधन की आवश्यकता न रहेगी।

(Self-Restraint vs Self-Indulgence)

महात्मा गांधी

[३]

मदिरा

माध्वीकं पानसं द्राक्षं खार्जूरं ताल मैक्षवं ।
मैरेयं माक्षिकं टाङ्कं मधूकं नारिकेलजम् ॥
मुख्य मन्न विकारोत्थं मद्यानि द्वादशैव च ॥ इतिजटाधरः

धातकीरसगुडादि कृता मदिरा गौडी; पुष्पद्रवादि मधुसारमयी मदिरा माध्वी; विविधधान्यजाता मदिरा पैष्टी; तालादि रसनिर्यासकृता मदिरा सैन्धी हालाच; शालिपाष्टिकपिष्टादि कृतं मद्यं सुरा स्मृता ।

पर्युषितमल्पमेलनमम्लंवा पिच्छिलं विगन्धमृवा ।
दोषावहमविशेषान्मद्यं हृद्यं विवर्जयेत् ॥
मद्य-प्रयोगं कुर्वन्ति शूद्रादिषु महार्तिषु ।
द्विजैस्त्रिभिस्तु न ग्राह्यं यद्यप्पुज्जीवयेन्मृतम् ॥
अन्ये द्वादशधा मद्य-भेदान्याहुर्मनीषिणः ।
उक्तस्यान्तर्भवन्तीति नान्येषां पृथगीरितम् ॥

इति राज-निर्घण्टे मद्यप्रकरणम् ।

सुरां पीत्वा द्विजो मोहादग्निवर्णां सुरांपिवेत् ।
तथा सकाये निर्दग्धे मुच्यते किल्विषात्ततः ॥
गो-मूत्रमग्निवर्णांवा पिवेदुदकमेववा ।
पयोघृतं वामरणात् गोसकृद्रसमेववा॥— मनुः
सुरापाने कामकृते ज्वलन्ती तां विनिःक्षिपेत् ।
मुखेपि स विनिर्दग्धो मृतः शुद्धिमवाप्नुयात् ॥—बृहस्पतिः

सुरापानं सकृत्कृत्वा योग्निवर्णां सुरांपिबेत ।
सपातयेदथात्मानमिह लोके परत्र च ॥—अङ्गिरा
असकृत् ज्ञानतः पीत्वा वारुणीं पतति द्विजः ।
मरणं तस्य निर्दिष्टं प्रायश्चित्तं विधीयते ॥—भविष्ये ।
अगम्यागमने चैव मद्यगोमांसभक्षणे ।
शुद्धयै चांद्रायणं कुर्यात् नदीं गत्वा समुद्रगाम् ॥
चान्द्रयणे ततश्चीर्णे कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ।
अनडुत्सहितां गांच दद्याद्विप्राय दक्षिणाम् ॥—पराशरः
अग्रेयं चाप्यपेयंच तथैवास्पृश्यमेवच ।
द्विजातीनामनालोच्यं नित्यं मद्यमितिस्थितम् ॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन मद्यं नित्यं विवर्जयेत् ।
पीत्वा पतति कर्मभ्यास्त्वसंभाष्यो द्विजोत्तम. ॥
भक्षयित्वाप्यभक्ष्याणि पीत्वा पेयान्यपि द्विजः ।
नाधिकारी भवेत्तावद् यावत्तन्नजहात्यधः ॥
तस्मात्परिहरेन्नित्यमभक्ष्याणि प्रयत्नत· ।
अपेयानिच विप्रो वै पीत्वा तद्‌याति रौरवम् ॥
श्री कूर्म पुराण उपविभाग अध्याय १६
यस्तु भागवतो भूत्वा कामरागेण मोहितः ।
दीक्षितो पिबते मद्यं प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥
अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व वसुन्धरे ।
अग्निवर्णां सुरां पीत्वा तेन मुच्येत किल्बिषात् ॥
वराह पुराण ।
अगम्यागमनं कृत्वा मद्यगोमास भक्षणम् ।
शुध्यै चान्द्रायाणद् विप्रः प्राजापत्येन भूमिपः ।

वैश्यः सान्तपनाच्छूद्रः पंचाहोभिर्विशुध्यति ॥

गरुड़ पुराण अध्याय १२

सुरापानाद् वंचनां प्राप्य विद्वान्, संज्ञानाशं प्राप्य चैवाति घोरम् ।
दृष्ट्वा कचंचापि तथाभिरूपं, पीतं तथा सुरया मोहितेन ॥
समन्यु रुत्थाय महानुभावः, तदोशना विप्रहितं चिकीर्षुः ।
काव्यः स्वयं वाक्यमिदं जगाद, सुरापानं प्रति वै जातशङ्कः ॥
योब्राह्मणोऽद्य प्रभृतीह कश्चित, मोहात् सुरां पास्यति मन्दबुद्धिः ।
अपेतधर्मा ब्रह्महा चैव सस्यात्, अस्मिल्लोके गर्हितस्यात् परे च ॥
मयाचेमां विप्र धर्मोक्तसीमां, मर्यादां वै स्थापितां सर्वलोके ।
सन्तो विप्राः शुश्रुवांसो गुरूणाम्, देवालोकाश्चोपश्रृण्वन्तु सर्वे ॥

महाभारत आदि पर्व अध्याय ७९

कितवान् कुशीलवान् क्रूरान् पाषाणाऽस्थांश्चमानवान् । विकर्मस्था-न्छौण्डिकांश्च क्षिप्रं निर्वासयेत पुरात् ॥२२५॥ एते राष्ट्रे वर्तमाना राज्ञः प्रच्छन्न-तस्कराः । विकर्मक्रियया नित्यं वाधन्ते भद्रिकाः प्रजाः ॥२२६॥ मनुस्मृति ९

ब्रह्महाच सुरापश्च स्तेयोच गुरुतल्पगः । एते सर्वे पृथग्ज्ञेयाः महापातकिनो नरा. ॥ चतुर्णामपि चैतेषा प्रायश्चित्तमकुर्वताम् । शारीरं धन-संयुक्तं दण्ड-धर्म्यं प्रकल्पयेत् ॥ गुरु-तल्पे भग. कार्यः सुरापाने सुराध्वजः । स्तेये चश्वपदं कार्यं ब्रह्महण्यशिराः पुमान् ॥

असंभोज्या असंयोज्या असंपाठविवाहिन. । चरेयुः पृथिवीं दीनाः सर्वधर्मबहिष्कृताः ॥ ज्ञाति सम्बन्धिनस्त्वेते त्यक्तव्याः कृतलक्षणाः । निर्दया निर्नमस्कारा स्तन्मनो रनु शासनम् ॥

मनुस्मृति ९-२३५-२३९

सुरां वै मलमन्नानां पाप्माच मलमुच्यते । तस्माद् ब्राह्मण-राजन्यौ वैश्यश्च न सुरां पिवेत् ॥ गौड़ी पैष्टीच माध्वीच विज्ञेया त्रिविधा सुरा । यथैवैका तथा सर्वा न पातव्या द्विजोत्तमैः ॥ यक्ष-रक्षः पिशाचान्नं मद्यंमांसं सुरासवम् । तद्ब्राह्मणेन नात्तव्यं देवा-नामश्नताहविः ॥ यस्य कायगतं ब्रह्म मद्येनाप्लाव्यते सकृत् । तस्य व्यपैति ब्राह्मत्वं शूद्रत्वं च सगच्छति ॥

११ अध्याय मनुस्मृतिः (९१-९७)

सुरापाने विकलता स्खलनं वमने गतौ । लज्जामानच्युतिः प्रेमाधिक्यं रक्ताक्षता भ्रम. ॥

मदात्ययः मद्यपानादिजन्य रोगविशेषः इति राज निर्घण्टः अथ मदात्ययादीनां निदानान्याहः—

विषस्य ये गुणा दृष्टाः सन्निपातप्रकोपनाः ।

त एव मद्ये दृश्यन्ते विषे तु वलवत्तराः ॥

निभक्तमेकान्तत एव मद्यं निषेव्यमाणं मनुजेन नित्यम् । उत्पादयेत् कष्टतमान् विकारान् उत्पादयेच्चापि शरीरभेदम् ॥ क्रुद्धेन भीतेन पिपासितेन शोकाभितप्तेन वुभुक्षितेन । व्यायाम भाराध्वपरिक्षतेन ॥ वेगावरोधाभिहतेन चापि । अत्यम्ल रुक्षावततो दरेण, साजीर्ण मुक्तेन तथा वलेन । उष्णाभितप्तेन च सेव्यमानं, करोति मद्यं विविधान्विकारान् ।

पान विकार त्रिवृणन्नाह-शरीरदुःखं वलवत् प्रमोहो हृदयव्यथा । अरुचिः प्रततं तृष्णाज्वरः शीतोष्ण लक्षणम् । शिरः पार्श्वास्थि-संधीनां वेदना विक्षते यथा ॥ जायतेति वलान् जृम्भास्फुरणं वेपनं श्रमः । उरोविवन्धः कासश्च श्वासो हिक्काप्रजागरः ॥ शरीर-कम्पः कर्णाक्षिमुखरोगस्त्रिकग्रहः । छर्दिविड् मेदावुन् क्लेशो वात-

पित्तकफात्मकः ॥ भ्रमः प्रलापो रूपाणाम् असतांचैव दर्शनम् । तृणभस्मलतापर्णपांसुभिश्चावपूरितम् ॥ प्रधर्षणं विहंगैश्च भ्रान्तं चेताः समन्यते । व्याकुलानामशस्तानां स्वप्नानाम् दर्शनानिच ॥ मदात्ययस्य रूपाणि सर्वाण्यैतानि लक्षयेत् ।

ततश्च वातपित्तकफप्रधानमदात्ययानां विकारान् वर्णयित्वा सान्निपातिकस्य मदात्ययस्य निदानं लक्षणं चाह.—

"श्लेष्मोच्छ्र्योङ्ग गुरुता विरसास्यताच, विण्मूत्रसक्तिरथ तन्द्रिररोचकश्चः । लिङ्गं परस्यतु मदस्य वदन्ति तज्ञाः, तृष्णां-रुजा शिरसि सन्धिपु चापि भेदः ॥"

ततः पानाजीर्णमाह—

"आध्मान मुग्रमथवोद्गिरणं विदाहः ।
पाने त्वजीर्णमुपगच्छति लक्षणानि ॥"

पुनः पान विभ्रममाह—

"हृद्‌गात्रतोदक फसंस्रवकण्ठधूम, मूर्च्छावमीज्वर शिरो रुजन प्रदेहाः । द्वेपः सुरान्नविकृतेपु च तेपु, तं पानविभ्रम मुपन्त्यखिलेपु धीराः ॥"

कण्ठधूमः कण्ठाध्दूम—निर्गम इव ।

असाध्यानां मदात्यया दीनांलक्षणान्याहः—

दीनोत्तरोष्ठमतिशीत ममन्ददाहं, तैलप्रभास्यमतिपान हतं त्यजेच्च । जिव्होष्टदन्तमसितन्त्वथवापिनीलं, पीतेच यस्य नयने रुधिर-प्रभेच ॥ हिक्का ज्वरो वमथु वेपथु पार्श्व शूलाः, कासम्भ्र-भावमि च पानहतं त्यजेत्तम् ॥

ततो गुरु पुराणे १६० अध्याये

हाला हलाहलसमं भजते वियोगात्, सेव्यं नशिष्यमनुजैः कथितं मुनीन्द्रैः । तृष्णावमिः श्वसनमोहनदाहतृष्णा, संजायतेऽतिसरणं विकलेन्द्रियत्वम् ॥

ये नित्य सेवनाद्दुष्टा मद्यस्य मनुजा भृशम् ।
विषमाहार सदृशी सुरामोहनकारिणी ॥

[४]

तमाखू

भ्रात: कस्त्वं ? तमाखु र्गमनमिहकुतो ? वारिधे: पूर्वपारात्,

कस्यत्वं दण्डधारी ? न हि तव विदितं, श्रीकलेरेव राज्ञः ।

चातुर्वर्ण्यं विधात्रा विविधविरचितं पावनं धर्महेतो,

रेकी कर्तु बलात्तन्निखिल जगति रे शासनादागतोस्मि ।

सुभाषितकार कहते हैं—

न स्वादु नौषधमिदं नचवा सुगन्धि

नाक्षिप्रियं किमपि शुष्क-तमाखु-चूर्णम् ॥

किंचाक्षि रोगजनकं च तदस्य भोगे ।

बीजं नृणां नहि नहि व्यसनं विनान्यत् ॥१॥

[५]

क्या सोम शराब है ?

जेनाइड रागोजिन, ज्यूलियल एगलिन और वॅट आदि कितने ही पश्चिमी विद्वान सोमरस को शराब समझते आये हैं। वॅट का कथन है कि सोम और कुछ नहीं अफ़गानिस्तान के अंगूरों का रस-मात्र है। मिस्टर हिलेब्रण्ट का कथन है कि सोम के जो गुण-धर्म बताये गये हैं वे न तो 'हॉप' (एक कड़ुवी वनस्पति जिसका शराव वनाने मे उपयोग होता है) और न अंगूर मे पाये जाते हैं। पर मालूम होता है कि इन सभी विद्वानो ने वेदो में वर्णित उसकी वनाने की विधि तथा उसमें डाली जानेवाली चीजों पर ध्यान नहीं दिया है। साथ ही जहाँ सोम को पवित्र और अमृत के समान वताया है तहाँ मद्यपान को सप्त महापातकों मे गिनाया है।

"शुचिः पावक उच्यते सोमः" (ऋ० वे० ९.२४.७) सोमरस पवित्र है और मनुष्य को शुद्ध कर देता है। आगे चलकर कहा है *"दिवः पीयूषं पूर्व्यम्"* (ऋ० वे० ९. ११०-८.) सोम पुरातन स्वर्गीय अमृत है। अन्यत्र एक स्तोत्र मे कहा है—*ये ब्राह्मणा त्रिसुपर्णं पटन्ति ते सोम प्राप्नुवन्ति, आसहस्रात्पंक्तिं पुनन्ति* अर्थात् जो ब्राह्मण त्रिसुपर्ण नामक स्तोत्र का पठन करते हैं वे सोमरस को प्राप्त करते है। और अपने साथ-साथ सहस्रों ब्राह्मणों की पंक्ति को शुद्ध कर देते है (यह स्तोत्र

भोजन के समय बोला जाता है)। इस तरह वेदों में कई स्थानों पर सोम की प्रशंसा, बनाने की विधि आदि का उल्लेख पाया जाता है।

वास्तव में सोम एक वनस्पति का नाम है। "प्रिय स्तोत्रो वनस्पतिः" "नित्य स्तोत्रो वनस्पति" इसका पौदा खास कर आर्यावर्त मे ही पैदा होता था। परन्तु आजकल वह कहीं देखने में नहीं आता। सम्भवतः या तो हम लोग उसकी पहचान भूल गये हैं या वह किसी अज्ञात स्थान में होगो। हिमालय की घाटी और सुशोम तथा आर्जिकीय (सिंधु) नदी के तीरो पर इसका उत्पत्ति-स्थान ऋग्वेद मे वर्णित है। शर्यनावत् सरोवर पर भी इसके पाये जाने का उल्लेख है।

यह मुंजवान् नामक पर्वत पर भी (गिरे हिमवतः पृष्ठे मुंजवान् नाम पर्वतः) पाया जाता था। इसलिए सोम को कहीं-कहीं मौजवत भी कहा गया है। अथर्ववेद मे कहा है 'एतुदेव-स्त्रायमाणः कुष्ठो हिमवतस्परि। सकुष्टो विश्वभेपजः। साकं सोमेन तिष्ठति। अर्थात् सोम कुष्ठ नामक वनस्पति के साथ उगता है। सोम की पैदायश के स्थान के विषय मे तो ज़रा भी मत-भेद नहीं है। डॉ० मूर, रागोजिन, प्रोफेसर मॅकडोनेल तथा लोकमान्य तिलक भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि सोमरस इसी वनस्पति का रस है। सोमः पवते। (पात्रेपु क्षरति)

सोम रस यूरोप की भाषाओं में नहीं पाया जाता। उसका तत्सम वा तद्भव शब्द भी नहीं है। हाँ, ईरानी साहित्य मे जरूर 'होम' नामक एक शब्द पाया जाता है। वह भी एक पवित्र पेय था। कई विद्वान् इसीको सोम कहते है। धार्मिक

मत-भेद के कारण जब आर्यों के एक दल ने अपना नया उपनिवेश (ईरान मे) स्थापित किया तो वहाँ उन्हे यह सोम नही मिलता था। तब उन्होने उसी देश मे पैदा होनेवाले एक पौदे का नाम सोम रख दिया और उसी को सोम कहकर पीने लग गये। (डा० मार्टिन हॉग के Sacred Language, Writings and Religion of the Parsees पृ० २२० १८६२ के संस्करण और डॉ० विडिस्किमन के Dissertation on the Soma Worship नामक प्रबन्धो को देखिए)

ऋग्वेद मे सोम के जो गुण-धर्म बताये है उनमे और शराब के गुण-धर्मो मे जमीन-आस्मान का अंतर है। उतना ही अंतर है जितना सूर्य तथा अंधकार के बीच मे। जहॉ सोम बल, वीर्य, बुद्धि, प्रतिभा को बढ़ाता है तहॉ शराब मनुष्य के तमाम अच्छे गुणो और शक्ति को नष्ट करती है।

ऋग्वेद मे सोमरस बनाने की विधि का स्थान-स्थान पर जो वर्णन आया है उसका सार यो है:—

सोम के डंठलो को इकट्ठा करके उन्हे दो पत्थरो के बीच पीसा जाता था। डंठलो से अधिक रस प्राप्त करने के लिए उन-पर कुछ पानी भी छिड़क दिया जाता था। (अद्भिः सोम पपृचानस्य) दोनो हाथो से उसे निचोड़-निचोड़ कर भेड़ की ऊन के बने कपड़े से वह रस छान लिया जाता था। फिर उस पानी के अति-रिक्त, जो कि उसपर पहले छिड़का गया था, इस रस मे दूध, दही, घी, जौ का आटा और शहद मिलाया जाता था। तब कहीं वह यज्ञ के लिए तैयार समझा जाता था। यज्ञ-भाग के अवसर पर जब सोम बनता तो दिन में तीन बार वह इस तरह तैयार

किया जाता था।

पाठक देख सकते है कि कहाँ महीनो और बरसो की सड़ी-गली शराब और कहाँ यह दिन मे तीन बार शुद्ध सात्विक चीजों से बननेवाला सोमरस।

वेदो में सोम के तीन प्रकार ("त्र्याशिरः") बताये गये हैं जिसमे सिर्फ दूध डाला जाता वह "गवाशिरः" दही डाला जाता वह "दध्याशिरः" और जौ का आटा डाला जाता वह "यवाशिरः" कहा जाता। शुद्ध सोम जिसमे उपयुक्त सभी चीजे होती अत्यंत मधुर, स्वादु, आनन्दप्रद, सुगंधित किन्तु तीव्र तथा कुछ मादक भी होता था। ऋग्वेद मे उसके गुण-धर्म यों वर्णित है: —

(१) स्वादुष्किलायं मधुमानुतायं
(२) तीव्रः किलायं रसवानुतायं।—ऋ. वे. ६-४७-१
(३) अयं स्वादुरिह मदिष्ट आस ,, ६-४७-२
(४) सहस्रधारः सुरभिः(सोमः) ,, ९-९७-१९
सुरभिऽतरः (अत्यन्त सुगन्धिः सोमः) ,, ९-१०७-२

श्री पावगी की Some juice is not Liquor नामक पुस्तिका से संकलित।

सस्ता-साहित्य-मण्डल, अजमेर के प्रकाशन

१—दिव्य-जीवन ।=)
२—जीवन-साहित्य (दोनों भाग) १।)
३—तामिलवेद ॥।)
४—भारत में व्यसन और व्यभिचार ॥।=)
५—सामाजिक कुरीतियाँ ॥।) (जब्त)
६—भारत के स्त्री-रत्न (दोनों भाग) १॥।-)
७—अनोखा ! १।=)
८—ब्रह्मचर्य-विज्ञान ॥।-)
९—यूरोप का इतिहास (तीनों भाग) २)
१०—समाज-विज्ञान १॥)
११—खद्दर का सम्पत्ति-शास्त्र ॥।≡)
१२—गोरों का प्रभुत्व ।॥=)
१३—चीन की आवाज़ ।-) (अप्राप्य)
१४—दक्षिण अफ्रिका का सत्याग्रह (दो भाग) १।)
१५—विजयी बारडोली २)
१६—अनीति की राह पर ।≡) (गांधीजी)
१७—सीताजी की अग्नि-परीक्षा ।-)
१८—कन्या-शिक्षा ।)
१९—कर्मयोग ।=)
२०—कलवार की करतूत =)
२१—व्यावहारिक सभ्यता ।)॥
२२—अँधेरे में उजाला ।≡)
२३—स्वामीजी का बलिदान ।-
२४—हमारे ज़माने की गुलामी (ज़ब्त) ।)
२५—स्त्री और पुरुष ॥)
२६—घरों की सफाई ।) (अप्राप्य)
२७—क्या करें ? (दो भाग) १॥=)
२८—हाथ की कताई-बुनाई (अप्राप्य) ॥=)
२९—आत्मोपदेश ।)
३०—यथार्थ आदर्श जीवन (अप्राप्य) ॥-)
३१—जब अंग्रेज़ नहीं आये थे— ।)

३२—गंगा गोविन्दसिंह ॥=)
(अप्राप्य)
३३—श्रीरामचरित्र १।)
३४—आश्रम-हरिणी ।)
३५—हिन्दी-मराठी-कोष २)
३६—स्वाधीनता के सिद्धान्त ॥)
३७—महान् मातृत्व की ओर— ।॥=)
३८—शिवाजी की योग्यता ।=) (अप्राप्य)
३९—तरंगित हृदय „ ॥)
४०—नरमेध १॥)
४१—दुखी दुनिया ॥)
४२—ज़िन्दा लाश ॥)
४३—आत्म-कथा (गांधीजी) दो खण्ड सजिल्द १॥)
४४—जब अंग्रेज़ आये (ज़ब्त) १।=)
४५—जीवन-विकास
अजिल्द १।) सजिल्द १॥)
४६—किसानों का बिगुल =) (ज़ब्त)
४७—फाँसी ! ॥)
४८—अनासक्तियोग तथा
गीताबोध (श्लोक-सहित) ।=)
अनासक्तियोग =)
गीताबोध— -)॥
४९—स्वर्ण-विहान (नाटिका) (ज़ब्त) ।=)
५०—मराठों का उत्थान और पतन २॥)
५१—भाई के पत्र १॥)
सजिल्द २)
५२—स्व-गत— ।=)
५३—युग-धर्म (ज़ब्त) १=)
५४—स्त्री-समस्या १॥।)
सजिल्द २)
५५—विदेशी कपड़े का मुक़ाबला ॥=)
५६—चित्रपट ।=)
५७—राष्ट्रवाणी ॥=)
५८—इंग्लैण्ड में महात्माजी १)
५९—रोटी का सवाल १)
६०—दैवी-सम्पद् ।=)
६१—जीवन-सूत्र ॥।)
६२—हमारा कलंक ॥=)
६३—बुद्बुद ॥)
६४—संघर्ष या सहयोग? १॥)
६५—गांधी-विचार-दोहन ॥।)
६६—एशिया की क्रान्ति १॥।)